सुलभजैनग्रंथमाला

श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमदमितगत्याचार्य-विरचित

धर्मपरीक्षा.

जिसको

पन्नालाल बाकलीवाल दिगम्बरी जैन सुजानगढ

जिला बीकानेरनिवासीने

बालावबोधिनी हिंदी भाषाटीकासहित लिखा.

और

भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था,

९ विश्वकोशलेन, बाघबाजार, कलकत्ताने

प्रकाशित किया.

वी. सं. २४४८ } फाल्गुन { न्योछावर ॥)
इस्वी. १९२२ } फरवरी

निवेदन ।

संस्थाके मूलसंस्थापक उस्मानाबादनिवासी श्रीमान् सेठ नेमिचंद्र बालचंद्रजीने अपने पूज्य पिता गांधी कस्तूरचंद्रजीके सुपुत्र, बालचंद्रजीके स्मरणार्थ दोहजार एकरुपया प्रदान किया था और उससे योगसारजी वीरनिर्वाण संवत् २४४४ में प्रकाशित हुये थे । कालक्रमसे उक्त ग्रंथकी आई न्योछावरसे यह "धर्मपरीक्षा" ग्रंथ छपाया गया है ।

यह ग्रंथ मूल और भाषावचनिकासहित आजसे वीस वर्ष पहिले आकलूजनिवासी सेठ नाथारंगजी गांधीने छपाकर विना मूल्य वितीर्ण किया था, इसके बाद जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय बंबईसे केवल वचनिकासहित प्रकाशित हुआ और अब यह संस्थाद्वारा सुलभजैनग्रंथमालामें प्रकाशित किया जाता है। भाषा मूलसे मिलाकर शुद्ध कर दी गई है तब भी जो अशुद्धि रह गई हों उसे विज्ञजन शुद्ध कर लें ।

इसप्रकार एकवार दान दे सैकडों ग्रंथोंके जीर्णोद्धार करने की जिनकी इच्छा हो, उनको अवश्य २ संस्थाका दानी-सहायक हो स्वपर कल्याण करना चाहिये ।

श्रीलाल जैन

मंत्री.

प्रस्तावना ।

(प्रथम संस्करणकी)

प्राचीन समयके अनेक ऋषिगण प्रस्तावना (शास्त्र बनानेका कारण व उद्देश्य) आजकलकी तरह ग्रंथकी आदिमें न लिखकर उसके अन्तमें अपने कुछ परिचयसहित कथन (प्रस्तावना) लिखते थे, इसकारण इस मूल ग्रंथकी प्रस्तावना भी ग्रंथरचयिताने प्राचीन रीत्यनुसार पुस्तकके अन्तमें लिखी है। परंतु आजकल प्रायः समस्त देशोंके विद्वान ग्रंथकी प्रस्तावना व रचयिताका उपलब्ध इतिहास ग्रन्थकी आदिमें ही लिखते हैं, और आजकलके पाठकगण भी जबतक प्रस्तावना नहीं पढ लेते, तबतक ग्रन्थके पढनेमें अपनी रुचि ही नहीं दिखाते इसकारण हम भी प्रथम मूल ग्रन्थरचयिताकी प्रस्तावना (जिसमें रचयिताका कुछ परिचय भी है) मूलपाठसहित लिखते हैं। सो पाठक महाशयोंको चाहिए कि ध्यान देकर एक दो बार अवश्य ही पढ लें।

सिद्धान्तपाथोनिधिपारगामी श्रीवीरसेनोऽजनि सूरिवर्यः। श्रीमाथुराणां यमिनां वरिष्ठः कषायविध्वंसविधौ पटिष्ठः ॥ १ ॥ ध्वस्ताशेषध्वान्तवृत्तिर्महस्वी तस्मात्सूरिर्देवसेनोऽजनिष्ट ॥ लोकोद्योती पूर्वशैलादिवार्कः शिष्टाभीष्टः स्थेयसोऽपास्तदोषः ॥ २ ॥ भासिताखिलपदार्थसमूहो निर्मलोऽमितगतिर्गणनाथः ॥ वासरो दिनमणेरिव तस्माज्जायते स्म कमलाकरबोधी ॥ ३ ॥ नेमिषेणगणनायकस्ततः पावनं वृषमधिष्ठितो विभुः ॥ पार्वतीपतिरिवास्तमन्मथो

धंगगोपनपरो गणार्चितः ॥ ४ ॥ कोपनिवारी शमदमधारी माधवसेनः प्रणतिरसेनः ॥ सोऽभवदस्माद्गलितमदोष्मा यो यतिसारः प्रशमितमारः ॥ ५ ॥ धर्मपरीक्षामकृत वरेण्यां धर्मपरीक्षामखिलशरण्यां । शिष्यवरिष्ठो"ऽमितगति" नामा तस्य पटिष्ठोऽनघगतिधामा ॥ ६ ॥ यद्धं मया जडधियात्र विरोधि यद्यद् ग्रहन्त्विदं स्वपरशास्त्रविदो विशोध्य। गृह्णन्ति किं तुषमपास्य न सस्यजातं सारं न सारमिदमुद्धधियो विबुध्य ॥ ७ ॥ कृतिः पुराणा सुखदा न नूतना न भाषणीयं वचनं बुधैरिदं । भवंति भव्यानि फलानि भूरिशो न भूरुहां किं प्रसवप्रसूतितः ॥ ८ ॥ पुराणसम्भूतमिदं न गृह्यते पुराणमत्यस्य न सुन्दरेति गीः । सुवर्णपाषाणविनिर्गते जने न काञ्चनं गच्छति किं महर्घतां ॥ ९ ॥ न बुद्धिगर्वेण न पक्षपाततो मयान्यशास्त्रार्थविवेचनं कृतं। ममैष धर्मे शिवसौख्यदायकं परीक्षितुं केवलमुत्थितः श्रमः ॥ १० ॥ अहारि किं केशवशङ्करादिभिः व्यतारि किं वस्तु जिनेन चार्थिनः । स्तुवे जिनं येन निषिद्ध्य तानहं बुधा न कुर्वेति निरर्थिकां क्रियां ॥ ११॥ विमुच्य मार्गं कुगतिप्रवर्तकं श्रयन्तु संतः सुगतिप्रवर्तकं। चिराय माभूदखिलांगतापकः परोपतापो नरकादिगामिनां ॥ १२ ॥ न गृह्णते ये विनिवेदितं हितं व्रजंति ते दुःखमनेकधाग्रतः । कुमार्गलग्नो व्यवतिष्ठते न यो निवारितोऽसौ पुरतो विषीदति ॥ १३ ॥ विनिष्ठुरं वाक्यमिदं ममोदितं सुखं परं दास्यति नूनमग्रतः । निषेव्यमाणं कटुकं किमौषधं सुखं विपाके न ददाति कांक्षितं ॥१४॥ विबुध्य गृह्णीत बुधा ममोदितं शुभाशुभं शास्यथ निश्चितं स्वयं । निवेद्यमाणं शतशोऽपि जानते स्फुटं रसं नानुभवंति तं जनाः ॥

१५ ॥ प्रतसकलकलङ्का प्राप्यते तेन कीर्तिर्भुवमतमनवद्यं बुध्यते तेन तत्त्वं । हृदयसदनमध्ये धूतमिथ्यान्धकारो जिनपतिमतदीपो दीप्यते यस्य दीप्रः ॥ १६ ॥ वदति पठति भक्त्या यः शृणोत्येकचित्तः स्वपरसमयतत्त्वावेदि शास्त्रं पवित्रं । विदितसकलतत्त्वः केवलालोकनेत्रस्त्रिदशमहितपादो यात्यसौ मोक्षलक्ष्मीं ॥ १७ ॥ धर्मो जैनोऽपविघ्नो प्रभवतु भुवने सर्वदा शर्मदायी, शांतिं प्राप्नोतु लोको धरणिमवनिपाः न्यायतः पालयन्तु ॥ हत्वा कर्मारिवर्गं शमनियमशरैः साधवो यान्तु सिद्धिं, विध्वस्ताशुद्धबोधा निजहितनिरता जन्तवः सन्तु सर्वे ॥ १८ ॥ यावत्सागरयोषितो जलनिधिं श्लिष्यंति वीचीभुजैः भर्तारं शुपयोधराः क्षतरवा मीनेक्षणा वाक्नाः ॥ तावत्तिष्ठतु शास्त्रमेतदनघं क्षोणीतले कोविदैर्धर्माधर्मविचारकैरनुदिनं व्याख्यायमानं मुदा ॥ १९ ॥ संवत्सराणां विगते सहस्रे ससप्ततौ विक्रमपार्थिवस्य ॥ इदं निषिध्यान्यमतं समाप्तं जिनेन्द्रधर्मामितयुक्तिशास्त्रं ॥ २० ॥ इति प्रशस्तयः ॥

श्रीमाथुर आम्नायके मुनियोंमें श्रेष्ठ, सिद्धांत समुद्रके पारगामी, कषायोंको नष्ट करनेके उपायोंमें चतुर, आचार्योंमें गन्धमान एक वीरसेन नामके आचार्य हुए ॥ १ ॥ उनके शिष्य, उदयाचलसे सूर्यके समान नष्ट की है समस्त अन्धकार (अज्ञान) की प्रवृत्ति जिनोंने, लोकमें ज्ञानरूपी प्रकाशको करनेवाले, सत्पुरुषोंके प्यारे, धीरताके कारण, नष्ट किए हैं समस्त दोष जिन्होंने ऐसे, देवसेन नामक आचार्य हुए ॥ २ ॥ उनके शिष्य पदार्थोंके समूहको प्रकाश करनेवाले, दोषरहित मुनिगणोंके नाथ (संघके नाथ) सूर्यसे दिनके समान भव्यरूपी कमलसमूहको प्रफुल्लित करनेवाले, एक अमितगति नामा आचार्य हुए ॥ ३ ॥ उन अमितगति महाराजके शिष्य,

पवित्र धर्मके अधिष्ठाता विभु, पार्वतीनाथके परश कामदेवको नष्ट करने-वाले, मन वचन कायको वशमें करनेवाले, मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाके संघसे पूजित एक नेमिषेण नामक आचार्य हुए ॥ ४ ॥ उन नेमिषेण आ-चार्यके शिष्य, कोपनिवारी, शमदमधारी, प्रकर्षताकर नम्रताका है रस जिनमें, मद (गर्व) को दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, शमन कर दिया है मन्मथ जिन्होंने, ऐसे एक माधवसेन नामा आचार्य हुए ॥ ५ ॥ उन माधवसेनाचार्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक अमितगति नामा चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेके लिए सबको शरणरूप यह श्रेष्ठ धर्मपरीक्षा बनाई है ॥ ६ ॥ यह धर्मपरीक्षा मुझ अल्पज्ञने बनाई है। इसमें जो कुछ विरुद्ध वाक्य हो तो स्वपर शास्त्रके जाननेवाले शोध कर धारण करो। क्या ऊंची बुद्धिके धारक विद्वज्जन सारासारको समझकर तुषको छोड सस्य समूहको ही ग्रहण नहीं करते ?॥ ७ ॥ "प्राचीन कविता ही सुखदायक है नवीन कविता सुखदायक नहीं" बुद्धिमानोंको इसप्रकार कदापि नहीं समझना चाहिए, वृक्षोंपर प्रतिवर्ष नये नये फल आते हैं तो क्या वे पहिले वर्षके फलों सरीखे श्रेष्ठ व मिष्ट नहीं होते ॥ ८ ॥ तथा कोई कहै कि "पुराणोंको छोडकर पुराणोंसे उत्पन्न हुवा यह ग्रन्थ ग्रहण करनेमें नहीं आ सकता" सो यह कहना भी ठीक नहीं. क्योंकि सुवर्णमयी पत्थरसे निकाला हुवा सोना, क्या महामूल्यसे नहीं बिकता ॥ ९ ॥ मैंने इस पुस्तकमें जो अन्यमतके शास्त्रोंका विचार किया है. सो बुद्धिका गर्व प्रकट करके अथवा पक्षपातसे नहिं किया है. किन्तु जो धर्म शिव-सुखका देनेवाला है. केवलमात्र उस धर्मकी परीक्षा करनेके निमित्त ही यह परिश्रम किया गया है ॥ १० ॥ विष्णु महादेव आदिने तो मेरा कुछ हरण नहीं कर लिया और जिनेन्द्र भगवानने मुझे कुछ दे नहिं दिया.

जो उनका खंडन करके जिनेन्द्रकी स्तुति करूं. क्योंकि विद्वज्जन निरर्थक क्रिया नहिं करते ॥ ११ ॥ मेरा तो केवलमात्र यही कहना है कि जो सत्पुरुष हैं वे कुगतिकी प्रवृत्ति करानेवाले मार्ग (धर्म) को छोडकर सुगतिमें ले जानेवाले मार्गका (धर्मका) आश्रय करो, जिससे नरकादि गतिमें जानेवालोंको समस्त अंगको आतापकारी महादुःख प्राप्त नहिं हो १२ ॥ जो भलेप्रकार निवेदन किए हुए हितको ग्रहण नहीं करते, वे अवश्य ही आगामी कालमें अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होंगे. और जो निवारण करनेपर कुमार्गमें नहीं रहते, वे भविष्यतमें दुःख नहीं पावेंगे ॥ १३ ॥ जिस तरह कडवी औषध खाते समय तो दुःखदायक है परंतु परिणाममें वांछित सुखको देती है । उसीप्रकार मेरा कहा उपर्युक्त कठोर वाक्य भविष्यतमें निश्चय करके सुखदायक होगा ॥ १४ ॥ हे विद्वज्जनो ! मेरे किए हुए इस ग्रंथको विचार करके ग्रहण करोगे तो निश्चय करके अपने आप इसके शुभाशुभपणेको जान जावोगे. यद्यपि निवेदन करनेसे सैंकडों मनुष्य रसको जान जाते हैं. परंतु उसके स्पष्ट अनुभव (स्वाद) को कदापि नहि भोगते ॥ १५ ॥ जिसके हृदयरूपी मंदिरमें मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला जिनेन्द्र मतरूपी दीपक जलता है, वही पुरुष विद्वानोंकर माने गये वस्तुके निर्दोष स्वरूपको जानता है. तथा वही पुरुष समस्त कलंकोंको नाश करनेवाली उज्ज्वल कीर्तिको पाता है ॥ १६ ॥ जो पुरुष अपने और परके मतका तत्त्व दिखानेवाले पवित्र शास्त्रको भक्तिपूर्वक कहता है, पढता है, अथवा एकचित्त होकर सुनता है, वह पुरुष समस्त तत्त्वोंका जानकार, केवलज्ञान ही है नेत्र जिसके; ऐसे देवोंकर पूजनीय पदको प्राप्त होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ अंतमें आचार्य्य आशीर्वाद देते हैं कि जगतमें निरंतर सुख

का देनेवाला जिनधर्म विघ्नरहित होवो, लोगोंमें शांति रहो, राजालोग न्यायसे पृथिवीका पालन करो, और साधुजन हैं, ते यम नियमरूपी बाणों से, कर्मरूपी शत्रुवोंको नष्ट कर सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होवो और समस्त प्राणीजन हैं, ते मिथ्या ज्ञानको नष्ट करके अपने हितमें लवलीन होवो ॥ १८ ॥ जितने दिनतक सुपयोधरा (निर्मल जलवाली), मीन ही है नेत्र जिनके तथा उच्च शब्द करनेवाली नदीरूपी स्त्रियें अपने लहररूपी हाथोंसे समुद्ररूपी भरतारको आलिंगन करेंगी, उतने ही दिनतक धर्माधर्मके ज्ञाता विद्वानोंकर प्रसन्नताके साथ व्याख्यान होता हुआ, यह अनघ निर्दोष शास्त्र इस पृथिवीपर वर्तमान रहो ॥ १९ ॥ अन्य मतके निषेध करनेवाला जिनेन्द्रधर्मकी अपरिमाण युक्तिवाला यह धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ विक्रम राजाके १०७० एक हजार सत्तरकी सालमें पूर्ण हुवा ॥ २० ॥

पाठक महाशय ! उपर्युक्त प्रस्तावनाके बांचनेसे मालूम हुवा होगा कि यह ग्रन्थ विक्रम संवत् १०७० में बना है. इस कारण यह ग्रंथ बहुत प्राचीन है. तथा इसके बनानेका अभिप्राय भी आचार्य्यने स्पष्टतया प्रगट कर दिया है जिसके प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है. यद्यपि इस ग्रन्थकी पं० मनोहरदासजी कृत भाषा छन्दोबद्ध, व जयपुर निवासी चौधरी पन्नालालजी कृत वचनिका, और अन्य मतावलम्बी पूनानिवासी पं० कृष्णजी नारायण जोशीकृत मराठी गद्यमय टीका मौजूद है परंतु इनसे सर्वसाधारणको लाभ मिलना व मूल ग्रन्थकर्ताका अभिप्राय प्रगट होना कष्ट साध्य है. क्योंकि मनोहरदासजीने तो मूल कथनीको छोडकर मनोक्त कथन बढा दिया है. मराठी टीका अन्य मतावलम्बीकृत होनेके सिवाय मराठी भाषामें है. सो महाराष्ट्र देशवासियोंके सिवाय और कोई उसको समझ ही नहिं सक्ता. इसी प्रकार पन्नालालजीकृत वचनिका भी जैपुर

जिलेकी ठेट ढूंढाडी भाषामें होनेके कारण जैपुर प्रान्तके रहनेवाले भाइयोंके ही काम की है. इस कारण शोलापुर प्रांतस्थ आकलूज निवासी श्रेष्ठिवर्य गांधी नाथारङ्गजीकी पेरणासे मैंने इस ग्रंथका समस्त देशवासियोंकी समझमें आजावे, ऐसी सरल हिंदी भाषामें गद्यानुवाद किया है. सो यह आपके सन्मुख मौजूद है.

पाठक महाशय! यह काम मेरा प्रथम ही है क्योंकि आजतक किसी जैन ग्रंथके अनुवाद करनेका साहस मेरा नहिं हुवा, और न मैं इतनी ताकत ही रखता हूं, जो ऐसे प्राचीन महान् ग्रन्थोंकी भाषाटीका कर सकूं. परंतु प्रथम तो उक्त सेठ साहबकी अतिशय प्रेरणा हुई कि–यदि तुम धर्मपरीक्षाका भाषानुवाद तयार करके छपादो तो अपने यहां की बिम्बप्रतिष्ठामें हमारी इच्छानुसार शास्त्रदान हो सका है. क्योंकि हमारे देशमें अनेक जैनीभाई जैनधर्मसे च्युत होकर मिथ्या मतोंके श्रद्धानी होते जाते हैं, सो इसका प्रचार होनेसे उनका बडा कल्याण होगा. दूसरे उपर्युक्त ग्रंथोंके सिवाय एक पंडितजी साहबकी भी बडी सहायता हुई कि जिनको हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं. तीसरे हमारा भी अमूल्य समय आजीविकाके कारण प्राय: स्वाध्याय रहित वृथा ही जाता था, इस कारण इस कार्य्यमें स्वपर हित समझ, जहांतक मेरी शक्ति थी, शुद्ध और सरल अनुवाद करनेमें कसर नहिं करी. तथापि वाक्य रचनाका संदर्भ मिलानेकेलिये अनेक जगह मूल पदोंका पर्याय न लिखकर अभिप्राय मात्र लिखा गया है. तथा कहीं २ जो, तो, सो, जिसप्रकार, तत्पश्चात् आदि अव्ययों और शब्दोंका प्रयोग भी बहुत किया गया है. तथा इसके सिवाय और भी यत्र तत्र जिन मतकी शैलीसे विरुद्ध न्यूनाधिक अर्थ होगया होगा. परंतु आशा है कि विद्वज्जन अपने स्वाभाविक धर्मसे मुझे अल्पज्ञ बालक समझ क्षमा

करैंगे. और पत्र द्वारा अपने अमूल्य उपदेशामृतसे सूचित भी कर देंगे कि जिससे आगेके लिये सावधान हो जाऊं।

यद्यपि हमारी जैनसमाजमें संस्कृत ग्रंथोंके स्वाध्याय करनेवालोंका प्रायः अभाव ही है. परंतु अनुवाद करनेमें मेरा कहांतक प्रमाद हुआ है, वह संस्कृतज्ञ विद्वानोंके द्वारा प्रगट व संशोधन हो जानेकी इच्छासे इसके साथ मूलग्रंथ भी लगा देना उचित समझा गया. परन्तु अनुवाद करते समय प्रथम ही उक्त कृष्णाजी नारायण जोशीकी लिखी हुई एक ही मूल प्रति श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य्य माणिकचंदजी पानाचंदजीके सरस्वती भण्डारमेंसे मिली थी, और व्याकरणज्ञानशून्य लेखककी लिपि सारथी, अशुद्ध होनेके कारण अनुवादमें विघ्न होने लगा, तब तलास करनेसे अतिशय प्राचीन दो प्रति तो मुम्बईके मंदिरजीमेंसे मिली जिसमें एक प्रति तो सटिप्पण विक्रम संवत् १५३३ के शालकी लिखी अत्यंत ही शुद्ध थी. दूसरी प्रतिपर संवत् नहिं लिखा, परंतु वह इससे भी सौ पचास वर्ष पहिलेकी लिखी प्रतीत होती थी. और इन तीनके सिवाय मैनपुरी जिलेके भोंगांव निवासी श्रीमान् पंडितवर्य्य छेदालालजीने भी शुद्ध करके व कठिन शब्दोंकी टिप्पणी करके एक प्राचीन प्रति भेजी है, जिसके लिये पण्डितजी साहबको जितना धन्यवाद दिया जाय थोडा है क्योंकि इस प्रतिसे मुझे अधिक सहायता मिली. इन चारों प्रतियोंमें ही प्रायः पाठका कुछ २ अंतर है. परंतु मैंने जहांतक बना सम्वत् १५३३ के सालकी लिखी प्रतिका पाठ शुद्ध समझ कर उसीके अनुसार मूल पाठको शुद्ध करके छपाया हैं, सो मुझे व्याकरणका विशेष ज्ञान न होनेके कारण तथा माघ सुदी ९ सें १३ तककी विम्बप्रतिष्ठामें अवश्यमेव वितरण करनेकी शीघ्रतासे यह ग्रंथ मगसर सुदी १ प्रतिपदासे प्रारंभ कर अनुवाद करना,

लिखना, शोधना व प्रूफ शोधना वगैरह समस्त कार्य्य आकुलतापूर्वक किये गये हैं. सो छपाने वगैरहमें मूलके सिवाय भाषानुवादमें भी अशुद्धियें रह गई होंगी. परंतु क्या किया जाय भाद्रपदसे २॥ महीने तक मेरे बीमार हो जानेके कारण लाचारीसे इतनी शीघ्रता की गई, सो सब भाई क्षमा करैंगे. और इस ग्रंथका अवश्य ही एक दो बार स्वाध्याय कर जांयगें ऐसी सबसे प्रार्थना है ।

मुम्बई
सं. १९७७
वि. माघ सुदी १.

जैनी भाइयोंका दास.
पन्नालाल बा. दि. जैन.

श्रीवीतरागाय नमः

धर्मपरीक्षा भाषा।

दोहा।

पंचपरमपद वंदि कर, धर्म परीक्षा ग्रन्थ ॥
लिखूं वचनिकामय सरल, जो शिवपुरका पन्थ ॥ १ ॥

जिनके ज्ञानरूपी दीपकने तीन वातवलयरूपी उतंग मनोहर कोटवाले इस जगत्रूपी गृहको चारों तरफसे उद्योत रूप किया; वे तीर्थंकर भगवान् हमारे कल्याणरूपी लक्ष्मीके कारणरूप हों ॥ १ ॥ समस्त कर्मोंके नाश होनेपर अतिपवित्र प्रगट हुये निजस्वरूपको प्राप्त होकर जो तीन लोकमें शिरोमणि भूत होते हैं, वे सिद्ध भगवान मेरी शुद्धिकेलिये कारणभूत हों ॥ २ ॥ जिनके वचनरूपी किरणोंसे भव्यपुरुषोंके मनरूपी कमल एकवार प्रफुल्लित होकर फिर निद्राको (संकोचभावको) प्राप्त नहीं होते, और जो दोषोंके उदयको ही नहीं होने देते अर्थात् नष्ट कर देते हैं, वे आचार्योंमें सूर्य्यसमान आचार्य्यपरमेष्ठी मेरी चर्याको निर्दोष करो ॥ ३ ॥ जैसें भक्तिमान् पुत्रको मातापिता धनादिक सम्पत्तियें प्र-

दान करते हैं, उसीप्रकार अपने शिष्य वर्गोंको धार्मिक शिक्षारूपी धनके देनेवाले उपाध्याय मेरे समस्त दुख हरो ॥४॥ जो तीन जगतको पीडित करनेवाले कषायरूपी शत्रुको समता शीलादि शस्त्रोंसे विदारण करते हैं, वे समभावके धारक साधुरूप योधा मुझे मोक्षरूपी लक्ष्मीका पति करो ॥ ५ ॥ जिसके प्रसादसे विनयी पुरुष दुर्लंघ्य शास्त्ररूपी समुद्रके पार हो जाते हैं. वह सरस्वती (जिनवाणी) कामधेनुकी तरह मेरे मनोरथकी सिद्धिकरो ॥ ६ ॥ जिस प्रकार प्रबल पवनसे रेणुपुंज शीघ्र ही उड जाते हैं, उसी तरह इन स्तवनोंकर जगत्को उपद्रव करनेवाले, कम्पायमान होते हुये मेरे समस्त विघ्न क्षणभरमें नाशको प्राप्त हों ॥ ७ ॥

अपने गुणोंसे तीन लोकको आनन्द करनेवाले सुजन पर दुष्ट (खल) कोप करता है. जैसें अपनी किरणोंसे रात्रिको शोभायमान करनेवाले चन्द्रमाको देखकर क्या राहु नहीं ग्रसता ? किन्तु ग्रसता ही है ॥ ८ ॥ क्योंकि सत्पुरुषको देखकर दुर्जन, त्यागी ब्रह्मचारीको देखकर कामी, स्वभावसे रात्रिमें जगनेवालेको देखकर चौर, धर्मात्माको देखकर पापी, शूरवीरको देखकर भीरु (कायर) और कविको देखकर अकवि (मूर्ख) कोपको प्राप्त होता ही है। ९। मैं शंका करता हूं कि विधाताने सर्प, खल और काल (यमराज) ये परके अपकारार्थ ही बनाये हैं. यदि ऐसा नहीं होता तो, ये सब सुखरूप तिष्ठती प्रजाको देख किस-

लिये उद्वेगरूप करते हैं ? ॥१०॥ कवियोंकर आराध्यमान किया हुवा भी खल अपनी वक्रताको नहीं छोडता. जैसें, परको ताप करनेमें प्रवीण अग्नि, पूजा की हुई भी जला देती है. अपने स्वभावको नहिं छोडती ॥ ११ ॥ आचार्य शंका करते हैं कि, विधाताने मेघ, चन्दन, चंद्रमा और सत्पुरुष ये ४ पदार्थ एक ही जातिके बनाये हैं. यदि ऐसा नहीं होता तो ये सब विना कारण ही लोगोंका निरन्तर महान् उपकार क्यों करते? ॥१२॥ जिसप्रकार राहुकर पीडित किया हुवा (ग्रसाहुवा) भी चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणोंसे उस राहुकी भी तृप्ति करता है. इसीप्रकार दुर्जनोंकर तिरस्काररूप किया हुवा भी सज्जन पुरुष अपने गुणोंसे उन दुर्जनोंका भी सदा उपकार ही करता है ॥१३॥ जैसें स्वभावसे ही चन्द्रमाको शीतल और सूर्यको उष्ण देख कोई भी रागद्वेष नहिं करता. उसी प्रकार सज्जनमें गुण और दुर्जनमें दोष देखकर सत्पुरुष कुछ भी तोष रोष (हर्षविषाद) नहिं करते ॥ १४ ॥ जो धर्म गणधरोंकर परीक्षा किया गया है वह मुझकर किसप्रकार परीक्षा किया जा सक्ता है ? क्यों

(१) यह दृष्टांत अन्यमतकी अपेक्षा है. क्योंकि अन्यमतावलम्बी ब्रह्माको (विधाताको) जगत्का कर्ता मानते हैं. जैनी जगत्को अनादि निधन मानते हैं. परंतु कहीं २ दृष्टांत वगैरहमें अन्यमतकी अपेक्षा कहनेकी अनेक आचार्योंकी रूढि है. सो पाठक महाशय उसको सत्य व जिनमतप्रतिपाद्य न समझ लें.

कि जिस वृक्षको गजराज तोड सकता है उसको शशक (खरगोश) कदापि नहिं तोड सक्ता. ॥ १५ ॥ परन्तु प्रवीण आचार्योंने जिस धर्ममें प्रवेशकर मार्ग सरल कर दिया है तो उसमें मुझ सरीखे मूर्खका भी प्रवेश हो सक्ता है. क्योंकि वज्रकी (हीरेकी) सूईसे छिद्र किये हुये मुक्तामणिमें नरम सूत्र भी प्रवेश करता दीखपडता है. ॥ १६ ॥

अथानन्तर अकृत्रिम जम्बूवृक्षकर चिन्हित, अनेक रत्नमयी रचनाकर युक्त, अनेक राजाओंकर सेव्यमान चक्रवर्ति राजाके सदृश चारों तरफसे अनेक द्वीप समुद्रों कर वेष्टित, और लक्ष योजन है व्यास जिसका ऐसा गोलाकार यह जम्बूद्वीप है ॥ १७ ॥ इसमें हिमाचल पर्वतकी दक्षिण तरफ, तीन तरफसे समुद्रकर वेष्टित, धनुषाकार अति मनोहर यह भरतक्षेत्र है. सो ऐसा शोभता है मानो इसने अपनी धनुषाकार रूप शोभासे कामदेवके धनुषका भी तिरस्कार कर दिया है ॥ १८ ॥ और जिसप्रकार छह आवश्यकों (वंदना स्तवन आदि) से युक्त निर्दोष चारित्र मुनियोंको मुक्ति प्रदान करता है उसीप्रकार जो अपने अति मनोहर छह खंडोंके द्वारा मनुष्योंकर याचना करने योग्य चक्रवर्तिकी लक्ष्मीको प्रदान करता है. ॥ १९ ॥ वह हिमाचलसे निकली हुई गंगा सिन्धु दो बडी नदियोंकर तथा विजयार्द्ध पर्वतकर विभाग किया हुवा छह खंड रूप होगया है. जैसें अनेक विशेषता-लिये मन वचन कायरूप योगोंके द्वारा कर्मोंका समूह शुभ अशुभ

रूप ६ प्रकार हो जाता है ॥ २० ॥ इस भरत क्षेत्रके मध्य अनेक रमणीय स्थानोंकर संयुक्त पूर्वके समुद्र तटसे लेकर पश्चिम समुद्रके तट पर्यन्त लम्बा (यहां तक चक्रवर्तीकी आधी विजय होनेके कारण) यथार्थ नामका धारक विजयार्द्ध नामा पर्वत है, सो कैसा शोभता है कि मानों अपना देह पसारकर शेष नाग ही पडा है ॥ २१ ॥ वह विजयार्द्ध बढी हुई अपनी किरणोंके समूहसे नाश किया है महा अन्धकार जिसने ऐसा प्रकाशमान होता हुवा पृथिवीको भेदकर निकले हुये दूसरे सूर्य्यके सदृश शोभाको प्राप्त हो रहा है ॥ २२ ॥ इस विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर और दक्षिण तरफ विद्याधरोंकर सेवनीय दो श्रेणी हैं, सो कैसी हैं कि श्रवण करने योग्य मनोहर हैं गीत जिनके ऐसे, भ्रमरोंकर सहित हस्तीके दोनों गण्डस्थलोंपर मानो मदरेखा ही है ॥ २३ ॥ उनमेंसे दक्षिण श्रेणीपर ५० और उत्तर श्रेणीपर ६० इसप्रकार ११० निर्दोष कांतिवाले विद्याधरोंके नगर द्वादशांगके ज्ञाता गणधर भगवान्ने कहे हैं ॥ २४ ॥ सो यह उत्तंग विजयार्द्ध पर्वत विचित्र प्रकारके पात्र (पूज्य पुरुष) कटक (सेना) और रत्नोंके खजानोंकर प्रकाशमान देव अर विद्याधरोंकर सेवनीय हैं चरण जिसके ऐसे चक्रवर्ति राजाके समान शोभता है ॥ २५ ॥ उसपर सिद्धवर कूटके अकृत्रिम चैत्यालयोंमें विराजमान जिनेंद्र भगवानके अकृत्रिम प्रतिबिंब सेवन किये हुये, भव्यपुरुषोंके दुःखोंको, शीतको

अग्निशिखाके समान नष्ट करते हैं॥२६॥ जहांपर कर्मरूपी र-
जको नष्ट करनेमें तत्पर ऐसे चारण ऋद्धिके धारक मुमुक्षु
(मोक्षकी इच्छाकरनेवाले) मुनिगण अपने वचनोंकर गर्दको
दूर करनेमें उद्यत ऐसे गंभीर शब्दवाले बादलोंकी वर्षाके समान
जनसमूहको आश्वासन करते हुये उपदेश करते हैं ॥२७॥
उस विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीपर वैजयंती नामकी प्रसिद्ध
नगरी है. सो कैसी है कि मानो अनेक प्रकारके प्रकाशमान अ-
पने विमानोंकर शोभित देवोंकी नगरीको जीतती है ॥ २८ ॥
उस नगरीमें समस्त जन भोगभूमियोंकी समान निराकुलता
पूर्वक मनवांछित भोगोंको भोगते हुये परस्पर गाढानुराग
सहित सुखसे काल विताते हैं ॥ २९ ॥ आचार्य्य शंका
करते हैं कि,—मानो प्रजाको समस्त सुन्दरता एकही जगह
दिखानेके लिये ही विधाताने उस नगरीमें समस्त गृह
उत्तमोत्तम मनोहर चुन चुनके बनाये हैं ॥ ३० ॥ आचार्य
कहते हैं कि,—जिस नगरीमें अपनी प्रभा करके स्त्रियोंने
तो स्वर्गकी देवांगनाओंको, विद्याधरोंने देवोंको, विद्याध-
रोंके राजाओंनें इन्द्रोंको, मकानोंने विमानोंको, जीत लिया,
उस वैजयन्ती नगरीका वर्णन हमसे किस प्रकार हो सक्ता
है ? कदापि नहि हो सक्ता ॥ ३१ ॥ उस नगरीमें स्वर्गके
इन्द्रकी समान अपने प्रतापकर तिरस्कार किया है शत्रुओंका
तेज जिसने ऐसा, जितशत्रुनामा विद्याधरोंका मंडलीक राजा
राज्य करता था ॥ ३२ ॥ यद्यपि वह राजा अन्यके दोष

प्रगट करनेमें तो मौनी था, परन्तु न्याय शास्त्रके विचार करनेमें मौनी नहीं था. तथा परधन हरनेके लिये तो हस्त रहित था, परन्तु गर्विष्ठ वैरियोंका गर्व दूर करनेके लिये हाथ रहित नहीं था ॥ ३३ ॥ तथा परस्त्रियोंके अवलोकनमें तो अन्धा था परन्तु जिनेन्द्र भगवानकी मनोहर प्रतिमाओंके दर्शन करनेके लिये अन्धा नहीं था. यद्यपि पाप कार्य्य करनेके लिये तो वह शक्तिरहित निर्बल था, परन्तु शिव-सुखकारी धर्म कार्योंको सम्पादन करनेके लिये शक्तिहीन नहीं था ॥ ३४ ॥ चन्द्रमा तो कलंकी है, सूर्य आतापकारी है, समुद्र जडरूप है, सुमेरु पर्वत कठोर है और इन्द्र गोत्र-भेदी है. इस कारण चन्द्र सूर्य्य समुद्र सुमेरु और इन्द्र उस राजाके समान नहिं हो सकते, क्योंकि उस राजामें उपर्युक्त अवगुणोंमेंसे एक भी अवगुण नहीं था ॥ ३५ ॥ यद्यपि वह राजा पार्थिव था परन्तु पार्थिव कहिये पृथिवीका विकार पाषाणादि जडरूप अज्ञानी नहीं था. किन्तु उत्तम ज्ञानका धारक था. तथा वह राजा पावन (पवित्र) था परन्तु पावन कहिये पवनका विकार अस्थिर नहीं था अर्थात् स्थिरचित्त-वाला था. तथा वह राजा कलानिधान (कलाओंका निधान चतुराइयोंका सागर) था, परन्तु कलानिधान कहिये चंद्रमा-की सदृश कलंकी नहीं था, अर्थात् सर्व दोष रहित था, इसके सिवाय वह राजा वृषवर्द्धन (धर्मका बढानेवाला) होनेपर भी सत्यानुरागी था अर्थात् वृषवर्द्धन कहिये महादेव सत्या-

सत्यभामाका अनुरागी नहिं है, किन्तु यह सत्यका अनुरागी था ॥ उस राजाके जिन धर्मसम्बन्धी पारमार्थिक तथा सांसारिक विद्याओंकी जानकार, और वृद्धिरूप है कामरूपी पवनका वेग जिसके ऐसी वायुवेगा नामकी विद्याधरी अतिशय प्यारी रानी थी ॥ ३७ ॥

किसी किसी स्त्रीमें नेत्रोंको हरण करनेवाला रूप होता है और किसी २ स्त्रीमें विद्वानोंकर प्रशंसनीय शील भी होता है. परन्तु उस वायुवेगा रानीमें अनन्यलभ्य कहिये अन्य किसी स्त्रीमें नहीं पाया जाय ऐसा महाकान्ति सहित रूप और शील दोनों थे ॥ ३८ ॥ महादेवके पार्वतीकी सदृश, विष्णुके लक्ष्मीकी सदृश, दीपकके शिखाकी तरहें, साधुके दयाकी समान, चन्द्रमाके चांदनीके समान, सूर्य्यके प्रभाके समान उस जितशत्रुराजाके वह मृगाक्षी अभिन्नरूप (दो देह होनेपर भी एक जीव सरीखी) प्रिया थी ॥ आचार्य्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि,—विधाताने उस महाकांतिवाली वायुवेगाको बनाकर उसकी रक्षा करनेके लिये कामको मानो रक्षक ही बनाया है. यदि ऐसा न होता तो उसे देखनेवाले समस्त जनोंको कामदेव अपने बाणोंसे क्यों बेधता ? अर्थात् वह रानी बडी रूपवती थी. उसको जो कोई देखता वही कामबाणके मारे पागलसा हो जाता था. ॥४०॥ वह वायुवेगा हाथोंकर तो पत्रमयी, नेत्रोंकर पुष्पमयी स्तनोंकर फली हुई, और तरुण पुरुषोंके नेत्ररूपी भ्रमरोंकर गाही हुई (कुचली हुई) तरुणतारूपी मनोहर बेलके

समान शोभती थी ॥ ४१ ॥ चिंतवन करते ही प्राप्त हैं मनोहर भोग जिसको ऐसा, वह जितशत्रु राजा उस वायुवेगाके साथ रमता हुवा शचीके साथ इन्द्र तथा रतिके साथ कामकी तरह समय विताता था ॥ ४२ ॥ सो वह तन्वी उस विद्याधरोंके राजा द्वारा सेवन की हुई, प्रशंसनीय है वेग जिसका, महा उदयरूप, शोकको दूर करनेवाले, नीतिकी तरह प्रार्थना करने योग्य मनोवेग नामा पुत्रको जनती हुई ॥ ४३ ॥ सो अपने कलाके समूहसे चन्द्रमाकी तरह नष्ट किया है अन्धकार जिसने ऐसा, निर्मल चरित्रवाला वह कुमार दिनोंदिन अपने निर्मल गुणसमूहके साथ साथ वढता हुवा ॥ ४४ ॥ जैसें लक्ष्मीका (रत्नोंका) घर, स्थिर, गंभीर, समुद्र अपनी लहरोंसे नदियोंको ग्रहण करता है. वैसें यह कुमार भी अपनी निर्मल बुद्धिसे राजाओंकी चार प्रकारकी विद्यायें ग्रहण करता हुवा ॥ ४५ ॥ वह महानुभाव कुमार वाल्यावस्थामें ही मुनीन्द्र महाराजोंके चरणकमलोंका भौंरा, जिनेन्द्र भगवानके वाक्यामृतके पानसे पुष्ट समीचीन जैनधर्मका अनुरागी, पूजनीय बुद्धिका धारक था ॥ ४६ ॥ अनन्त है सुख जिसमें ऐसी परमपूज्य, सिद्ध वधूको शीघ्र ही वश करनेमें समर्थ, भवरूपी दावानलको जलके समान ऐसे क्षायिक सम्यक्त्वरूपी रत्नको वह कुमार धारण करता हुवा ॥ ४७ ॥ उस सुचतुर मनोवेगका मनवांछित कार्य्यकी सिद्धि करनेवाला मि-

यापुरी नगरीके विद्याधर राजाका वेगशाली पवनवेग नामा पुत्र प्रियमित्र होता भया सो जिसप्रकार अग्निको वेगरूप करनेके लिये पवन होता है, उसीप्रकार यह पवनवेग भी मनोवेगके मनको वेगरूप (चंचल) करनेवाला मित्र होता हुवा ॥ ४८ ॥ ये दोनों मित्र परस्पर एक दूसरेके विना एक क्षण भी रहनेमें असमर्थ, महा प्रतापशाली, सूर्य और दिनकी तरह एक ही जगह रहनेवाले, सज्जन पुरुषोंको सन्मार्ग प्रकाश करनेमें प्रवीण होते भये ॥ ४९ ॥ इन दोनोंमेंसे प्रियापुरीके राजाका पुत्र पवनवेग महा मिथ्यात्वरूपी विषसे मूर्छित, जिनेन्द्र भगवानके तत्त्वोंसे बाह्य, कुतर्क और खोटे दृष्टान्त देने आदिमें बडा विवाद करनेवाला था ॥ ५० ॥ परंतु जिनेन्द्रके धर्मरूपी अमृतमें मग्न है चित्तकी वृत्ति जिसकी ऐसा मनोवेग भव्य, उसको जिनधर्मसे विमुख मिथ्याती देख मन ही मन असह्य शोकके साथ संतप्त होता भया ॥ ५१ ॥ बडे कष्टसे होता है अन्त जिसका ऐसे दुःखमें पडते हुये मिथ्यात्वसे मूर्छित इस अपने मित्रको निवारण करूंगा क्योंकि सुधी लोग उसीको हितैषीमित्र कहते हैं कि जो कुमार्गसे छुडाकर समीचीन पवित्र धर्ममें लगावे. ॥ ५२ ॥ मिथ्यात्वसे छुटाकर किसप्रकार अपने मित्रको जिनधर्ममें लगाना चाहिये. इत्यादि विषय को ही अहोरात्र चिंतवन करता हुवा मनोवेग निद्रारहित होता भया अर्थात् इसी चिंताके कारण मनोवेगको रात्रिमें निद्रा

ही नहिं आती थी ॥ ५३ ॥ सो वह मनोवेग नित्य ही अढाई द्वीपके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंका (मंदिरोंका) दर्शन करता हुवा फिरता था. क्योंकि जो सत्पुरुष होते हैं वे धर्म कार्य्योंमें कदापि आलस्य नहिं करते ॥ ५४ ॥

एकदिन मनोवेग कृत्रिम अकृत्रिम दो भेद रूप समस्त चैत्यालयोंके दर्शन करके अपने घरको लौटकर आता था, सो मार्गमें एकजगह उसका विमान अटक गया. ॥ ५५ ॥ अपने विमानके अटक जानेसे घवरा गया है चित्त जिसका ऐसा मनोवेग विचार करने लगा कि यह विमान किसी वैरीने अटका दिया अथवा किसी ऋद्धिधारी मुनिके प्रभावसे अटका है ? ॥ ५६ ॥ विमानके अटकनेका कारण जाननेके लिये मनोवेग नीचे पृथिवीको देखता हुवा. सो उसने अनेक पुर ग्रामोंकर अत्यन्त रमणीय मालवे देशको देखा ॥ ५७ ॥ उस मालव देशके मध्यभागमें जगत्प्रसिद्ध अति विस्तीर्ण, पृथिवीकी उत्तम ऋद्धि और शोभाको देखनेके लिये मानो स्वर्गपुरी ही आई हो, ऐसी उज्जयिनी नामा नगरी देखी ॥ ५८ ॥ उस नगरीका कोट चन्द्रमाकी किरण समान उज्वल और बहुत ऊंचा शोभायमान था सो मानो पृथिवीको भेदकर, उज्वल रत्न है मस्तकपर जिसके ऐसा शेषनाग ही स्वर्गको देखनेके लिये आया है ॥ ५९ ॥ उस नगरीके चारों तरफ वेश्याकी मनोवृत्तिके सदृश, उत्पन्न हुये हैं वडे वडे जलजंतु जिसमें उनकर क्रूर और कष्टरूप है

अवेश जिसका तथा अतल स्पर्श है मध्यभाग जिसका ऐसी खाई शोभायमान है. भावार्थ—वह खाई वेश्याके मनोभावको जतानेवाली है. ॥ ६० ॥ उस नगरीमें मकान ऐसे हैं कि जिनके शिखर आकाशको स्पर्श करते हैं और जिनमें मृदंगादि अनेक प्रकारके वाजोंके शब्द हो रहे हैं, मानो वे मकान अपनेपर फहराते हुये धुजारूपी हाथोंके द्वारा कलिके प्रवेशको निवारण ही कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ उस नगरीमें स्त्रियां बडी चतुर रमणीय रूपवती शोभायमान भ्रूरूपी धनुषके द्वारा नेत्रोंके कटाक्षरूपी बाणोंको चलाकर तरुण जनोंके समूहको व्यथित करती हुई स्वर्गकी देवांगनाओंको भी जीतती थीं ॥ ६२ ॥ ग्रंथकर्त्ता कहते हैं कि जिस नगरीको देखकर महानिधानके अधिपतिपनेका गर्व रखनेवाले कुवेर भी अपने हृदयमें दुर्निवार लज्जाको प्राप्त होते हैं, उस नगरीका वर्णन किसप्रकार हो सक्ता है ? ॥ ६३ ॥ उस नगरीकी उत्तर दिशामें सत्पुरुषोंकी समान महाफलके देनेवाले, और तृप्त किये हैं समस्त प्राणियोंके समूह जिनोंने ऐसे और समस्त ऋतु सम्बंधी दिखाई है विचित्र शोभा जिन्होंने परस्पर विरोध रखनेवाले जीवोंकर विराजमान, समस्त इन्द्रियोंको आनन्दकारी, मनको अतिशय प्रिय धान्य और वृक्षोंकर समस्त दिशाओंको सुशोभित करनेवाला एक मनोहर-वन शोभायमान है ॥ ६४–६५ ॥ उस वनमें नर सुरविद्याधरोंकर उपासित, केवलज्ञानी, नष्ट किये हैं घातिया

कर्म जिन्होंने, संसारसमुद्रसे तरनेको नौका समान, बहुत ऊंचे स्फटिकमयी सिंहासनपर विराजमान प्रफुल्लित किरणोंके समूहकर चन्द्रमाकी तरह मुनियोंकर सेवित, अपने यशरूप पुंजको प्रकाशित करते हुये एक महामुनि देखे ॥६६-६७॥ सो तीन भुवनके इन्द्रोंकर वन्दनीक ऐसे मुनीश्वरको देखकर जैसें मयूरको रजके हरण करनेवाले मेघको देखकर अथवा चिरकालके बिछुडे हुयेको प्रिय सहोदर देखकर आनंद होता है उसी प्रकार मनोवेग महानन्दको प्राप्त होता भया। तत्पश्चात् वह मनोवेग मुनिमहाराजके चरणोंके दर्शनार्थ अत्युत्सुक हो आकाशसे उतरकर इन्द्रके समान वनमें प्रवेश करता हुआ. कैसा है मनोवेग कृती कहिये पंडित है. और फैली हुई है रत्नोंकी ज्योति जिसमेंसे ऐसे मुकुटकर अत्यंत शोभायमान है ॥ ६९ ॥ अमितगतिविकल्पैः कहिये अप्रमाण है ज्ञानके भेद जिनके, मस्तकपर स्थापे हैं हाथ जिन्होंने ऐसे मनुष्य विद्याधर देवनके समूहकर वन्दनीक, यति मुनियों-सहित जिनेन्द्र केवली भगवानको बारम्बार नमस्कार करकें वह मनोवेग सन्तुष्टचित्त हो मुनियोंकी सभामें बैठताहुवा ७०॥

इति श्रीअमितगतिआचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथके पन्नालाल बाकलीवालकृत भाषानुवादमें प्रथम परिच्छेद पूर्ण भया ॥ १ ॥

अथानन्तर उस सभामें किसी एक भव्य पुरुषने अवधि ज्ञानी जिनमति नामक मुनिमहाराजको नमस्कार करके विनय सहित पूछा कि हे भगवन् ! इस असार संसारमें फिरते हुये जीवोंको सुख तो कितना है और दुःख कितना है सो कृपा करके मुझे कहिये ॥ १–२ ॥ यह प्रश्न सुनकर मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! संसारके सुख दुःखको विभागकर कहना बड़ा कठिन है. तथापि एक दृष्टान्तके द्वारा किंचिन्मात्र कहा जाता है. क्योंकि दृष्टान्तके विना अल्पज्ञ जीवोंकी समझमें नहिं आता सो ध्यान देकर सुन ॥ ३—४ ॥

अनेक जीवोंकर भरे हुये इस संसाररूपी वनके समान एक महावनमें दैवयोगसे कोई पथिक (रस्तागीर) प्रवेश करता हुवा ॥ ५ ॥ सो उस वनमें यमराजकी समान सूंडेको ऊंची किये हुये क्रोधायमान बहुत बडे भयंकर हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ६ ॥ उस हाथीने उस पथिकको भीलोंके मार्गसे अपने आगे कर लिया और उसके आगे २ भागता हुवा वह पथिक पहिले नहिं देखा ऐसे एक अन्धकूपमें गिर पडा ॥ ७ ॥ जिसप्रकार नरकमें नारकी धर्मका अवलम्बन करके रहता है, उसी प्रकार वह भयभीत पथिक उस कूपमें गिरता २ सरस्तंब कहिये सरकी जडको अथवा वडकी जडको पकडकर लटकता हुवा तिष्ठा ॥ ८ ॥ सो हाथीके भयसे भयभीत हो नीचेको देखता है तो उस कूयेमें यमराजके दण्डकी समान पडा हुवा बहुत

बडा एक अजगर देखा ॥ ९ ॥ फिर क्या देखा कि उस सरस्तंबकी जडको एक श्वेत और काला दो मूसे निरन्तर काट रहे हैं. जैसें शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मनुष्यकी आयुको काटते हैं ॥ १०॥ इसके सिवाय उस कूपमें चार कषायकी समान बहुत लम्बे २ अति भयानक चलते फिरते चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥ ११ ॥ उसी समय उस हाथीने क्रोधित होकर संयमको असंयमकी तरह कूपके तटपर खडे हुये वृक्षको पकडकर जोरसे हिलाया ॥ १२ ॥ सो उसके हिलनेसे उसपर जो मधुमक्खियोंका छत्ता था उसमेंसे समस्त मक्खियें निकल कर दुःसह वेदनाओंके समान उस पथिकके शरीरपर चिपट गईं ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों तरफ मर्मभेदी पीडा देनेवाली उन मधु मक्खियोंसे घिरा हुवा अतिशय दुःखित हो ऊपरिको देखने लगा ॥ १४ ॥ सो वृक्षकी तरफ मुखको उठाकर देखते ही उसके होटों पर बहुत छोटा एक मधुका बिन्दु आ पडा ॥ १५ ॥ सो वह मूर्ख उस नरककी बाधासे भी अधिक बाधाको कुछ भी दुख न समझ उस मधुबिंदुके स्वादको लेता हुवा अपनेको महा सुखी मानने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अधम पथिक उन समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुकणके स्वादमें ही आशक्त हो फिर मधुबिन्दुके पडनेकी अभिलाषा करता हुवा लटकता रहा ॥१७॥ सो हे भाई ! उस समय पथिकके जितना सुख दुःख है उतना ही सुख दुःख महाकष्टों

की खानिरूप इस संसाररूपी घरमें इस जीवके है ॥ १८ ॥

सो जिनेंद्र भगवान्ने कहा है कि वह वन तो पाप है, वह पथिक है सो जीव है. हस्ती है सो मृत्यु [यमराज] की समान है. वह सरस्तम्ब है सो जीवकी आयु उमर है और कूआ है सो संसार है ॥ १९ ॥ अजगर है सो नरक है. श्वेतश्याम दो मूषक हैं सो शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष हैं, सो उमरको घटा रहे हैं. और चार सर्प हैं सोई क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय हैं. तथा मधुमक्षिकायें हैं सो शरीरके रोग हैं ॥ २० ॥ मधूके बिन्दुका जो स्वाद है सो इन्द्रियजनित सुख [सुखाभास मात्र] है. इसप्रकार संसारमें सुख दुःखका विभाग है ॥ २१ ॥ वास्तवमें इस संसारमें भ्रमण करते हुये जीवोंके सुख दुःखका विभाग किया जाय तो मेरुपर्वतकी बराबर तो दुःख है और सरसोंकी बराबर सुख है. इस कारण संसारके त्याग करनेमें ही निरन्तर उद्यम करना चाहिये ॥ २२–२३ ॥ जो मूढ अणुमात्र सुखके लिये विषयभोग सेवन करते हैं, वे मानो शीतकी बाधा दूर करनेके लिये वज्राग्निसे [विजलीकी अग्निसे] तापनेकी इच्छा करते हैं ॥ २४ ॥ यदि ढूंढा जाय तो कहींपर अग्निमें भी वर्फ मिल सक्ता है. परन्तु संसारमें सुखकी प्राप्ति किसी कालमें कभी भी नहीं है ॥ २५ ॥ मूढ लोक विषय भोग सम्बंधी दुःखोंको सुखके नामसे कहते हैं. परन्तु वास्तवमें वे सुख नहीं है. जैसें बुझे हुये दीपकको 'बढ गया' कहते

हैं उसी प्रकार यह भी है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार धतूरेके पीनेसे नसा होनेपर मनुष्यको सोना [पीला ही पीला] दीखता है, उसी प्रकार विषयोंकी आकुलतासे संसारी जीव दुःखदायक भोगोंको सुखदायक मानते हैं ॥ २७ ॥ सुख धर्मके प्रभावसे ही होता है सो धर्मकी रक्षा-पूर्वक विषयसुख भोगना चाहिये. जैसें वृक्षसे फल मिलते हैं, परन्तु वृक्षकी रक्षा करके फलको भोगना चाहिये. न कि वृक्षको बिगाड़-कर ॥ २८ ॥ सज्जन पुरुष हैं ते दुःखोंको पापसे उत्पन्न होते हुये देख पापको छोड़ते हैं. सो ऐसा कौन मूर्ख है जो 'अग्निसे आताप होता है' ऐसा जानता हुवा भी अग्निमें प्रवेश करै ? ॥ २९ ॥ ये जीव धर्मके प्रभावसे ही सुन्दर सुभग, सौम्य, उच्च, कुली, शीलवान पंडित चन्द्रमाकी समान उज्वल स्थिर कीर्तिके धारक होते हैं ॥ ३० ॥ और पापके प्रभावसे कुरूप सबको बुरे लगनेवाले, नीच कुली, कुशीली, मूढ, बदनाम और दुष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ धर्मके प्रभावसे तो ये जीव हाथीपर सवार हो सबसे आदरसत्कार पाते हुये चलते हैं और पापके प्रभावसे निन्दित हो उन्हीके आगे आगे दौड़ते हैं. ॥ ३२ ॥ धर्मके प्रभावसे तो सुन्दरताको उत्पन्न करनेवाली पृथिवीके समान प्रिय स्त्रियोंको पाते हैं. पापके प्रभावसे बिचारे दीन होकर उन्ही स्त्रियोंको पालकीमें बिठाकर कहार बनके उठाये फिरते हैं ॥ धर्मके प्रभावसे कोई तो कल्पवृक्षके समान दान करते हैं

और कोई पापके प्रभावसे नित्य हाथ पसार कर याचना करते हैं ॥ ३४ ॥ धर्मात्मा पुरुष हैं वे तो मनोहर स्त्रियोंसे आलिंगन करते हुये रत्नमयी महलोंमें सोते हैं और पापी हैं ते हाथोंमें शस्त्र धारण कर उन्हीकी रक्षा करते हैं अर्थात् पहरा देते हैं ॥ ३५ ॥ धर्मात्मा पुरुष तो सुवर्णके पात्रोंमें मिष्ट आहार भोजन करते हैं. और पापी हैं ते कुत्तेकी समान उनकी उच्छिष्ट खाते हैं ॥ ३६ ॥ धर्मात्मा पुरुष तो बहु मूल्य कोमल सचिक्कण वस्त्रोंको धारण करते हैं. पापियोंको सैकडों छिद्रवाली एक लंगोटी भी नहीं मिलती ॥३७॥ पुण्यके प्रतापसे तो महापुरुषोंके लोकमें प्रसिद्ध यशोगान किये जाते हैं. और पापी हैं ते उन्ही लोगोंके आगे सैकडों खुशामदें करते हैं ॥ ३८ ॥ धर्मके ही प्रभावसे दशों दिशाओंमें फैली है कीर्ति जिनकी ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ति, नारायण प्रतिनारायण आदि महापुरुष होते हैं ॥ ३९ ॥ और पापके प्रभावसे लोकमें निंदनीक बावने, पांगले, लंगडे अधिक रोमवाले, परके दास, दुष्ट और नीच होते हैं ॥ ४० ॥ धर्म है सो मनवांछित भोग, धन और मोक्षको देनेवाला है और पाप है सो इन सबोंको नाश करनेवाला समस्त अनर्थोंकी खानि है ॥ ४१ ॥ ज्ञानी अज्ञानी सभी जन कहते हैं कि इस संसारमें जो कुछ भला (इष्ट] है वह तो धर्मसे होता है और बुरा अनिष्ट है सो पापसे होता है. यह नियम जगत्में विख्यात है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार प्रत्यक्षतया धर्म अ-

धर्मका फल जानकर बुद्धिमान् पुरुष अधर्मको सर्वथा त्याग़कर सदैव धर्माचरण ही करते रहते हैं और ॥ ४३ ॥ नीच हैं ते जो कुछ कर्म करते हैं सो एक इसी जन्मके लिये करते हैं. जिससे वे लाखों भवोंमें अनेक प्रकारके दुःख पाते हैं ॥ ४४ ॥ असह्य दुःखोंको बढानेवाले विषयरूपी मदिरासे मोहित हुये कुटिलजन आजकलके दो दिन मात्रके जीवनमें भी पापकार्योंको करते हैं ॥ ४५ ॥ इस क्षणभंगुर संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है. जो सुखदायक, साथ जानेवाली, पवित्र स्वाधीन और अविनश्वर हो ॥ ४६ ॥ क्योंकि तरुण अवस्था है सो तो जराकर ग्रसित है, आयु है सो मृत्युकर और सम्पदा है सो विपदाकर ग्रस्त है. निरुपद्रव है तो एक मात्र पुरुषोंकी तृष्णा ही है ॥ ४७ ॥ यह प्राणी चाहे परवतपर चढै, चाहे पातालमें पैठ जावे, चाहे पृथिवी मात्रमें भ्रमण करता रहै परन्तु काल (मृत्यु) तो कहीं भी नहीं छोडता ॥ ४८ ॥ आते हुए कालरूपी मदोन्मत्त हस्तीको रोकनेके लिए, सज्जन, माता, पिता, भार्य्या, बहन, भाई पुत्र वगैरह कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ४९ ॥ कालरूपी राक्षसकर भक्षण करते हुये जीवकी रक्षा करनेको हस्ती, घोडा, रथ, पयादा, इनकर अतिपुष्ट चार प्रकारकी सेना भी समर्थ नहिं है ॥ ५० ॥ कुपित हुवा यमरूपी सर्प, दान, पूजा, मिताहार, वा ऊनोदर तप मंत्र यन्त्र और रसायनों करके भी निवारण करना अशक्य है ॥ ५१ ॥

जलती हुई मृत्युरूपी अग्नि बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्री, धनाढ्य, निर्धन, मूर्ख, पण्डित, शूर, कायर, समर्थ, असमर्थ, दानी, कृपण, पापी, धर्मात्मा, सज्जन, दुर्जन आदि किसी जीवको भी नहिं छोडती अर्थात् काल किसीको भी नहिं छोडता ॥ ५३—५४ ॥ जो मृत्यु देवोंकर सहित इन्द्रको भी हणती है. उस मृत्युको मनुष्योंके मारनेमें तो कुछ भी खेद नहिं है क्योंकि ॥ ५४ ॥ जो अग्नि दृढ पाषाणोंसे बन्धे हुये पर्वतोंको जला देती है तो वह तृण समूहको कैसे छोडैगी ? ॥ ५५ ॥ जीवोंको चर्वण करनेमें प्रवृत्त हुवा काल जिससे निवारण किया जाय ऐसा कोई भी उपाय न तो है और न हुवा और न हो सक्ता है, ॥ ५६ ॥ अथवा रत्नत्रय रूप है लक्षण जिसका ऐसे सर्वज्ञ भाषित धर्मके सिवाय जरा और मरणको मर्दन करनेमें अन्य कोई भी समर्थ नही है ॥ ५७ ॥ जीवन, मरण, सुख, दुःख, सम्पति, विपत्तिमें यह जीव सदाकाल अकेला ही रहता है इसका कोई भी सहायक नहिं है ॥ ५८ ॥ इस जीवके बान्धवादि कुटुम्बी जन हैं ते इस जन्ममें ही भिन्न २ स्वभावके धारक होते हुए भिन्न २ हैं तो वे अपने कर्मोंके वशीभूत रहनेवाले अगले भवमें किस प्रकार भिन्न नहिं होंगे ? अवश्य होंगे. ॥ ५९ ॥ इस कारण वास्तवमें विचार किया जाय तो इस आत्माका अपनेको छोडकर दूसरा कोई भी आत्मीय वा अपना नहीं है. और " यह

मेरा है यह पर है " इत्यादि जो कल्पना है सो मोहकर्म-जनित कल्पना मात्र ही है ॥ ६० ॥ जिस आत्माकी देहके साथ ही एकता नही है. तो उसके प्रत्यक्षमें बाह्यभूत मित्र पुत्र धनादिकसे किस प्रकार एकता हो सक्ती है ? ॥ ६१ ॥ जगत्के समस्त जन अपना स्वार्थ देखकर ही मनुष्यकी सेवा करते हैं जब स्वार्थ नहीं सधता है, तब अपना एक वचनमात्र भी व्यय नहिं करते ॥ ६२ ॥ यह भले प्रकार निश्चित है कि बिना स्वार्थके कोई भी स्नेह नहीं करता. और तो क्या छोटासा बच्चा भी माताके स्तनोंको दूधरहित होनेपर झट छोड देता है ॥ संसारी जन हैं ते दुःखदाताको सुखदाता विनश्वरको स्थिर और आत्मीयको अपना स्वरूप मानकर पापका संग्रह करते हैं. सो बडा खेद है ॥ ६४ ॥ संसारी जन कैसे मूर्ख हैं कि पाप तो पुत्र मित्र और शरीरके निमित्त करते हैं, परंतु नरकादिके घोर दुःख अकेले ही सहन करते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी समुद्रमें ढूंढा जाय तो कहीं भी सुख नहिं दीखता क्योंकि केलेके थंभको छीला जाय तो क्या उसमेंसे किसीने सार निकलते देखा है ? कदापि नहिं. उसी प्रकार यह संसार साररहित है ६६ ' कोई भी अपने साथ नहिं जा सक्ता ' इसप्रकार जानते हुए भी उसके लिए पापारंभ रचते हैं सो इससे अधिक मूर्खता क्या होगी ? ॥ ६७ ॥ इन्द्रियजनित विषयोंके भोगनेसे दुःख ही होता है और तपादिकमें क्लेश करनेसे सुख होता

है. इसकारण उस सुखकी रक्षाके लिये इन्द्रियजनित सुखको छोडकर विद्वज्जन हैं ते तपाचरण करते हैं ॥६८॥ जो विषय, पोषण किये हुये भी निरंतर महादुःख देते हैं उन विषयोंके सिवाय और ऐसा कौन वैरी है ? जो दुस्त्यज अर्थात् कठिनतासे छूटनेवाला हो ॥ ६९ ॥ जो प्रार्थना करनेसे तो आते नहीं और विना भेजे ही अपने आप चले जांय, ऐसे धन कुटुम्ब गृहादिक अपने किसप्रकार हो सक्ते हैं ? ॥ ७० ॥ जिससंसारमें विश्वास है, वहां तो भय है, और जिस मोक्षमें विश्वास नहीं है, वहांपर सदा श्रेष्ठ सुख है ॥ ७१ ॥ जो जीव अपना आत्मकल्याण छोडकर अपनेसे भिन्न इस देहके कार्यमें लगे हैं, वे परके दास हैं; उनसे अधिक कोई दूसरा निन्द्य नहीं है ॥ ७२ ॥ जो अनेक भवोंके पवित्र सुख हर लेते हैं, वे पुत्रादिक कुटुम्बी जन चोरोंसे अधिक क्यों नहीं हैं ? अवश्य हैं ॥ ७३ ॥ विद्वानोंको चाहिये कि सांसारिक समस्त सुखोंको आत्माके शत्रु जानकर सदा जिनेन्द्र भगवान्‌कर भाषित अपने हितू धर्मको धारण करैं ॥७४॥ जो क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे (कोमलतासे) मानको, आर्जवसे (सरलतासे) मायाको और संतोषके द्वारा लोभको नष्ट कर देता है. उसीके धर्म होता है ॥ ७५ ॥ तथा शुद्ध ब्रह्मचर्य्य धारण करनेवालोंके भगवानकी पूजा करनेवालोंके उत्तम पात्रोंको दान देनेवालोंके पर्वके दिन उपवास धारण करनेवालोंके ॥ ७६ ॥ जीवोंकी रक्षा करनेवालोंके, सत्य-

वचन बोलनेवालोंके, अदत्त ग्रहण न करनेवालोंके, राक्षसीकी तरह स्त्रीका त्याग करनेवालोंके ॥ ७७ ॥ परिग्रह वजनेवाले वीर वीरोंके, संतोषामृत पीनेवालोंके, वात्सल्य धर्मसे प्रीति के धारण करनेवालोंके और विनयी पुरुषोंके ही पवित्र धर्म होता है ॥ ७८ ॥ जो कोई जिनेन्द्रभगवानकर भाषित धर्मको चित्तसे भावना करता है सो महा दुःखदायक संसाररूपी दावानलको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥ ७९ ॥

योगिराजके इस प्रकार धर्मोपदेशामृतसे समस्त सभा ऐसी तृप्त हो गई कि जैसे मेहके जलसे तप्तायमान पृथिवी शीतल हो जाती है ॥ ८० ॥ अवधिज्ञान है नेत्र जिनके, वात्सल्य कार्यमें कुशल, ऐसे वे योगिराज धर्मोपदेश दे चुके तब मनोवेगको जितशत्रुका पुत्र जान कर निम्नलिखित प्रकारसे कुशल समाचार पूछते हुये. क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंका भी भव्य पुरुषोंके लिये पक्षपात होता है ॥ ८१ ॥ "हे भद्र ! तुम्हारा भव्य पिता, परिवारसहित धर्मकार्य्योंमें तत्पर कुशलसे तो है ?" इस प्रश्नको सुनकर विद्याधरका पुत्र मनोवेग प्रसन्नचित हो कर इस प्रकार कहता हुवा, ॥ ८२ ॥ कि हे भगवन् ! जिसकी रक्षा सदा काल आपके चरणारविन्द करते हैं, उस विद्याधरपति-जितशत्रुके किसप्रकार विघ्न हो सक्ते हैं ? क्योंकि जिसकी रक्षा साक्षात् गरुडराज करते हैं, उसको किसी कालमें भी सर्पकी बाधा नहिं हो सक्ती ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहके मस्तकपर

हाथ रख विनयपूर्वक खडे होकर केवलज्ञानरूपी किरणोंसे प्रकाशित किये हैं समस्त पदार्थ जिन्होंने ऐसे केवलीरूपी भगवान् सूर्यको विनयके साथ नमस्कार करके वह निम्नलिखित प्रश्न करता हुवा क्योंकि ऐसे सूर्यके अतिरिक्त समस्त प्रकारके संशयरूपी अन्धकारका नाशक अन्य कोई नही हैं ॥ ८४ ॥ हे देव ! प्राणोंसे भी प्रिय मेरा मित्र पवनवेग विद्याधर मिथ्यात्वरूपी दुर्जर विषकर आकुलित विपरीत श्रद्धान हो प्रवर्तता है. सो कभी इस पवित्र जिनेन्द्र धर्ममें भी प्रवर्तेगा या नहीं ? सो कृपाकर मुझे सूचित कीजिये ॥ ८५ ॥ हे देव ! उस पवनवेगको कुमार्गमें प्रवर्तता हुवा देखता हूं तो मेरे हृदयमें वज्राग्निकी शिखाके समान अनिवार्य तापकी उपजानेवाली चिंता उत्पन्न हो जाती है. क्योंकि समानशील गुणवालोंके साथ की हुई मित्रता ही सुखदायक होती है ॥ ८६ ॥ जो अनेक प्रकारके दुःखोंके खानिरूप मिथ्यात्व मार्गमें लवलीन चित्त हो प्रवर्तते हुवे अपने मित्रको निवारण नहिं करते वे निश्चय करके उसको सर्पांकर भयंकर महागंभीर कुएमें ढकेलते हैं ॥ ८७ ॥ जीवोंके मिथ्यात्वकी समान तो दूसरा महा अन्धकार नहीं है, और सम्यक्त्वकी समान और कोई विवेककारी नहीं है जिसप्रकार संसारकी बराबर अन्य कोई निषेध करने योग्य वस्तु नही हैं, उसी प्रकार मोक्षकी बराबर अन्य कोई प्रार्थना करनेयोग्य भी नहीं है ॥८८॥ हे भगवन् ! उसके पवित्र भव्य-

पणा है कि नहीं ? क्योंकि भव्यताके विना तत्त्वसमूहकी रचना व्यर्थ होती है, जैसे कोरडू मूंगको सिजानेकेलिये समस्त प्रकारके किये हुये उपाय व्यर्थ होते हैं तैसे अभव्यको वस्तुका स्वरूप समझाना भी व्यर्थ है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार प्रश्न करके मनोवेगके चुप रहनेके पश्चात् केवली भगवान्‌की उज्वल मनोहर वाणी प्रगट हुई कि, "हे भद्र! कुसुमनगर में (पटनेमें) ले जाकर तत्त्वोपदेश कर समझावेगा तो तेरा मित्र शीघ्रही मिथ्यात्वरूपी पापको छोड देगा ॥ ९० ॥ हे सुबुद्धे ! जिस प्रकार निरन्तर असह्य दुःखके देनेवाले शरीरमें गडे हुये कांटे वगेरहको सुई आदिसे निकालते हैं, उसीप्रकार पवनवेगके चित्तमें ठसे हुये मिथ्यात्वरूपी कांटेको अनेक दृष्टांतोंके समूहसे अवगाहन कर निकालना ॥९१॥ वहां पटनेमें पूर्वापरादि अनेक दूषणोंसे दूषित अन्य मतोंको अत्यंत देखता वह अनेक दोषवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको छोडकर शीघ्र ही ज्ञानरूपी प्रकाशमें आ जायगा ॥ ९२ ॥ जबतक लोकमें जिनेन्द्र भगवानके वचनोंका प्रकाश नहीं है, तभीतक मिथ्यादृष्टियोंके वचन प्रकाशरूप हैं क्या जगतमात्रको प्रकाश करनेमें कुशल ऐसे सूर्यके प्रकाश होते हुये ग्रहगणों [तारोंके समूह] का प्रकाश हो सक्ता है ? कदापि नहीं ॥ ९३ ॥ विपरीत दृष्टिवाले अभव्यके सिवाय ऐसा कोनसा जीव है जो जिनेन्द्र भगवानके कहे हुये निर्दोष वाक्योंसे प्रतिबुद्ध नहि होता ? क्योंकि उल्लूके (घुघू

के) सिवाय प्रायः सभी जने महा अन्धकारको नाश करनेवाले सूरजकी किरणोंके प्रभावसे पदार्थोंको देखते हैं ९४ इसप्रकार महा आनंदकारक वचनोंको श्रवण कर पापोंको नष्ट करवाले जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंको भलेप्रकार नमस्कार करकें अपनी विद्याके प्रभावसे रचे हुये अप्रमाण गतिवाले विमानमें बैठकर वह मनोवेग विद्याधर अपने घरको जाता हुआ ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगति आचार्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें दूसरा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ २ ॥

अथानन्तर जबतक देवतुल्य स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसा वह मनोवेग दिव्य विमानपर आरूढ हो अपने नगरको जाता था- कि इसी बीचमें जिसप्रकार विमानपर बैठे देव अन्यदेवसे मिलै, उसप्रकार पवनवेगने मनोवेगको विमानपर बैठे हुये देखा ॥ २ ॥ देखतेही पवनवेगने मनोवेगसे कहा कि जैसें कामातुर न्यायसे अलग रहता है, तैसें मुझे छोड़कर इतने समयतक तू कहां रहा ? ॥ ३ ॥ हे ! मित्र, सूर्यके विना दिनकी तरह मैं तेरे विना एक क्षण भी रहनेको असमर्थ हूं सो इतने समयतक तेरे विना कैसें रह सक्ता हूं ? ॥ ४ ॥ हे मित्र ! मैंने तुझे सर्वत्र ढूंढा जैसें शुद्धश्रद्धानी मोक्षके दाता धर्मको ढूंढता है ॥ ५ ॥ जब मैंने बाग, नगर, बाजार, राजगृहांगण और समस्त जिन मंदिरोंमें तुझे नहिं

देखा ॥ ६ ॥ तव घवराकर तेरे पिता पितामहको जाकर पूछा, सो ठीकही है. इष्ट संयोगकी वांछा करनेवाला क्या नहि करता ? सब कुछ करता है ॥ ७ ॥ जब इस प्रकार सर्वत्र पूछने पर भी तेरा पता न लगा तब दैवयोगसे इधर आते हुये तुझे देखा ॥ ८ ॥ हे मित्र ! जैसें संयमी संतोषको छोडकर स्वेच्छाचारी हो इधर उधर भटकता है, तैसें तुझे आनन्द उपजानेमें समर्थ, तथा तेरे वियोग सहनेको असमर्थ ऐसे मुझ मित्रको छोड़कर तू किस प्रकार फिरता है ? ॥ ९ ॥ हे मित्र ! पवन और अग्निकी समान अपने दोनोंके वियोग रहता है. इसलिये यह मित्रता केवल दिखाऊ है, क्योंकि ॥ १० ॥ जिनके देह और आत्माकी समान जन्मसे मरणपर्यंत वियोग नही होय, उन्हीकी मित्रता सर्वोत्तम है ॥ ११ ॥ एक तो उष्ण और एक शीतल ऐसे सूर्य्य और चन्द्रमा की प्रीति कसी ? जो महीनेमें एकवार मिलाप हो ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंको ऐसा मित्र व मनोहर कलत्र (स्त्री) करना चाहिये जो चित्रामकी तरह किसी कालमें भी पराधीन न होय ॥ १३ ॥ उन्हीकी मित्रता प्रशंसनीय है कि जो दिन और सुर्य की समान निरन्तर अव्यभिचार (भेदभावरहित एकत्र) रहते हैं ॥१४॥ जो मित्रके क्षीण होने पर क्षीण होता है और वृद्धि होनेपर वृद्धिरूप होता है उसीको सच्चा मित्र कहते हैं और वे ही प्रशंसनीय हैं. जैसें समुद्रके साथ चन्द्रमाकी मित्रता है. अ-

र्थात् चन्द्रमाकी कला बढानेसे समुद्र बढता है और चन्द्रमा की कला जैसें २ क्षीण होती है तैसें २ समुद्रका पानी भी घटता जाता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि हे महामते! इस प्रकार कोपको प्राप्त मत हो, क्यों कि आज मैं इस मध्यलोकके समस्त चैत्यालयोंके दर्शनार्थ गया था ॥ १६ ॥ सो सुर नर कर वंदनीक अढाई द्वीपके मध्य जो कृत्रिम अकृत्रिम अनेक चैत्यालय हैं, ॥ १७ ॥ उन सबकी मैंने भक्तिपूर्वक पूजा वन्दना स्तुति करके समस्त दुःखोंको नष्ट करनेवाला निर्मल पुण्योपार्जन किया ॥ १८ ॥ हे मित्र, तेरे विना मैं क्षणमात्र भी नहि रह सक्ता. जिस प्रकार कि साधुके हृदयमें आनन्द करनेवाला संयम प्रशमभावके विना नहिं रहता परन्तु ॥ १९ ॥ भरतक्षेत्रमें भ्रमण करते हुये मैंने स्त्रियोंके समस्त शृंगारोंमें तिलककी समान अत्यन्त शोभायमान बहुत वर्णोंकी वस्तीवाला पाटलीपुत्र (पटना) नामका एक नगर देखा ॥ २० ॥ जिसमें निरन्तर जगह २ भ्रमरोंके समूहकी समान अथवा स्त्रीके केशोंकी समान श्यामवर्ण यज्ञका धुआं आकाश मार्गमें फैल रहा है ॥ २१ ॥ जहां पर बधिर किया है आकाश जिसने ऐसी ४ वेदकी ध्वनि सुनकरके मयूरगण मेघकी गर्जना समान आशंका करके नृत्य कर रहे हैं ॥ २२ ॥ तथा वशिष्ट वाल्मीकि, मनु, ब्रह्मादिकर रची हुई वेदके अर्थको प्रतिपादन करनेवाली स्मृतियें सुनी जाती हैं ॥ २३ ॥ जहां पर

चारों तरफ सरस्वतीके पुत्रकी समान बगलमें पुस्तक लिये अति चतुर विद्यार्थी विचरते हुये दृष्टि पडते हैं ॥२४॥ उस नगरमें परस्पर मर्मभेदी वचनोंके द्वारा वाद करते हुये वादी ऐसे शोभते हैं कि मानों मरमभेदी बाणोंके द्वारा क्षोभरहित योद्धा ही युद्ध कर रहे हैं ॥ २५ ॥ जैसें भ्रमरोंके समूहसे सरोवर [तलाव] शोभता है तैसें उस नगरके पंडित जन मिष्टभाषी शिष्योंके समूहसे उपद्रवरहित मनोहर मालुम पडते हैं ॥ २६ ॥ और गंगाके किनारे पर चारों तरफ ध्यानाध्ययनमें निमग्न मस्तक मुंडे हुये भद्र सन्यासी ही सन्यासी नजर पडते हैं ॥ २७ ॥ जहां पर शास्त्रार्थको निश्चय करती हुई वादरूपी नदीका शब्द सुनकर वादकी खाज कर आकुलित आये हुये वादीगण शीघ्र ही भाग जाते हैं ॥ २८ ॥ अग्निहोत्रादि कर्म करते हुये अनेक विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं सो मानो मूर्तिमन्त वेद ही हैं ॥ २९ ॥ तथा सर्वत्र समस्त शास्त्रोंके विचार करनेवाले द्विज निरन्तर मीमांसा (वेदान्त) शास्त्रका विचार कर रहे हैं, सो मानो सरस्वतीके विभ्रम कहिये विलास ही हैं ॥ ३० ॥ तथा दुःखरूपी काष्ठको अग्निके समान जो धर्म उसको प्रकाश करनेकेलिये हजारों ब्राह्मण अष्टादशपुराणोंके व्याख्यान कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ वह नगर पैंड पैंडपर तर्क, (न्याय) व्याकरण, काव्य, नीतिशास्त्रको व्याख्यान करनेवाले विद्वानों के द्वारा सरस्वतीके मंदिरकी समान भासता है ॥ ३२ ॥

सो हे भद्र ! ये सब चारों ओर देखते२ मुझे बहुत समय लग गया. क्योंकि कल्पनारूप विक्षिप्तचित्त होनेके कारण समय जाता हुवा मालूम नहिं पडता ॥ ३३ ॥ हे मित्र ! उस आश्चर्यकारक स्थानमें जो जो आश्चर्य मैंने देखे, वे वचन द्वारा कदापि नहि कह सक्ता ॥ ३४ ॥ क्योंकि जो विषय शरीर धारियोंकी इन्द्रियोंसे अनुभव किये जाते हैं, उनको सरस्वती भी वचन द्वारा नहिं कह सक्ती ॥ ३५ ॥ हे मित्र, धर्मकी समान तुझे छोड कर मैं इतने समयतक वहां पर रहा, सो मुझ अविनयीका यह अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ ३६ ॥ ये वचन सुनकर पवनवेग शुद्ध चित्तसे हास्यपूर्वक कहने लगा कि ऐसा कौन धूर्त है जो धूर्तोंके मिष्ट वचनोंको सुनकर नहिं ठगा जाता ? ॥३७॥ हे ! मित्र जो कौतुक तूने देखा सो मुझे भी दिखा ! क्यों कि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे विभाग किये विना कुछ भी नहिं भोगते ३८ मित्रवर्य्य ! मुझे उस कौतुकके देखनेकी वडी उत्कंठा है, सो वहां फिर चलो. जो मित्र है वह मित्रकी प्रार्थनाको कदापि निष्फल नहिं करते ॥ ३९ ॥ इस प्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि हे मित्र ! अवश्य चलेंगे परन्तु जल्दी मत करो. क्यों कि उदुम्बर फल शीघ्र ही नहिं पकता है ॥ ४० ॥ सो कल प्रातः काल ही भोजन करकें चलेंगे. क्यों कि भूख लगने पर जिसका चित्त ग्लानिरूप हो जाय उसके कौतुक (आनन्द) भाग जाते हैं ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् दोनों मित्र एक साथ हो

अपने घरको चले गये. कैसे हैं कि प्रकाशमान है शोभा जिस- की सो मानो उत्साह और नय दोनो एक ही रूप हो रहे हैं ॥ अपने घर पहुंच कर स्नेहसे वशीभूत है चित्त जिनका ऐसे वे दोनों मित्र मिलकर साथ २ जीमे बैठे और सोये क्योंकि स्नेही पुरुष एक क्षण भी वियोग नहिं सह सके ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी इच्छानुसार गमन करने- वाले विमान पर चढके वे दोनों मित्र दिव्य मनोहर वस्त्रा- भूषण पहर कर श्रेष्ठाकारके धारक देवोंके समान पटने नगर की तरफ चल दिये ॥ ४४ ॥ सो वहांसे चल कर शीघ्र ही अनेक प्रकार आश्चर्योंसे भरे हुये मन वांछित उस पुष्प- वन कहिये पटने नगरको प्राप्त हुये ॥ ४५ ॥ वहां पहुंच कर मनवांछित फल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुये पटने नगरके एक उद्यानमें (बागमें) नन्दन वनमें देवोंकी समान उतरते हुये ॥ ४६ ॥ उस बागके समस्त वृक्ष पु- ष्पोंके गुच्छेमयीस्तनोंकर नम्रीभूत वेलसे वेष्टित हुये का- मिनी सहित कामी पुरुषकी तरह शोभते थे ॥४७॥ वहां उतर कर मनोवेगने पवनवेगसे कहा कि यदि तुमको वास्तवमें कौतुक देखनेकी उत्कंठा है तो जिस प्रकार मैं कहूं, उसी तरह करने पर तुमारी इच्छा पूर्ण होगी ॥ ४८ ॥ यह म- नोवेगका वचन सुनकर पवनवेगने कहा कि हे महामते ! तू किसी प्रकारकी शंका मत कर, जिस प्रकार तू कहैगा उसी प्रकार करनेको मैं तयार हूं ॥४९॥ हे मित्र ! तेरे कहे हुये

वचनको अवश्य मानूंगा ऐसा मैंने निश्चय करलिया है. क्यों कि जो परस्पर वंचनवृत्ति हों (कहा नहिं माने) उनमें मित्रता कैसें हो सक्ती है ? ॥ ५० ॥ इस प्रकार अपने मित्रके वचन सुनकर मनोवेगने अपने मनमें विचार किया कि वास्तवमें यह सम्यग्दृष्टि हो जायगा. केवली भगवान्‌का कहा हुवा अन्यथा नहिं हो सक्ता ॥ ५१ ॥ तब प्रसन्न चित्त होकर पवनवेगसे कहा कि यदि ऐसा है तो हे मित्र चलो ! नगरमें प्रवेश करें ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् वे दोनों मित्र विचित्र प्रकारके महामूल्य आभूषण पहरे, तृण और काष्ठका भार मस्तकपर लेकर उस पटने नगरमें कौतूहलके साथ फिरने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार इन दोनोंको देखकर नगरके लोग महा आश्चर्यको प्राप्त हुये. क्यों कि पृथिवीमें ऐसा कौन है जो अपूर्व वस्तुको देखनेसे मोहित नहि होता ? ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार गुडके पुंज मक्खियोंसे वेष्टित होते हैं, उसी प्रकार वे दोनों देखनेवाले लोगोंकर चारों ओरसे वेष्टित हो गये ॥ ५५ ॥ सो कोई तो कहने लगे कि अहो बडा आश्चर्य है, जो महा आभूषण पहरे सुंदराकार ये दोनों तृण और काष्ठका भार क्यों उठाये हुये हैं ? ॥ ५६ ॥ कोई २ कहते हुये कि ये दोनों अपने बहुमूल्य आभूषणोंको वेचकर सुखसे अपने घर क्यों नहिं रहते ? तृण काष्ठ क्यों वेचते हैं ? ॥ ५७ ॥ अन्य कइयक इस प्रकार कहते हुये कि, अहो ! ये तृण काष्ठके वेचनेवाले नहीं है, देव अथवा विद्याधर हैं

किसी कारणसे इस प्रकार प्रगट हुये भ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५८ ॥ कईएक भले आदमी कहने लगे कि, अपने पराई चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि जो लोग पराई चिन्तामें लगते हैं उनको सिवाय पापबन्धके कुछ भी फल नहीं होता ॥ ५९ ॥ स्फुरायमान है कान्ति जिनकी ऐसे इन दोनों मित्रोंको देखकर कितनीएक नगरकी स्त्रियें कामदेवके वशीभूत हो अपने २ कार्य्यको छोडकर चंभको प्राप्त हो गईं ॥ ६० ॥ कितनीयक स्त्रियें तो इस प्रकार कहती हुईं कि, जगतमें कामदेव एक है ऐसी प्रसिद्धि है परन्तु उस प्रसिद्धिको प्रत्यक्षतया असत्य करनेकेलिये ही मानो कामदेवने दो देह धारण करी हैं ॥ ६१ ॥ कोई स्त्री कहती हुई कि, ऐसी असाधारण शोभाके धारक महा रूपवान् पुरुष तृणकाष्ठके वेचनेवाले मैंने तो कभी नहिं देखे ॥ ६२ ॥

अन्य कोई स्त्री कामसे पीडित हो उनसे वचनालाप करनेकी इच्छा कर अपनी सखीसे कहती हुई कि, हे सखी, इन तृणकाष्ठके वेचनेवालोंको शीघ्र ही यहांपर ले आ ॥ ये जितने मूल्यमें तृणकाष्ठ देंगे उतनेमें ही ले लूंगी. क्यों कि इष्ट जनोंसे वस्तुकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी गणना नहीं की जाती ॥ ६४ ॥ इस प्रकार नगरनिवासियोंके वचन सुनते २ सुन्दर शरीरके धारक ये दोनों मित्र सुवर्णका है सिंहासन जिसमें ऐसी ब्रह्मशालामें (मदशालामें) पहुंच गये और ॥ ६५ ॥ तृणकाष्ठके भारको डालकर बडे जोरसे

वादकी भेरी बजाकर सिंहकी समान निर्भय हो सुवर्णके सिंहासनपर जा बैठे ॥ ६६ ॥ उस भेरीके शब्दको सुनकर पटने नगरके समस्त ब्राह्मण क्षोभको प्राप्त हुये और कहींसे वादी आया है इस प्रकार कहते हुये वादकी लालसा रखनेवाले निरन्तर विद्याके गर्वरूपी अग्निमें जलते हुये परवादीको जीतनेकी इच्छा करकें वे समस्त ब्राह्मण शीघ्रही अपने २ घरसे बाहर निकल पडे ॥ ६७-६८ ॥ कोई तो कहते हुये कि तर्कशास्त्रके वादमें तो आजतक कोई भी विद्वान हमको परास्त करके नहिं गया ॥ ६९ ॥ कोई २ विद्वान अन्यान्य विद्वानोंको कहते हुये कि, तुमने तो अनेक दुर्जय वाद जीते हैं सो तुम तो मौनसे बैठो, अब हम इससे वाद करेंगे ॥ ७० ॥ कईयक ब्राह्मण विद्याके मदमें उन्मत्त हो कहनेलगे कि अवादियोंमें रहनेसे हमारा तो पढनेका परिश्रम व काल वृथा ही चला गया ॥ ७१ ॥ कोई इस प्रकार कहते हुये कि, इस वादरूपी वृक्षका परवादीको जीतनेरूपी दंडसे तोड कर यशरूपी फल ग्रहण करेंगे ॥७२॥ इत्यादि वचनोंको कहते हुये वादकी खुजली सहित वे ब्राह्मण विद्वान उस ब्रह्मशालामें पहुंचे और ॥ ७३ ॥ हार, कंकण, कडे, श्रीवत्स और मुकुटादिसे अलंकृत मनोवेगको देखकर सबके सब आश्चर्यान्वित हो गये ॥ ७४ ॥ "निश्चय करकें ये विष्णु भगवान् ही ब्राह्मणोंको देखनेकी इच्छासे आये हैं. क्यों कि शरीरकी ऐसी मनोहर शोभा अन्य

किसीमें असंभव है." इसप्रकार कहकर भक्तिके भारसें न-
म्रीभूत हो नमस्कार करने लगे. सो ठीकही है विभ्रमयुक्त
हो गई है बुद्धि जिनकी उनसे प्रशंसनीय कार्य कदापि नहिं
होता ॥ ७५-७६ ॥ कोई २ इसप्रकार कहते हुये कि नि-
श्चय करकें यह पुरन्दर कहिये इन्द्र ही है. क्यों कि जगत्को
महानन्ददायिनी कान्ति अन्य किसीके नहिं हो सक्ती ७७
कोई महाशय कहने लगे कि ये अपने तीसरे नेत्रको अदृश्य
करके पृथिवी देखनेके लिये महादेवजी आये हैं क्यों कि
ऐसा रूप सिवाय महादेवजीके अन्य किसीका नहिं हो सक्ता
॥ ७८ ॥ अन्य कोई महाशय कहते हुये कि यह कोई महा
उद्धत विद्याधर है सो पृथिवीको देखता हुवा अनेक प्रकार-
की लीला (क्रीडा) करता फिरता है ॥७९॥ इसप्रकार विचार
करते हुये भी वे सब प्रभाकर पूरित किया है दशोंदिशाओंको
जिसने ऐसे चिन्तरूपमणिके समान उस मनोवेगका कुछ भी
निर्णय नहिं कर सके कि यह कौन है ॥ ८० ॥ तब किसी
एक प्रवीण ब्राह्मणने इसप्रकार कहा कि "निश्चय करनेकेलिये
इसीको क्यों न पूछ लो ? क्यों कि बुद्धिमान पुरुष हाथमें
कंकण रहते आरसी (दर्पण) में आदर नहिं करते ॥८१॥
यदि यह वाद करनेको आया है तो वादियोंको जीतनेमें
आसक्त है मन जिनका ऐसे हम समस्त शास्त्र और परमा-
र्थके ज्ञाता इसके साथ वाद करेंगे ॥ ८२ ॥ पंडितोंकर भरे
हुये इस नगरमें षट्दर्शनोमेंसे ऐसा कौनसा दर्शन है जिस-

को वास्तवमें हम सब जने न जानते हों. इनके सिवाय यह अल्पधी और क्या कहैगा ? ॥ ८३ ॥ इसप्रकार उसकी वाणी सुनकर एक ब्राह्मण आगें बढकर मनोवेगको कहने लगा कि आप कौन हैं और विरुद्ध है हेतु जिसका ऐसा तू किस प्रयोजनसे आया है सो कह. ॥ ८४ ॥ यह सुनकर मनोवेग कहता हुआ कि, हे भद्र ! मैं एक निर्धनका पुत्र हूं इस श्रेष्ठ नगरमें काष्ठका भार वेचनेको आया हूं ॥ ८५ ॥ तव वह द्विज उस मनोवेगको कहने लगा कि, हे भद्र, तू वाद जीते विना ही इस पूज्य सिंहासनपर शीघ्र ही वादकी सूचना करनेवाली दुंदुभि भेरीको बजाकर क्यों वैठ गया ? ॥८६॥ यदि वादके निर्णयमें तेरी शक्ति है तो तू वादियोंके घमंड को दलनेवाले निर्दोष बुद्धिके धारक इन द्विजोत्तम पंडितोंके साथ वाद कर ॥ ८७ ॥ हे मूढ ! इस नगरसे आजतक कोई भी विद्वान् वादको जीतकर यशका भागी हो कर नहिं गया. भला ऐसा कौन पुरुष है जो नाग भवनसे शेष नाग के मस्तककी मणिसे भूपित हो कर जा सके ॥ ८८ ॥ तू जो दिव्य मणि रत्नोंसे भूषित हो कर भी तृणकाष्ठ वेचता है, सो या तो तुझे वायुरोग है, या तुझे पिशाच लगा है, अथवा जवानीके बढे हुये कामरूपी मदसे पागल हो गया दीखै है. क्यों कि—॥ ८९ ॥ इस जगतमें दृढ चित्तवाले व भले जीवोंके मनको मोहित करनेवाले अनेक ठग हैं परन्तु तुझ सरीखा पंडितोंके मनको भी मोहित करनेवाला

महा ठग इस त्रिलोकीमें कोई भी नहिं दीखता ॥ ९० ॥
इस प्रकारके वचन सुनकर वह मनोवेग विद्याधर कहने लगा कि, हे विप्र! वृथा ही क्यों कोप करते हो विनाकारण तो सर्प भी रोष नहि करता; फिर विद्वज्जन तो करेंगे ही कैसे ॥ ९१ ॥ भो द्विजपुत्र ! इस सोनेके सिंहासनको बहुत मनोहर देखकर कौतुकसे बैठ गया और इसका शब्द आकाशमें कहांतक होता है ऐसा विचार कर मैंने सहजही इस दुंदुभिको बजा दिया ॥ ९२ ॥ हे भट्ट! हम तृणकाष्ठ बेचने बालोंके पुत्र हैं. वास्तवमें शास्त्रके मार्गको कुछ भी नहिं जानते; और 'वाद' ऐसा नाम तो मुझ निर्बुद्धिने अभी तेरे मुखसे ही जाना है ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण, तुमारे भारतादि ग्रंथोंमें क्या मुझ सरीखे बहुतसे पुरुष नहीं हैं ? जगतमें लोग केवलमात्र परके दूषण ही देखते हैं. अपने दूषण कोई नहिं देखता ॥ ९४ ॥ यदि इस सिंहासनपर मेरे बैठनेसे तुमारे चित्तमें हानि है तो उतर जाऊंगा. इसप्रकार कह कर वह अप्रमाण ज्ञानका धारक मनोवेग आसनसे उतर कर नीचे बैठ गया. ॥ ९५ ॥

इति श्रीआचार्य अमितगतिकृत धर्मपरीक्षा संस्कृत ग्रन्थका बालावबोधनी भाषाटीकामें तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ३ ॥

अथानन्तर वह द्विजाग्रणी मनोवेगको सुवर्णासनसे उतरा देख कहने लगा कि, मैंनें तृणकाष्ठके बेचनेवाले, पराई नोकरी करनेवाले रत्नमयी दिव्याभूषणाकर शोभित घास लकडियें वेचते हुये आजतक कभी नहिं देखे ॥ १ ॥ २ ॥

तब मनोवेगने कहा कि, भारत रामायणादिक पुराणोंमें ऐसे मनुष्य हजारों सुने जाते हैं. परन्तु तुमसरीखे इस शास्त्रीय विधानकी प्रतीति नहिं करते ॥ ३ ॥ तब उस ब्राह्मणने कहा कि, यदि तूने भारत अथवा रामायणमें ऐसे पुरुष देखे हों तो कह, हम विश्वास करैंगे. इसप्रकार ब्राह्मणके कहनेपर मनोवेग बोला कि—॥ ४ ॥ भो ब्राह्मण ! मैं कहूं तो सही परन्तु कहते हुये मुझे वडा भय लगता है, कारण तुम लोगोंमें ऐसा कोई भी नहिं दीखता जो विचारवान् हो ॥ ५ ॥ क्यों कि विचाररहित मूर्ख सत्य कहे हुयेको भी असत्य बुद्धिसे 'सोलह मुक्की न्यायकी' रचना किया करते हैं ॥ ६ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि, हे महाबुद्धे ! 'सोलह मुक्की न्याय' कैसा होता है ? सो कह. इसप्रकार सुनकर मनोवेगने कहा कि, बहुत अच्छा, मैं तुमको कहता हूं सो सुनो ॥ ७ ॥ मलयदेशमें सुखरूप संगाल नामका एक ग्राम है. उसमें मधुकर नामका एक पटेलका पुत्र रहता था ॥ ८ ॥ सो एक समय वह मधुकर नाराज होकर पिताके घरसे निकलकर पृथिवीमें भ्रमण करने लगा सो ठीक ही है. रोषसे क्या नहिं होता ? ॥ ९ ॥ जब वह आभीर

देशमें गया तो वहांपर उसने विभाग की हुई चनोंकी बडी बडी अनेक राशियें देखीं ॥ १० ॥ उनको देखकर वह मूढ विस्मित चित्तसे "अहो मैंने बडा आश्चर्य देखा, मैंने बडा आश्चर्य देखा" इसप्रकार कहने लगा. तब-११ वहांके ग्रामपतिने पूछा कि, तूने क्या आश्चर्य देखा ? तब उस मूढने निम्न लिखित प्रकार कहा सो ठीक ही है मूर्ख लोग आती हुई आपदाको नहिं जानते ॥ १२ ॥ वह बोला जैसी इस देशमें चणोंकी राशियां (ढेर) हैं, इसीप्रकार हमारे देशमें मिरचोंकी राशियें हैं" ॥ १३ ॥ यह सुनकर कुपित हो ग्रामपतिने कहा कि, क्या तू वातरोगसे ग्रसित है ? जो ऐसा असत्य भाषण करता है ? ॥ १४॥ हे दुष्टबुद्धे, चणोंकी राशियोंके बराबर मिरचोंकी राशियां हमने किसी भी देशमें कभी नहिं देखी ॥ १५ ॥ " निश्चयकरके इस चणावाले देशमें मिरचें अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं अतएव कम हैं तो क्या मेरे इन चनोंकी गिनती मिरचोंके बराबर भी नहीं है । यह दुष्ट जानबूझकर हमलोगोंकी हंसी करता है" इसप्रकार मूर्खपणेके भ्रमसे उसने कहा इसको शीघ्र ही दंड दिया जावे ॥ १६-१७ ॥ उस ग्रामपतिके वचन सुनकर उसके कुटुम्बी जन (नौकर चाकर) उस मधुकरको बांधते हुए सो उचित ही है. अश्रद्धेय वचनोंका बोलनेवाला क्यों नहिं बंधेगा ? ॥१८॥ तब किसी दयावान सेवकने कहा कि, हे भद्र इसको इस अपराधके अनुसार ही दण्ड देना चाहिये ॥ १९ ॥ तब

उसने आज्ञा करी कि इसके माथेपर मुट्ठियोंके आठ भड़ाके देना चाहिए ॥ २० ॥ उस पटेलके इसप्रकार वचन सुन उसके निर्दयी सेवकोंने मधुकरको बन्धनसे छोडकरके उसके माथेपर मुट्ठियोंके आठ भड़ाके मार दिए ॥ २१ ॥ जो इन्होंने आठ मुट्ठियें लगाकर ही छोड दिया सो मुझे बड़ा लाभ हुवा. क्योंकि, दुष्टोंमें रहनेवालोंके जीवनमें भी संदेह रहता है ॥ २२ ॥ ऐसा विचारकर वह मधुकर भयभीत हो अपने देशको आ गया सो योग्य ही है. मूर्ख लोग पीड़ा पाये विना किसी कामसे निवृत्त नहिं होते ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् उस मधुकरने अपने संगाल ग्रामको आते हुये चणोंकी राशिके बराबर मिरचोंके समूह देखे ॥ २४ ॥ सो वहांपर भी उसने वैसे ही कहा " कि जैसे यहांपर मिरचोंके ढेर हैं, इसीप्रकार आभीर देशमें मैंने चणोंके ढेर देखे ' इत्यादि. तब वहांपर भी उसने वही आठ मुट्ठियोंकी मारका दंड पाया सो ठीक ही है. मूर्ख जन खंडित होकर भी पंडित नहिं होते ॥ २५ ॥ सो सत्य भाषण करते भी उस मधुकरने षोडश मुट्ठीकी मार खाई. तभीसे यह "षोडश मुट्ठी न्याय" प्रसिद्ध हुवा है. ॥ २६ ॥ इसकारण विना साक्षीके सत्य भी नहिं बोलना चाहिए। जो बोलेंगे वे जनसमाजके द्वारा असत्यभाषीकी सदृश ही दण्ड पावैंगे. और ॥ ७२ ॥ साक्षीसहित असत्यको भी सब जने सत्य मानते हैं. यदि ऐसा नहिं होता तो वंचक जन

जगत्को किस प्रकार ठगते ? ।। २८ ।। इसकारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिए कि प्रतीति योग्य वचन कहै। अन्यथा जो महती पीडा भोगनी पडती है उसको कोई निवार नहिं सक्ता ।। २९ ।। पुरुष सत्य भी कहै तो मूर्ख लोग नहिं मानते, इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको चाहिए कि मूर्खोंमें कदापि न बोलै, क्योंकि, ।। ३० ।। लोग तो अनुभवमें आई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध वार्त्ताको मानते हैं, इसकारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहिं बोलना चाहिए ।। ३१ ।। सो यहांपर निर्विचारोंके मध्य बोलते मुझे भी वही दोष प्राप्त होता है. इसकारण प्रगटतया मैं कुछ भी नहि कह सक्ता क्योंकि, ।। ३२ ।। जो कोई पूर्वापरका विचार करै उसके आगें तो बोले, नहीं तो अन्यके आगें बुद्धिमानका बोलना योग्य नहीं ।। ३३ ।। इसप्रकार कह कर चुप रहनेके बाद एक द्विजाग्रणीने कहा कि हे भद्र ! ऐसा मत कहो; हमारेमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ।। ३४ ।। ऐसा हरगिज मत समझ कि, अविचारी पुरुषोंकासा कार्य इन विचारवान् विद्वानोंसे होगा, क्योंकि मनुष्योंमें पशुओंका धर्म कभी नही होता ।। ३५ ।। आभीरदेशवालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ. क्योंकि, कव्वोंकी समान हंस नहिं होते हैं ।। ३६ ।। हे भद्र, तू किसी प्रकारका भय मत कर; यहां समस्त ब्राह्मण चतुर हैं, योग्य अयोग्यके विचार करनेवाले विद्वान हैं. तेरी इच्छा हो सो

कहें ॥ ३७ ॥ जो वाक्य युक्तिसे ठीक हो और सज्जन पुरुषोंकी समझमें आ जावे. ऐसा वचन निःशंक होकर कहो हम विचारके साथ ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार विप्रके वचन सुनकर जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंका भ्रमर मिष्टभाषी वह मनोवेग कहने लगा कि, ॥ ३९ ॥ रक्त १, द्विष्ट २, मनोमूढ ३, अपने कहनेकाही विश्वास करनेवाला हठग्राही ४, पित्तदूषित ५, आम्र ६, क्षीर ७, अगुरु ८, चन्दन ९ और वालिश (मूर्ख) १०, ये दश प्रकारके मूर्ख हैं ॥ ४० ॥ ये सब पूर्वापर विचार रहित पशुओंकी तुल्य हैं. तुम लोगोंमें ऐसा जो कोई हो तो मैं अपनी बात कहते डरता हूं ॥ ४१ ॥ मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें इतनाही भेद है कि जो समस्त विचारपूर्वक करे सो तो मनुष्य और विना विचारे करे वही पशु है ॥ ४२ ॥

जो पूर्वापर विचार करनेवाले मध्यस्थ, (पक्षपातरहित) धर्मेच्छु हों वे ही उत्तम सभासद कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ मूर्खोंमें सुभाषित और सुखदायक वचन भी कहा हुवा महती पीडा करनेवाला है. जैसें सर्पोंको दूध पिलाना ॥ ४४ ॥ यद्यपि पर्वतकी शिलापर कदाचित कमल हो जाय तथा जलमें अग्नि और हलाहलविषमें अमृतकी प्राप्ति होजाय, परन्तु मूर्खमें विचार कदापि नहिं होता ॥ ४५ ॥ हे भद्र ! ये दश प्रकारके मूर्ख कैसे होते हैं सो कहो. इसप्रकार ब्राह्मणोंके कहनेपर वह मनोवेग विद्याधर रक्त द्विष्टादि दश मूर्खोंकी चेष्टा दश कथाओंके द्वारा कहने लगा ॥ ४६ ॥

१ रक्तपुरुषकी कथा ।

रेवा नदीके दक्षिण किनारेपर सामन्त नगरमें बड़ा धनाढ्य एक बहुधान्यक नामका ग्रामकूट (चौधरी) रहता था ॥ ४७ ॥ उसके सुन्दरी और कुरंगी दो मनोहर स्त्रियें थीं जैसें कि, महादेवके पार्वती और गंगा ॥ ४८ ॥ सो उसने कुरंगी नामक युवा स्त्रीको प्राप्त होकर सुन्दरी जो वृद्धा थी उसको छोड़ दिया; सो उचित ही है. सरसाको पाकर विरसाको कोन सेवता है ? ॥४९॥ कुछ दिनोंके पश्चात् बहुधान्यकने सुन्दरीसे कहा कि, हे भद्र तु अपना भाग (हिस्सा) लेकर अपने पुत्र सहित दूसरे घरमें जाके रह ॥ ५० ॥ तब वह साध्वी पतिकी आज्ञानुसार (जिस प्रकार कहा उसी प्रकार) रहने लगी. क्यों कि, पतिव्रता स्त्रियें अपनी-पतिकी आज्ञा कदापि उल्लंघन नहिं करतीं ॥ ५१ ॥ उसके पतिने आठ तो बैल, दश गौ, दो दासी और दो हाली (सेवक) तथा सर्व प्रकारकी सामग्री सहित एक घर भी दिया ॥ ५२ ॥ तत्पश्चात् वह बहुधान्यक मोहित हो उस कुरंगीके साथ मनवांछित भोगोंको भोगता हुवा मदिरासे मदोन्मत्तकी समान जाते हुये समयको न जानता हुवा ॥ ५३ ॥ उस सुंदराकार नवयौवना प्रियाको पाकर वह बहुधान्यक इंद्राणीसे आलिंगन करनेवाले इंद्रको भी अपनेसे अधिक नहिं मानता था. ॥ ५४ ॥ युवति स्त्री वृद्धपुरुषमें रत होती हुई नहिं शोभती क्योंकि पुरानी कम्बलके साथ

ओढा हुवा दुशाला कदापि नहिं शोभता ॥ ५५ ॥ जो पुरुष वृद्धाकी अवज्ञा करके तरुण स्त्रीमें रत होता है वह शीघ्र ही उसके द्वारा दी हुई पीडाको प्राप्त हो विपदाको भोगता है ॥ ५६ ॥ वृद्धपुरुषको तरुण स्त्रीकी बराबर अन्य कोई दुःखदायक नहीं है, क्या अग्निके सिवाय भी और कोई पदार्थ तापकारी है ? ॥ ५७ ॥ वृद्धपुरुषके जीवनकी स्थिति (अवधि) तरुणी-प्रसंग तक ही जाननी. क्यों कि वज्राग्निके संग रहते शुष्क वृक्षकी स्थिति कैसे हो सक्ती है ? ॥ ५८ ॥ स्नेहरूपी सूर्यके द्वारा प्रफुल्लित कुरंगीके मुखरूपी कमलको नित्य अवलोकन करनेवाले बहुधान्यकके यहां एक समय उसके राजाकी सेनाका पडाव पडा ॥ ५९ ॥ सो राजाने उसे बुलाकर आज्ञा करी कि, तुम सेनामें शीघ्र ही जावो और आवश्यकीय सामग्रीका प्रबन्ध करो ॥ ६० ॥ वह भी नमस्कार करके " ऐसा ही करूंगा " कहके अपने घर आकर एकान्तमें स्थित अपनी वल्लभाको गाढालिंगनपूर्वक कहता हुवा कि, ॥ ६१ ॥ हे कुरंगी, मैं सेनामें जाता हूं तू घरमें खुशीसे रहना. क्योंकि सुखाभिलाषियोंको स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करना योग्य नहीं ॥ ६२ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे स्वामीकी सेना तैयार है, मुझे अवश्य ही जाना पडैगा. नहीं तो स्वामी कोप करैगा ॥ ६३ ॥ ये वचन सुनकर वह कुरंगी खेदखिन्न बुद्धिसे कहने लगी कि, हे नाथ ! मैं भी अवश्य करके आपके साथ चलूंगी ॥ ६४ ॥ हे नाथ,

जलती हुई अग्नि तो मैं सुखसे सह सक्ती हूं परन्तु समस्त शरीरको आताप करनेवाले आपके वियोगको नहिं सह सक्ती ॥ ६५ ॥ हे विभो ! आपके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर मरजाना श्रेष्ठ है परन्तु आपके पीछें विरहरूपी शत्रुसे मारी जाऊं सो भली नहीं ॥ ६६ ॥ हे नाथ, जैसें वनमें शरण रहित मृगको सिंह मारता है, उसी प्रकार आपके विना यहां अकेलीको मुझे कामदेव मार डालैगा ॥ ६७ ॥ यदि आपको जाना ही हो तो जावो. मेरा जीवन यमराजके घर जाते भी आपका मार्ग कल्याण रूप होवो ॥ ६८ ॥ इस प्रकार अपनी प्रियाके वचन सुनकर वह ग्रामकूट कहने लगा कि हे मृगलोचनी ! ऐसा मत कह, स्थिर होकर घरपर रह, चलनेकी इच्छा मत कर. राजा बडा व्यभिचारी (पर स्त्रीलोलुप) है तुझे देखते ही ग्रहण करलेगा. इसकारण हे कान्ते ! तुझे घर रखकर ही मैं जाऊंगा ॥७०॥ राजाका स्वभाव है कि तुझसरीखी मनोहर स्त्रीको देखकर वह अवश्य छीन लेता है सो उचित ही है कि जिसकी सदृश दूसरा नहीं ऐसे स्त्रीरत्नको कोन छोडै ? ॥ ७१ ॥ इस प्रकार अपनी प्रियाको समझा कर और धनधान्यसे भरेहुये घरको सोंपकर वह ग्रामकूटपति सेनाके साथ चला गया ॥ ७२ ॥ सरागीका ऐसा ही स्वभाव होता है कि वह मन वांछित वस्तुको पाकर फिर किसीका भी विश्वास नहिं करता. यदि उस वस्तुका वियोग हो जाय तो मरण तक की

इच्छा करता है ॥७३॥ कुत्ता कुत्तीको पाकर उसे जगतमें समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है. यद्यपि वह दीन है तो भी अपनी कुत्तीके छिनजानेके भयसे इन्द्रको भी भूसता है ॥ ७४ ॥ नीच कुत्ता क्रमिजाल और मलसे लिप्त नीरस मांसको पाकर अमृतको भी दुःस्वादु मानता है ॥ ७५ ॥ जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) होता है वह उसकी रक्षा करता ही है जैसें कौवा विष्ठाको संग्रह करके क्या सर्व प्रकारसे रक्षा नहिं करता ? ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार कुत्ता पशुके हाडको रसायनकी समान समझ कर चाटता है उसी प्रकार जो रक्तःमूर्ख होता है वह असुंदरको भी सुंदर मानता है ॥ अपने पतिको परदेश चले जानेके पश्चात् वह कुरंगी कामके वशीभूत हो अपने जारोंके (यारोंके) सात निःशंक रमने लगी. कैसे हैं वे जार मानों देहधारी अन्याय ही हैं ॥ ७८ ॥ किये हैं इच्छित मनोरथ जिसने ऐसी वह कुरंगी अपने जारोंको अनेक प्रकारके भोजन वस्त्र धनादिक देने लगी ॥ ७९ ॥ जो रक्त हो कर चिरकालसे पालन पोषन की हुई अपनी देहको भी संवार २ के देती है तो उसको अपने द्रव्यादिक देनेमें कौनसा कष्ट है ? ॥ ८० ॥ सो उस रक्ताने नौ दश दिनमें ही अपने यारोंको समस्त धन दौलत देकर खा पीके पूरा करदिया. घरमें कुछ भी नहिं छोडा ॥८१॥ कामरूपी वाणोंसे पूरित है देह जिसकी ऐसी उस कुरंगीने नष्टबुद्धि होकर

अपने घरको धनधान्य वस्त्र बर्त्तन रहित मूषोंकी वसती कर दिया ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार रितुवती गौ कामार्त सांडोंके साथ जहां तहां पशुकर्म करती विचरती है उसी प्रकार वह कुरंगी काम पीडित हो अपने यारोंके साथ सर्वप्रकारसे निःशंक विचरने लगी ॥ ८३ ॥ जिस प्रकार समस्त बेर तोड़कर भयभीत चोर मार्गकी झड़बेरीको छोडकर भाग जाते हैं, उसी प्रकार उस कुरंगीके पतिका आना सुनकर उसके यारोंने रहा सहा समस्त धन हरणकरके उसे छोड दिया ॥ ८४ ॥ तब वह भी अपने पतिका आगमन जानकर उत्तम पतिव्रताका वेष धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो अपने घरमें तिष्ठती हुई. सो नीति ही है क्यों कि पति आदिकको धोखा देना तो स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है ॥ ८५ ॥ कुरंगीने इसप्रकार अपना वेष बनाया कि जिससे कोई भी यह नहि समझे कि यह कुलटा (व्यभिचारिणी) है. सो यह स्त्री इन्द्रको भी धोका देकर अज्ञानी कर देती है तो मनुष्योंकी तो गणना ही क्या ? ॥ ८६ ॥ साधलिये हैं मालिकके समस्त कार्य्य जिसने ऐसा वह बहुधान्यक अपनी प्रियाके (कुरंगीके) पास एक आदमीको भेजकर आप ग्रामसे बाहर एक वृक्ष तले विश्राम करने लगा ॥ ८७ ॥ उसने कुरंगीके पास जाकर नमस्कार पूर्वक कहा कि, हे कुरंगी ! तुमारा प्रियपति आगया है, सो उसके लिये शीघ्रही अनेक प्रकारके भोजन बनाओ. मुझे यह बात कहनेके लिये ही उन्होने भेजा है ॥ ८८ ॥ यह सुनकर उस कुटिला मुग्धाने कहा कि, तू.

यही बात बडी स्त्रीके पास जाकर कह, क्यों कि श्रेष्ठ पुरुष हैं ते क्रम उल्लंघनकी निंदा करते हैं. वह मेरेसे बडी है सो प्रथम दिन उसीके घर भोजन होना चाहिये. इस प्रकार समझा कर ॥ ८९ ॥ वह कुरंगी उस आदमी सहित बडी सौत (सुन्दरी) के घर जाकर कहने लगी कि, हे सुन्दरी तेरा पति आगया है, सो उसके लिये बहुत स्वादिष्ट भोजन बना. क्यों कि आज प्रथम दिन तेरे ही घर वे जीमेंगे ॥ ९० ॥ यह सुनकर सुंदरीने कुरंगीसे कहा कि, हे मिष्ट भाषिणी ! सुंदर यौवनकी समान मैं उज्वल (पवित्र) भोजन तो बनाऊंगी परन्तु वह तेरा पति जीमेंगा नहीं ॥९१॥ उस सुभगाने (कुरंगीने) हंसकर कहा कि यदि वह वास्तवमें मुझे प्यारी समझता है तो मेरे वचनानुसार तेरे इस सुंदर घरमें अवश्य जीमेंगा तु भोजन कर ॥ ९२ ॥ इसप्रकार कुरंगीके वचन सुनकर वह अनेकप्रकारके षटरस पूरित भोजन बनाती हुई. क्योंकि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे अपनी समान ही सबको सरल समझते हैं ॥ ९३ ॥ वह अलक्षितदोषा मायाचारिणी अपने धनहीन घरको छिपाती हुई, सो ठीक ही है. मायाचारिणी स्त्रियें अपने समस्त दूषणरूपी धनको छिपा लेती हैं ॥ ९४ ॥ सो वह हीनाचारिणी महान् दूषणोंको धरनेवाली धर्मके मार्गको तजकर अपने पतिको इसप्रकार ठगती हुई. क्यों कि जो पापी जीव हैं ते संसारके अपरिमित दुःखोंको नहिं जानते ॥ ९५ ॥

इति चौथा परिच्छेद पूर्ण भया ॥ ४ ॥

अथानन्तर कामकी व्यथासे पीडित है चित्त जिसका ऐसा, वह बहुधान्यक ग्रामकूट भी उत्साहपूर्वक हर्षित हो शीघ्र ही कुरंगीके घर गया ॥ १ ॥ सो मेघोंके विना आकाश अथवा नगरनिवासियोंके विना श्रेष्ठ नगरकी समान अपने घरको धनधान्यादिकसे शून्य (खाली) देखकर भी ॥ २ ॥ वह मूढ कुरंगीके मुखावलोकनके लिये आकुलित है चित्त जिसका, सो चक्रवर्तिके घरसे भी अधिक देखता (मानता) हुवा ॥ ३ ॥ और वह ऐसा मानता हुवा कि जो कार्य मुझे प्रिय हैं सो यह करती है. और जो अप्रिय हैं वे कुछ भी नहिं करती ॥ ४ ॥

रागी नर अन्यको नहिं देखे तो यह कुछ भी आश्चर्य नहिं क्यों कि जिनके नेत्र रागने अन्धे कर दिये, वे अपने आपको (आत्माको) भी नहिं देखते ॥ ५ ॥ तथा जो नर रक्त होता है वह धर्म क्या है, अपना कर्तव्य क्या है, त्यागनेयोग्य वस्तु कौन सी हैं, ग्रहण करनेयोग्य वस्तु कोन सी है, यश क्या पदार्थ है, द्रव्य क्या है, और घरका नाश क्या चीज है इत्यादि कुछ भी नहिं जानता ॥ ६ ॥ रागी पुरुष स्वाधीनताको छोड देता है और पराधीनताको स्वीकार करता है, धर्मकार्य्यको छोड पापकार्य्यमें रमने लग जाता है ॥ ७ ॥ रागकर ग्रसित पुरुष शीघ्र ही महती आपदाको प्राप्त होता है. क्या मांस लगी हुई फांसीमें आसक्त हो फसा हुवा मीन मृत्युको प्राप्त नहिं होता ? ॥ ८ ॥

जिसप्रकार योग्य अयोग्यको न जाननेवाले हिरणको शिकारी मार डालता है, उसी प्रकार रक्तपुरुषको दुर्निवार बाणों के द्वारा कामदेव मार डालता है ॥ ९ ॥ रक्तपुरुषको देखकर सज्जन जन तो शोच फिकर करते हैं और दुर्जन जन उपहास करते हैं, तथा बहुतसे लोक तिरस्कार भी करते हैं, अथवा ऐसी कोनसी आपदा है कि जिसको रक्त पुरुष नहि भोगता ? ॥ १० ॥ बुद्धिमानोंको चाहिये कि रागमें उपर्युक्त प्रकारसे दूषण जानकर छोड दें. ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सर्पको विषका घर जानता हुवा भी नहि छोडै ॥ ११ ॥ तत्पश्चात् वह बहुधान्यक क्रीडाके साथ प्रफुल्लित कांतिवाले प्रियाके मुखरूपी कमलको देखता हुवा घरके द्वारपर स्थित चौकीपर बैठ गया और ॥ १२ ॥ क्षण एक ठहर कर अपने मनको प्यारी ऐसी कुरंगीको कहता हुवा कि हे कुरंगी ! मुझे शीघ्र ही भोजन दे, विलम्ब क्यों करती है ? ॥ १३ ॥ तब वह पुरुषोंका नाश करनेवाली कुटिल अभिप्रायकी धरनेवाली कुरंगी यमराजके धनुषके समान भयावनी भ्रकुटी चढाकर अपने पतिको कहती हुई कि, ॥ १४ ॥ हे दुष्टबुद्धि ! पूर्वपुरुषोंकी मर्यादा पालनेके लिये जिसके पास समाचार भेजा था उसी अभ्राके घर जा और वहीं पर भोजन कर ॥ १५ ॥ देखो ! उस कुरंगीने अपने आपही तो सुन्दरीको कहा कि भला आज तेरे ही घर जीमेंगे, फिर आप ही पतिके लिये क्रोध करती है. सो ठीक ही है

जिन स्त्रियोंने अपने पतिको वशमें कर लिया है वे कोनसा अपराध नहीं लगातीं ॥ १६ ॥

यह स्वभाव ही है कि दुष्ट स्त्री अपने आप दोष (अन्याय) करके अपने उस दोषको छिपानेके अभिप्रायसे पतिपर कोप किया करती है ॥ १७ ॥ कुटिल अभिप्रायवाली स्त्रियें शोच विचारकर ऐसा वचन कहती हैं कि जिससे बडे २ बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है. अथवा भ्रमरूपी चक्रमें गोता खाने लग जाती है ॥ १८ ॥ स्त्रियोंके मान होने (रूठ जाने) पर अवज्ञावस्थामें अन्यकर करनेमें नहिं आवे, ऐसी स्त्रीकी स्थिरताको भले प्रकार करनेके लिये रागीजन स्त्रियोंके किये हुये क्रोध मान व अवज्ञा वगेरहको स्वभावसे ही सह लेते हैं ॥ १९ ॥ जो नीच पुरुष रक्त होता है, वह स्त्री ज्यों ज्यों तिरस्कार करती है, त्यों २ मंडूककी तरह उसके सन्मुख जाता है और ॥२०॥ वह विचित्र प्रकारके आश्चर्य करनेवाली स्त्री रक्तपुरुषको क्रोधित करदेती है, और फिर क्रोधयुक्त किये हुये पुरुषोंके मनको शीघ्र ही रंजायमान कर देती है ॥ २१ ॥ जिसप्रकार कर्मकार [लुहार] लोहेको बहुतसा ताप देकर उसे तोड़ भी सक्ता है और जोड़ भी सक्ता है, उसीप्रकार स्त्री भी प्रेमको तोडने और जोडनेरूप दोनों कार्योंमें समर्थ होती है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार बिलाईके भयसे मूसा सिकुड कर चुप हो बैठ जाता है, उसी प्रकार वह बहुधान्यक कुरं-

गीके उपर्युक्त वचन सुनकर अवाक् (गूंगा)हो बैठ गया ॥
२३॥ वज्राग्निकी शिखाका आताप तो सुखसे सहा जा सक्ता
है, परन्तु स्त्रीकी भयकारिणी भ्रुकुटी सहित वक्र दृष्टिको
कोई भी नहिं सह सक्ता ॥ २४ ॥ दोनों हाथ जोड कर
वार्तालाप (प्रार्थना) की हुई भी दुष्टा क्रोधायमान
महाविषवाली सर्पिणीकी तरह बडबडाती व चिल्लाती ही
रहती है॥ २५ ॥ दुर्निवार रोगकी समान पुरुषोंको निरन्तर
कष्ट देनेवाली इसप्रकारकी दुःशील (खोटे स्वभावको धर-
नेहारी) स्त्रियां पापके प्रभावसे ही होती हैं ॥ २६ ॥ इसी
अवसरमें " हे पिताजी घर चलकर भोजन कीजिए " इस-
प्रकार उसके पुत्रद्वारा प्रार्थनापूर्वक बुलाने पर भी वह
मूर्ख चिंतातुरकी समान चुप ही रहा तब—॥ २७ ॥
"तूने यह क्या पाखंड रचा है अपनी प्रियाके घर जाकर
क्यों नहिं जीमता ?" इसप्रकार कुरंगीके घुडकने पर वह
उसी वक्त डरता २ सुन्दरीके घर चला गया ॥ २८ ॥
वहां पहुंचते ही उस सुन्दरीने परम स्नेह प्रकट किया और
अपने निर्मल चित्तके समान विशाल कोमल उत्तम आसन
दिया ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् उसने पतिके संमुख अनेकप्रका-
रके पात्र रखकर उनमें यौवनकी समान सुन्दर रसीले
भोजन परोसे. परन्तु— ॥ ३० ॥ जिसप्रकार निर्मल वि-
शुद्ध जिनवाणी कर वर्णन किया हुवा सम्यक्त्व अभव्यको
नहिं रुचता, उसी प्रकार सुन्दरीके दिये हुये भोजन उस

को स्वादिष्ट (अच्छे) नहि लगे ॥ ३१ ॥ उसने ऐसा समझ लिया कि जो मुझे अनिष्ट (अप्रिय) है वह तो यह करती है और जो मुझे इष्ट है वह कुछ नहि करती ॥ ३२ ॥ जो जीव मोहके वशीभूत हो जिसमें विरक्त हो जाता है वह वस्तु उत्तम होने पर भी उसको कदापि नहिं रुचती ॥ ३३ ॥ इसी कारण महा स्नेहकी धारण करनेवाली स्त्रीकी समान सुंदर पुष्टिकारक सुवर्णपात्रमें परोसा हुवा वह भोजन उसको नहिं रुचा ॥ ३४ ॥ कामरूपी अंधकारसे आच्छादित अपने सन्मुख पात्रमें उत्तम भोजनको देखता हुवा, वह वहुधान्यक इसप्रकार विचार करने लगा कि, चन्द्रमाकी मूर्तिसमान आनंदकी देनेवाली, सुंदर कुचकी धारक वह कुरंगी किस कारणसे क्रोधायमान होती हुई मेरी तरफ दृष्टि भी नहि करती ? निश्चयकरके उसने मुझे वेश्याके साथ सोया हुवा समझकर ही कोप किया है. सो ठीक है संसारमें ऐसा कोई भी विषय नहिं है जो चतुर स्त्री न जान सके ॥३५-३७॥ इसप्रकार विना जीमे ही ऊंचा मुख किया हुवा देख उसके कुटुम्बी जनोंने कहा कि " यहां सव मनोहर वस्तु हैं सो जीमो, क्या ये भोजन तुमको अच्छे नहिं लगते ?" ॥३८॥ तव वह वोला कि क्या जीमूं ? मेरे मनलायक यहां कुछ भी नहीं है. मुझे कुरंगीके घरसे कुछ भी भोजन लाकर दो तो ठीक हो ३९ इसप्रकार पतिके वचन सुनकर सुंदरी उसी वक्त कुरंगीके घर

गई और कहा कि हे कुरंगी ! पतिको जो कुछ रुचिकारक भोजन हो सो दे ॥ ४० ॥ कुरंगीने कहा कि पतिका भोजन तेरे घर पर होगा, ऐसा समझकर मैंने आज कुछ भी नहिं बनाया ॥ ४१ ॥ यदि वह रक्तबुद्धि मेरा दिया हुवा गोमय (गोबर) खा लेगा तो मेरे समस्त दूषण भी सह लेगा ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपने मनमें विचार कर उसने उसी वक्त गर्म २ चावे हुये गेहूंके हैं दाने जिसमें ऐसा निंद्य पतला २ गोबर लाकर ॥ ४३ ॥ "ले यह व्यंजन ले जाकर स्वामीको परस" ऐसा कह कर वर्त्तनमें भरके सुंदरीको सोंप (दे) दिया ॥ ४४ ॥ जब उस सुंदरीने लाकर वह गोवर स्वामीको परोस दिया तो सुंदर भोजनको छोडकर उस गोवर की वारंवार प्रशंसा करता हुआ विष्टाको शूकरकी तरह खा गया ॥ ४५ ॥ आचार्य कहते हैं कि उस बहुधान्यकने कुरंगीका दिया हुवा गोवर खा लिया तो इसमें क्या आश्चर्य हुवा ? क्योंकि रागी पुरुष तो स्त्रियोंके जघनस्थलके महा अशुचि पदार्थको भी खा लेता है ॥ ४६ ॥ विरागीको प्रशस्त कहिये सुन्दर भी असुंदर भासता है, परन्तु रागी पुरुषको प्रगटपणेकर असुन्दर पदार्थ भी सुन्दर दीखता है ॥ ४७ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी नीच कार्य नहीं है, जो रागी पुरुष स्त्रीकी आज्ञासे नहिं करे, क्योंकि बहुतसे स्त्रीभक्त रागी पुरुष विष्टातक खा लेते हैं, तब गोवर उसकी अपेक्षा तो पवित्र है ॥ ४८ ॥ सो

वह ग्रामकूट केवलमात्र गोचर ही खाकर अपनी बैठकमें जा बैठा और अपनी प्रियाके क्रोधका कारण जाननेके लिये ब्राह्मणसे (ज्योतिषीसे) पूछने लगा ॥ ४९ ॥ कि हे भद्र ! मेरी स्त्री मेरे पर रुष्ट क्यों हो गई ? क्या निश्चयसे इसने कोई मेरा दुश्चरित्र जान लिया है ? यदि तुम जानते हो तो कहो ॥ ५० ॥ उस ब्राह्मणने कहा कि हे भद्र ! अपनी स्त्रीकी वात तो रहने दो, इससे पहिले जो स्त्रियोंकी चेष्टायें हैं वे थोडीसी कहता हूं सो सुनलो ॥ ५१ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी दोष नहीं है जो स्त्रियोंमें न हो क्योंकि ऐसा कौन सा अन्धकार है जो रात्रिमें कहीं भी नहीं हो ? ॥ ५२ ॥ समुद्रके जलका परिमाण करना तो शक्य है परन्तु समस्त दोषोंकी खानि रूप स्त्रीके दोषोंकी गिनती कदापि नहिं हो सक्ती ॥ ५३ ॥ दूसरोंके दोष ढूंढनेमें चतुर द्विजिह्व कहिये एक ही वातको कहीं कुछ कहीं औरकी और कहने-वाली स्त्रियोंका क्रोध महाक्रोधायमान सर्पिणीकी समान कदापि शांत नहिं होता ॥ ५४ ॥ यह स्त्री, सदा उपचार (चिकित्सा) करते हुये भी अत्यंत वृद्धिरूप वेदनाकी स-दृश जीवनको क्षय करनेवाली है ॥ ५५ ॥ इधर उधर भ-टकते हुये दोषोंका परस्पर कभी मिलाप नहिं होता था, इस कारण ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको एकही जगह मिलाप करानेकी इच्छासे ही मानो यह स्त्रीरूपी सभा बनाई है ५६ जिसप्रकार जलकी खानि नदी है उसीप्रकार दुश्चरित्रोंकी

वस्ती (घर) यह स्त्री है ॥ ५७ ॥ जिसप्रकार वेलोंके उत्पन्न होनेमें पृथिवी कारण है उसी प्रकार अपयशको उत्पन्न करनेमें कारण स्त्री है तथा जैसी अंधकारकी खानि रात्रि है, उसी प्रकार दुर्नयोंकी महा खानि स्त्री है ॥५८॥ यह स्त्री अपना स्वार्थ साधनेमें चोरटीकी समान है, आतापकरनेको अग्निकी सदृश है, हृदयाहितामें अचल छायाकी समान है और संध्याकी समान क्षणमात्र प्रेमकी धरनेवाली है ॥ ५६ ॥ तथा कुत्तीकी समान अपवित्र नीच खुसामद करनेवाली, पापकर्मसे उपजी मलिन उच्छिष्टकी भक्षण करनेवाली है ॥ ६० ॥ दुर्लभ वस्तुमें शीघ्र ही रंजायमान हो कर अपने स्वाधीन वस्तुको छोडनेवाली और महान घोर साहस करनेवाली न कभी डरती और न शर्माती है तथा ॥ ६१ ॥ बिजलीकी समान अस्थिर वाघिनीकी समान मांसखानेकी इच्छक, मच्छीकी समान चपल और दुर्नीतिकी समान दुःख देनेवाली है ॥ ६२ ॥ हे महाशय! बहुत कहां तक कहूं? तुमारे घरमें जो यह कुरंगी है इसको प्रत्यक्षमें अपना शत्रु समझना ॥ ६३ ॥ हे भद्र ! सम्यक् चारित्रकी समान दुर्लभ तेरा समस्त धन, इस कुरंगीने अपने यारोंको देकर नष्ट कर दिया है ॥ ६४ ॥ जो स्त्री निर्भय चित्त हो तेरे धनको नष्ट करती है, वह दुराशया तेरे जीवनको हरै तो उसे कोन निवारण कर सक्ता है ? ॥ ६५ ॥ तुरन्त ही कुमार्गमें जानेको तय्यार ऐसी

स्त्रीको यदि वशमें नहिं रक्खा जाय तो पुरुषोंको अवश्य-मेव जूतीकी समान निकालकर अलग कर देती है ॥ ६६॥ जो मूर्ख निर्दय चित्तवाली स्त्रियोंका विश्वास करता है वह क्षुधासे आकुलित सर्पिणीका विश्वास करता है ॥ ६८ ॥ जिसके घरमें दुष्ट स्त्री रहती हो तो वह सर्पिणी, तस्करी, दुष्ट हथिनी, राक्षसी, शाकिनीकी समान प्राणोंको हरनेवाली है ॥६८॥ इसप्रकार भट्टके वचन सुनकर उस भ्रष्टबुद्धि बहु-धान्यकने सबका सब कुरंगीको कह सुनाया ॥ ६९ ॥ उसने कहा कि हे स्वामी ! इसने मेरा शील हरना चाहा था, इ-सकारण मेरा यह दुश्मन है सो यह मेरे दूषणोंको कहता है ॥७०॥ जिसप्रकार समुद्र नक्रों (नाके वगेरह) का स्थान है उसी प्रकार यह दुष्ट भट्ट समस्त अन्यायोंकी खानि है. सो हे प्रभो ! इसको शीघ्र ही घरसे निकाल देना चाहिये ॥ ७१ ॥ कुरंगीके इस वचनसे वह हितैषी भी तिरस्कृत किया गया. सो ठीक ही है. स्त्रियोंकी आज्ञामें चलनेवाला रक्तपुरुष ऐसा कौनसा अनुचित कार्य है जो नहिं करता ॥ ७२ ॥ अविचारी पुरुषोंको दिया हुआ सद्वचन भी सर्पोंको हितकारक दूध पिलानेकी समान महा भयकारी है ॥ ७३ ॥ इस संसारमें हितरूप वचन कहते हुये भी ग्राम-कूटके समान निर्विचार रागान्धपुरुषोंके द्वारा प्रत्यक्षतया दोषारोपण किया जाता है ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य हितैषी भृत्यके द्वारा कहे हुये दुष्टशीलाके चरित्र उसी दुःशीलाको

जाकर कह देता है वह और क्या नही करेगा ? अर्थात् सब कुछ करेगा ॥७५॥ हे विभो ! इसप्रकार मैंने दुष्टचित्त वाले रक्तपुरुष को सूचित किया. अब द्विष्टपुरुषका विधान कहता हूं सो सुनो ॥ ७६ ॥

२ । द्विष्टपुरुषकी कथा.

कोटी नगरमें स्कंध और वक्र नामके दो जमीदार किसान रहते थे. उनमेंसे वक्र नामका किसान बडा वक्रपरिणामी था ॥ ७७ ॥ वे दोनों किसान एक ही ग्रामकी उपज खानेवाले थे, इसकारण दोनोंमें परस्पर वडा द्वेष (वैर) हो गया. सो ठीक ही है क्यों कि जहां दो चार मनुष्योंके एक ही द्रव्यकी अभिलाषा होती है वहांपर अवश्य ही वैर हो जाता है ॥ ७८ ॥ प्रकाश चाहनेवाले काक और नित्य अन्धकार चाहनेवाले उल्लूकी तरह उन दोनोंमें स्वाभाविक दुर्निवार वैर हो गया ॥ ७९ ॥ इनमेंसे वक्र नामक किसान सदैव लोगोंको वडा दुःख देता था, सो नीति ही है कि जिसने दोषबुद्धि धारण करी, वह मनुष्य किसको सुखदायक होगा ? ॥ ८० ॥ एक समय वक्र प्राणहारी व्याधि (असाध्यरोग) से पीडित हो गया. सो नीति ही है जो पापिष्ठ परको दुःखदायक होता है ? वह कौनसे दुःखको प्राप्त नहीं होता ॥ ८१ ॥ वक्रकी ऐसी अवस्था होनेपर भी वक्रके पुत्रने कहा कि पिताजी आप विशुद्ध मन होकर किसी ऐसे धर्मको धारण करो कि जिससे आपको परलोकमें

सुखकी प्राप्ति हो ॥८२॥ परलोकमें एकमात्र सैकडों सुख-दुःखका कर्ता अपना किया हुवा पुण्यपापरूप कर्म ही साथ जाता है. पुत्र कलत्र धन्यधान्यादिमेंसे कोई भी साथ नहि जाता ॥ ८३ ॥ हे तात ! अन्त रहित बडे लंबे मार्गवाले इस संसाररूपी वनमें सिवाय आत्माके अपना व पराया कोई भी नहीं है इसकारण कुबुद्धिको छोडकर कोई हितकारी कार्य्य करें ॥ ८४ ॥ मेरी समझमें तो आप मित्रपुत्रादिकसे मोह छोडकर ब्राह्मण और साधु जनोंके अर्थ धनादिकका दान दें और किसी इष्टदेवका स्मरण करें जिससे आपको सुखदायक गतिकी प्राप्ति हो ॥ ८५ ॥

ये वचन सुनकर चक्रने कहा कि, हे पुत्र ! मेरा एक हित रूप कार्य्य जो मैं कहता हूं करो, क्योंकि जो सुपुत्र (सपूत) होता है वह पिताके वचनका उल्लंघन कदापि नहि करता ॥ रे वत्स ! मेरे जीते जी तो यह स्कन्ध कदापि सुखी नहि हो सका, परन्तु बंधु पुत्र कुटुम्ब सम्पत्ति सहित उसका विनाश नहि कर सका. सो हे पुत्र ! यह जिसप्रकार समूल सकुटुम्ब नष्ट हो जाय ऐसा कोई उपाय करना, जिससे कि मैं मनोहर शरीरको धारण कर प्रसन्नचित्तसे सदैवके लिये स्वर्गवास कर सकूं ॥ ८७–८८ ॥ मेरी समझमें इसके लिये यह उपाय रचना कि मेरे मरजाने पर मेरी लाशको स्कन्धके खेतमें लेजाकर लकडियोंके सहारे खडी कर देना. तत्पश्चात् अपनी समस्त गौ भैंस घोडोंको उसके खेतमें छो-

उड़ देना, जो वे उसके खेतका समस्त धान्य नष्ट कर दें. और तू किसी वृक्ष या घासकी ओटमें छिपकर देखते जाना जब स्कन्ध क्रुद्ध होकर मेरे पर घात (वार) करै तो उसी वक्त अन्य लोगोंको सुनानेके लिये बडे जोरसे चिल्ला उठना कि, स्कन्धने मेरे पिताको मार डाला ॥ ८९-९० ॥ जब तू इसप्रकार करैगा तो राजा, स्कन्ध द्वारा मुझको मरा जान स्कन्धको कुटुम्ब सहित दण्ड देगा सम्पत्ति छीन लेगा तो यह स्कन्ध पुत्रसहित मरणको प्राप्त हो जायगा ॥ ९१ ॥ इसप्रकार महापापरूप वचन कहता २ वह वक्र मर गया और उसके पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया सो नीति ही है कि पापकार्य करनेवालोंके सहायक अनेक हो जाते हैं ॥९२॥ जो दुष्ट मरता २ भी परको सुखी देखनेमें अधीर है, उसको सिवाय निर्दयी यमराजके और कौन है जो हितकी बात समझा सके ? ॥ ९३ ॥ भो ब्राह्मण ! जिसप्रकार वक्रने अपने पुत्रके कहे हुये हितवचनोंको कुछ भी स्वीकार नहिं किया. सो उस वक्रकी सदृश जो कोई तुम लोगोंमें निकृष्ट (दुष्ट) हो तो मैं हितरूप वचन कहते डरता हूं ॥ ९४ ॥ जो पुरुष महा द्वेषरूपी अग्निसे दग्धहृदय हैं, वे पराई चिंताके सिवाय न तो सुखसे खाते और न सोते और न पराई सम्पत्तिको देख सक्ते अर्थात् वे दोनों ही लोकमें निमल सुखको नहिं पाते ॥ ९५ ॥ जो नीच निरन्तर द्विष्टचित्त रहते हैं और तुच्छ अज्ञानी पराई सम्पत्तिको नहिं देख सक्ते, वे

निरन्तर जलते हुये अन्तरहित नर्करूपी अग्निकुंडमें चिरकाल तक रहना स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने दुष्ट स्वभावको नहिं छोड़ते ॥ ९६ ॥ जो मूढ हितवचनको छोडकर हमेशह विपरीतिताको ही ग्रहण करता है, ऐसे दुष्टचित्तके सन्मुख बहुज्ञानी जन कुछ भी वचन नहिं कहते ॥ ९७ ॥

इति श्रीअमितगति आचार्यविरचित धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पांचमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥

भो ब्राह्मणो ! तुमने अग्निकी समान तापकारी द्विष्टपुरुषकी कथा तो सुनी किन्तु अब पाषाण समान नष्टबुद्धि मूढ पुरुषकी कथा सुनो ॥ १ ॥

३। मूढपुरुषकी कथा।

यक्षदेवोंके स्थानकी समान निधानका खजाना देवालयोंसे पूरित कंठोष्ठ नामका एक नगर था ॥२॥ उसमें विप्रोंकर पूजनीय वेद वेदांगका पाठी अर्थात् ब्रह्माके समान चार वेद ही है मुख जिसका ऐसा एक भूतमति नामका ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उस धीरचित्तके वेदादि पढते २ पचास वर्ष तो बालब्रह्मचर्यावस्थामें ही बीत गये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् उसके कुटुम्बी जनोंने यज्ञकी अग्नि शिखाके समान उज्वल नारायणके लक्ष्मीके समान यज्ञा नामकी कन्यासे विधिपूर्वक विवाह करा दिया ॥ ५ ॥ वह भूतमति उपाध्याय

पद्में तिष्ठता लोकोंके पढानेमें आशक्त है बुद्धि जिसकी, समस्त ब्राह्मणोंकर पूजनीय, यज्ञ करानेमें प्रवीण, भोगाभिलाषियोंमें मान्य, उस यज्ञाके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगता हुवा स्थिरचित्त पृथिवीमें प्रसिद्ध विद्वान हो सुखसे निवास करता था ॥ ६—७ ॥ उसके यहाँ पढनेकी इच्छासे स्त्रियोंके नेत्ररूपी भ्रमरोंको कमलके समान युवास्थाका धारक यज्ञके समान पवित्र एक यज्ञ नामका बटुक (ब्राह्मणका लडका) आया ॥ ८ ॥ उस बटुकको विनयवान वेदोंके अर्थ ग्रहण करनेमें चतुर देखकर उस श्रुतधरिने अपने घर शिष्य बनाकर रख लिया, सो मानो उसने मूर्त्तिमान अनर्थ ही ग्रहण कर लिया ॥ ९ ॥ उस ब्राह्मणके लडकेको देखते ही यज्ञा तो विह्वल हो गई और जिसप्रकार अतिशय भारसे लदी हुई गाडी धुरा टूट जानेसे एकदम ठहर जाती है, उसीप्रकार यज्ञाके नेत्रोंकी दृष्टि अन्य पदार्थोंसे हटकर उसीके देखनेमें स्थिर हो गई ॥ १० ॥ रति और कामके समान उन दोनोंके सदैव एकत्र रहनेरूपी जलसे सींचा हुवा इष्टफलदायक स्नेहरूपी वृक्ष प्रतिदिन बढने लगा ॥ ११ ॥ दरिद्रकी सभा, सेवककी प्रतिकूलता और वृद्धपुरुषके तरुणी भार्य्या, ये तीन कुलको क्षय करनेके कारण हैं ॥१२॥ परपुरुषमें आशक्त हुई स्त्री समस्त दोषोंको करती है, सो उचित ही है, वज्राग्निकी ज्वाला किसको आतापकारी नहिं होती ? ॥ १३ ॥ जो पुरुष स्त्रीको अपने घरमें स्वतंत्र

और निरर्गल करता है, वह साक्षात् धान्यमें जलती हुई अ-ग्निशिखाको नहिं बुझाता; क्योंकि ॥ १४ ॥ संभाल नहिं की हुई स्त्री हृदयको प्राप्त होकर बढे हुये असाध्य रोगके समान प्राणोंका क्षय करती है ॥ १५ ॥ यह स्त्री सबको तृप्त करती है, तथा सेवन करती है, इसी कारण इसका नाम 'योषा' है और क्रोध करनेवाली है, इसकारण इ-सका नाम 'भामिनी' है ॥ १६ ॥ और अपने दोषोंको ढक लेती है, इसकारण विद्वज्जन इसको 'स्त्री' कहते हैं. इसमें चित्त विलीन हो जाता है, इसकारण इसको 'विलया' क-हते हैं ॥ १७ ॥ यह पाप कार्योंमें रमाती है, इसी कारण इसको 'रमणी' कहते हैं यह सबको मारती है इसकारण इसको 'कुमारी' कहते हैं ॥ १८ ॥ यह लोकोंको बलर-हित कर देती है इसकारण इसको अबला कहते हैं. इसमें आसक्त होकर मनुष्य प्रमादी हो जाता है इसकारण इस-का एक नाम प्रमदा भी है ॥ १९ ॥ अनेक अनर्थोंके क-रनेमें प्रवीण स्त्रियोंके ये सब नाम ही प्रगट तथा दुःखकारक वेदनाके समान दुखोंके कारण हैं ॥ २० ॥ अरक्षित (व-शमें नहिं की हुई) स्त्री मनोवृत्तिके समान निरन्तर दोषोंको धारण करती है इसकारण स्त्रियोंको सदा वशमें रखना चाहिये ॥ २१ ॥ जो अपना हित चाहते हैं, ऐसे सत्पुरुष नदी, सर्पिणी, व्याघ्री और मृगलोचिनी स्त्रियोंका कदापि विश्वास नहिं करते ॥ २२ ॥ एक समय मथुराके ब्राह्मणों

ने कुछ भेट देकर पुंडरीक नामक यज्ञ करानेके लिये भूतमतिको बुलाया. सो " हे यक्षे ! घरकी रक्षा करती हुई तू तो घरके भीतर सोया करना और इस बटुकको पोंकी (दहलीज) में सुलाना " इस प्रकार कहकर वह भूतमति मथुराको चला गया ॥ २३—२४ ॥ अपने पतिके चले जानेपर उस पापिष्टाने उस ब्राह्मणके लडकेको अपना जार (यार) बना लिया. सो नीतिही है कि शून्य घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बडा शकुन हो जाता है ॥ २५ ॥ उन दोनोंके परस्पर दर्शन स्पर्शन और वारवार गुप्त अंगोंके प्रकाशनेसे कामेच्छा, घृतके स्पर्शसे अग्निशिखाके समान शीघ्र ही तीव्रतया बढ गई ॥ २६ ॥ बहुधा समस्त प्रकारकी स्त्रियोंके द्वारा समस्त पुरुषोंका मन हरा जाता है, सो तरुण व्यभिचारिणीके द्वारा तरुण व्यभिचारीका मन क्यों नहिं हरा जायेगा ? ॥ २७ ॥ इसीकारण वह बटुक उस यज्ञाके पीनस्तनोंसे पीडित होकर उसको निरन्तर भोगता हुवा. सो नीति ही है कि, ऐसा कौन पुरुष है, जो एकांतमें युवति स्त्रीको पाकर वैराग्यको प्राप्त हो जाय ? २८ विभ्रम (सुन्दरता) की निधान (खानि] उस यज्ञाद्वारा गाढालिंगन किया हुवा वह बटुक पार्वतीसे आलिंगन किये हुए महादेवको तृणके समान भी नहिं मानता था ॥ २९ ॥ स्त्री पुरुषोंको मिलानेवाला न तो कोई दूत है और न संग करानेको कामदेव ही आता है, ये तो नेत्रोंके

विभ्रमोंसे (कटाक्षोंसे) अपने आप ही तुरन्त मिल जाते हैं ॥२०॥ निःशंक मदनयुक्त व्यभिचारिणी युवति स्त्री पुरुषको देख कर जो कुछ भी न कर, बैठी रहै तो इससे वडा आश्चर्य और क्या है ? ॥ २१ ॥ जिसप्रकार अग्निकी ज्वालासे घृतका घडा स्वभावसे ही पिघल जाता है; उसीप्रकार नतभ्रू कहिये स्त्रीके द्वारा स्पर्शन किया हुवा पुरुष शीघ्रही विलीन मोहित हो जाता है ॥ २२ ॥ यह मनुष्य अपनी स्त्रीके द्वारा सुरतरूपी अमृतको पीकर अनेक प्रकारके भोगोंको प्राप्त होके भी एकांतमें परस्त्रीको पाकर प्रायः क्षोभको प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ सो यह वटुक तो कामकर पीडित मदोन्मत्त तरुण अवस्थाका धारक है. सो एकान्तमें तरुण परस्त्रीको पाकर क्यों नहीं क्षोभको प्राप्त होगा ? ॥ २४ ॥ इसप्रकार दृढप्रेमरूपी फांसीसे बंधा हुवा है चित्त जिनका ऐसे, वटुक और यज्ञाको भोग समुद्रमें मग्न रहते हुए चार महीने वीत गये ॥ २५ ॥

एक दिन उस वटुकको म्लानमुख देखकर प्रेमके भारसे नम्रीभूत यज्ञाने कहा कि, हे प्रभो ! आज तुम चिंतातुर क्यों दीखते हो ? सो मुझे कहो ॥ २६ ॥ वटुकने कहा कि, हे कान्ते तेरे साथ, लक्ष्मीके साथ विष्णुके समान सुख भोगते हुये आज अनेक दिन वीत गये. सो ॥ २७ ॥ हे तन्वी ! अब भट्टजीके आनेका समय निकट आगया, सो अब क्या करूं और मनको अतिशय प्यारी जो तू उसे छो-

डकर कहां जाऊं ॥ ३८ ॥ यदि यहांपर रहता हूं तो बडी विपत्ति है यदि जाता हूं तो जानेके लिये पांव नहि उठते, एक तरफ तो नदीका किनारा और दूसरी तरफ व्याघ्र है. क्या करूं ? द्विविधामें पड गया हूं ॥३९॥ तब यक्षाने उसको कहा कि तुम इस चिंताको छोड दो और स्वस्थ होवो, अपने चित्तको अन्यथा मत करो, मैं जो कहती हूं सो करो ॥ ४० ॥ हे सज्जन ! अपन दोनों बहुतसा द्रव्य लेकर कहीं अन्यत्र चले जायंगे. और स्वच्छन्दताके साथ मनोहर सुरतामृतको भोगते हुये आनन्द करेंगे और दुष्प्राप्य नरभवको सफल करेंगे तथा जाते हुये तारुण्यका सारभूत मनोहर रस पीवेंगे ॥ ४१-४२ ॥ इस कारण हे प्यारे! व्याकुलताको छोड कर तुम दो मुर्दे लावो. फिर समस्त जनोंके लक्ष्यमें न आवे ऐसा यहांसे निकलनेका उपाय करूंगी ॥ ४३ ॥ यह सुनकर उस यक्षाकी समस्त आज्ञाको प्रसन्न चित्तसे पालता हुवा. सो नीति ही है कि कामी पुरुष ऐसे कार्योंमें मूर्ख नहि होते ॥ ४४ ॥ फिर रात्रिमें जाकर बहुकने श्मसानमें दो मुरदे लाकर रख दिये. सो उचित ही है स्त्रीकर प्रार्थना किया हुआ पुरुष कौनसा साहस नहि करता ? ॥ ४५ ॥ उस यक्षाने एक मुरदेको तो पोलीमें और दूसरेको घरके भीतर डालकर समस्त धन लेकर घरमें आग लगादी. और ॥ ४६ ॥ व्याध (शिकारी) की फांसीसे मृगके समान उस बस्तीसे शीघ्र ही निकल कर

उन दोनोंने उधरकी तरफका मार्ग ले लिया ॥ ४७ ॥ वह प्रज्वलित अग्नि समस्त घरको जलाकर धीरे २ शांत हो गई और वस्तीके लोक भी केवलमात्र भस्मको देख २ कर शोच करने लगे कि, ॥ ४८ ॥ देखो ! इस अग्निने सतियोंमें अग्रणी गुणवती ब्राह्मणीको वटुक सहित कैसे जला दिया ? ॥ ४९ ॥ भीतर और बाहरके दोनो मुरदों के हाड देख कर मनही मन चिंता करते हुये वे समस्त जन अपने अपने घरको चले गये ॥ ५० ॥ आचार्य कहते हैं कि, तीन लोकमें ऐसा कोई भी प्रपंच (छलकपट) नहीं है, कि जिसको कामकर पढाई हुई स्त्रियें न जानती हों ॥ ५१ ॥ वस्तीके लोगोंद्वारा भेजे हुये पत्रको देखकर वह मूढधी द्विजाग्रणी आया और अपने घरको जला हुवा देखकर विलाप करने लगा कि, ॥ ५२ ॥ हे महामते वटुक ! मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले गुरुसेवा करनेमें चतुर तुझे निर्दयी अग्निने कैसे जला दिया ? ॥ ५३ ॥ तुझ सरीखा विनयवान् पवित्र ब्रह्मचारी चतुर शास्त्रोंके पार जाननेवाले कुलीन यह वटुकको अब कहां देखूं ? ॥ ५४ ॥ हाय ! मेरी आज्ञामें रहनेवाली गृहकार्यमें तत्पर ऐसी तुझ पतिव्रता सुकुमारीको अग्निने कैसे जला दिया ? ॥ ५५ ॥ हे कान्ते ! तुझ सारखी गुणशील कलाकी आधारभूत बहुत लज्जावती पतिव्रता स्त्री कभी न होगी ॥ ५६ ॥ हे कृशोदरी हे चन्द्रानने मेरे वाक्यानुसार रहनेवाली जो तू ऐसी विपत्तिको

प्राप्त हुई, सो इस पापसे मेरी शुद्धि कैसें होगी ॥ ५७ ॥
हे तन्वी ! पावोंसे कमलोंको जंघाओंसे कामके बाण रखनेकी भातडीको पींडियोंसे केलेके थंभको, जघनकी शोभासे र-थांग कहिये रथके पहिये अथवा चक्रवाकको ॥ ५८ ॥
नाभिचिन्हसे जलके भ्रमणको, उदरसे वज्रकी शोभाको, कुचोंसे सुवर्णकुम्भोंको, कंठसे कमलनालकी शोभाको, ॥ ५९ ॥ मुखसे चन्द्रमाके विंवको, नेत्रोंसे मृगीके नेत्रोंको, ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाको, केशोंसे चमरीकी पूंछको, ॥६०॥ वचनोंसे कोकिलाको, और क्षमासे पृथिवीको जीतनेवाली ऐसी तुझको स्मरण करते हुये हे कांते ! मुझे कहां सुख हो सक्ता है ? ॥६१॥ हे कान्ते ! तेरे साथ दर्शन स्पर्शन हसन मधुर भाषण करते देख यमराजने सबको दूर [नष्ट] कर दिया ॥ ६२ ॥ इस रमणीक कंठोष्ठ नगरमें देवांग-नाकी समान कंठ होट वगेरह अंगोंसे सुंदर जो तू, सो मुझे भोगनेके लिये नहिं मिली ॥ ६३ ॥ हे मृगाक्षी ! चकवीके मरनेपर चकवेके समान अब तेरे विना सुखकी आशा और निर्वृत्ति कहां ? ॥ ६४ ॥ इस प्रकार विलाप करते हुये उस ब्राह्मणको एक ब्रह्मचारीने कहा कि हे मूढ ! प्रयोजन नष्ट होनेपर अब वृथा ही क्यों रोता है ? ॥ ६५ ॥ पवनके द्वारा उडाये हुये शुष्कपत्रोंकी समान जीव भी कर्मोंके प्रेरेहुये मि-लते बिछुडते रहते हैं ॥ ६६ ॥ बिछुरे हुये परमाणुओंका संबन्ध तो कभी न कभी हो भी जाता है, परन्तु बिछूरे हुये

जीवोंका संयोग होना दुर्लभ है ॥ ६७ ॥ रस (पीव), रु-धिर (खून), मांस, मेद, हाड, मज्जा, धातु वगेरहका पुंज पतले चमडेसे ढके हुये स्त्रीके शरीरमें मनोहर वस्तु कोनसी है ? ॥ ६८ ॥ यदि दैवयोगसे स्त्रीके शरीरकी बाह्य रचना तो भीतर हो जाती और भीतरकी रचना बाहर हो जाती तो, इससे आलिंगन करना तो दूर ही रहो किन्तु कोई दे-खता तक भी नहीं ॥ ६९ ॥ हे मूढ ! रक्त झरनेका द्वार दुर्गंधमय, जिसका नाम लेते भी घिन आये ऐसा विष्टागृ-हके समान निन्द्य स्त्रीका जघन, किस प्रकार उत्तमपुरुषों-कर स्पर्शने योग्य है ? ॥ ७० ॥ लालें, खंकार, कफ, द-न्तमल और कीटोंका घर ऐसे स्त्रीके मुखको कवियोंके द्वारा चन्द्रमाकी उपमा कैसे दी जाती है ? ॥ ७१ ॥ फोडे (व्रण) के सदृश मांसके पिंड ऐसे जो स्त्रीके कुच हैं, उनको ती-क्ष्ण-बुद्धि पंडितजन सुवर्णके कलशोंकी उपमा कैसे देते हैं ॥ ७२ ॥ समस्त अशुचि पदार्थोंकी खानि विचित्र छिद्र-वाले स्त्री पुरुषोंका संग विष्टाके दो घडोंके समान होता है ॥ ७३ ॥ यह कामिनी रूपी नदी रागरूपी कल्लोल सं-पदासे नररूपी वृक्षोंको गिराके लेजा २ कर संसाररूपी स-मुद्रमें पटकती है ॥ ७४ ॥ यह स्त्री नीच पुरुषोंको मोहित करके नरकमें डाल देती है और उनके साथ आप (स्वयं) नहिं जाती. ऐसी स्त्रीको पंडित जन कैसे सेवन करें ? ॥ ये भोगे हुवे दुष्ट भोग हैं, ते काष्टको अग्निकी सदृश हृदय

को जलाया करते हैं, इनकी समान अन्य शत्रु कहां है ? ॥ ७६ ॥ नष्ट कर दिया है समस्त विवेक जिसने ऐसी मदिराकी समान स्त्रीकर मोहित हुवा जीव, अपने हित अहितको नहिं जानता सो प्रगट है ॥ ७७ ॥ यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह माता है और यह पिता हैं, ऐसी बुद्धि कर्मके वशीभूत मूढोंके ही होती है ॥ ७८ ॥ जिस संसारमें जन्मसे लेकर पालन पोषण करते २ मनुष्यका देह ही नष्ट हो जाता है, उस संसारमें स्त्री पुत्र धनादिकमें निर्वाह कैसा ? ॥ ७९ ॥ इस प्रकार ब्रह्मचारीके उपदेशसे वह भूतमति मूढ शोकशांति करलेनेकी जगह उलटा क्रोधित होकर निम्नलिखित प्रकारसे कहने लगा. सो उचित ही है कि,— मूढ चित्तवालोंको विद्वानोंकर दिया हुआ उपदेश वृथा ही जाता है ॥ ८० ॥

हे ब्रह्मचारी ! यदि स्त्री ऐसी निंद्य होती तो समस्त मार्गोंमें विचक्षणचित्त ऐसे हर ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादिक स्त्रीको हृदयका हार क्यों बनाते ? ॥ ८१ ॥ हे ब्रह्मचारी ! जडसदृश (असैनी) अशोकादि वृक्ष भी जिस स्त्रीको (लतादिकके आलिंगनको) नहिं छोडते तो समस्त प्रकारके सुख देनेमें चतुर ऐसी स्त्रियोंको ये पुरुष किसप्रकार छोड सक्ते हैं ॥८२॥ स्त्री पुत्ररूपी फल देती है, समस्त परिश्रमको दूर करती हैं, जिसका शरीर किसी प्रकार भी निन्द्य नहीं है. बहुत तो क्या ? इस लोकमें इन स्त्रियोंके सिवाय

इन्द्रियोंको समस्त प्रकारके सुखदेनेवाली कोई भी वस्तु नहिं है ॥ ८३ ॥ भो ब्रह्मचारिन् ! यदि स्त्रियोंके सेवनसे समस्त पुरुष पागल हो जाते हैं तो क्या इस जगतमें युवतिसंगमें रत हुवा पुरुष कोई भी विचारवान् नहीं है ? अर्थात् तुमारे कहनेसे तो स्त्रीवाले पुरुष सब मूर्ख ही हैं, सो ऐसा कदापि नहिं है ॥ ८४ ॥ अपने अपने मनको प्रिय कोई भी कुछ कहो जगतमें सबकी रुचि भिन्न २ है. सो अनिवार्य्य है. परन्तु मेरा तो मत संशयरहित यही है कि संसारमें स्त्रीकी समान सुखकारी वस्तु अन्य कोई भी नहीं है ॥ ८५ ॥ इसप्रकार कह कर यह मूढ ब्राह्मण अपने आपही दो तुम्बी लेकर एकमें प्रियतमाके हड (फूल) और दूसरीमें बटुकके हाड भर कर गंगाजीमें डालनेके लिये बडे वेगके साथ चल पडा ॥ ८६ ॥

रास्तेमें जाते हुए किसी नगरमें उसका नीच शिष्य यज्ञ नामा बटुक मिल गया. सो गुरुको देखते ही उसका समस्त शरीर कांपने लगा, लाचार, गुरुके पावोंमें गिरकर वह बटुक "हे विभो ! मेरा अपराध क्षमा करो" इसप्रकार प्रार्थना करने लगा ॥ ८७ ॥ उस ब्राह्मणने पूछा कि, "तू कौन है ?" तब अतिशय विनीतभावसे बटुकने कहा कि, हे विभो ! आपके चरणकमलोंके सेवनसे ही है जीना जिसका ऐसा, मैं आपका यज्ञ नामा बटुक हूं ॥ ८८ ॥ इसप्रकार सुनकर वह मूढधी ब्राह्मण कहने लगा कि, अरे यह

मेरा चतुर वटुक कहां? वह तो जल गया. तू तो कोई दू-सरा ही ठग है. जो मूर्ख तेरी ठगाईको नहिं समझे, उसको जाकर ठग. यहां तेरा दाव नहिं चल सक्ता ॥ ८९ ॥ इस प्रकार कहकर वह किसी अन्य नगरमें पहुंचा तो वहांपर दैवयोगसे उसकी प्रियतमा दुष्ट यज्ञा अचानक ही मिल गई वह भी भयसे थर थर कांपती हुई उस ब्राह्मणके चरणकम-लोंमें मस्तक रखकर इसप्रकार कहती हुई कि, ॥ ९० ॥ हे प्रिय! तेरा धन सबका सब मौजूद है. हे गुणनिधान! इस अपराधको सहलें (क्षमा करें). जिसका चित्त अपने ही पापकार्योंसे कम्पायमान है. उसपर शुभमति पुरुष कदा-पि कोप नहिं करते ॥ ९१ ॥ इस प्रकार वचन सुनकर उस मूढने यज्ञासे पूछा कि, तू कौन है? सो कह. तब यज्ञाने कहा कि मैं आपकी यज्ञा नामा ब्राह्मणी हूं. ब्राह्मणने कहा कि, वह प्रियतमा यज्ञा तो इस तूंबडीमें है; फिर बाहर तू कैसे आगई? ॥ ९२ ॥ इस नगरमें यदि तुम मुझे भोजन पान नहिं करने दो तो, लो मैं दूसरे नगरमें जाता हूं. ऐसा कहकर नष्ट हो गई हैं समस्त विचारोंमें बुद्धि जिसकी ऐसा वह ब्रा-ह्मण गुस्सा होकर उसी वक्त दूसरे नगरकी तरफ चल दिया ॥ ९३ ॥ जिस मूढ चित्तको प्रगटतया पदार्थोंमें निश्चयपणा मालूम नहिं होता. ऐसे निर्विचार पुरुषको, मूढोंको विशेष प्रकार मर्दन करनेवाले यमराजके सिवाय और कौन सम-झा सक्ता है ॥ ९४ ॥ जो ज्ञान रहित मूढ पुरुष हैं वे संसा-

रके भयको मथन (नष्ट] करनेवाले, स्थिर शिवसुखको दे-नेवाले शुद्धपद्धतिका है विस्तार जिसमें ऐसे, अमितगतिवचनं कहिये सम्यग्ज्ञानी पुरुषोंके वचनको हृदयमें नहिं धरते इसकारण उनको सुर्याजन अपने हृदयमें ही रखते हैं ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगति आचार्यकृत धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालबोधिनी भाषा टीकामें छट्ठा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ६ ॥

अथानंतर मनोवेगने कहा कि हे ब्राह्मणो ! उपर्युक्त प्रकारसे विवेकरहित मूढपुरुषकी कथा तो तुमको कही. अब अपने ही अभिप्रायमें आलीढ (दृढ) ऐसे व्युद्ग्राही पुरुषकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ १ ॥

४। व्युद्ग्राही मूढपुरुषकी कथा.

एक समय नंदुरद्वारा नामक नगरीमें दुर्द्धर नामका एक राजा था. उसके जन्मका अन्धा जात्यन्ध नामका एक पुत्र हुवा ॥ २ ॥ सो बडा होने पर वह प्रतिदिन याचकोंको अपने हार, कंकण, केयूर कुंडलादि आभूषण दान कर दिया करता था ॥ ३ ॥ इसप्रकार कुमारके अलौकिक दानको देखकर राजाके मन्त्रीने राजासे कहा कि, हे प्रभो ! कुमरसाहबने तो समस्त खजाना दान देकर खाली कर दिया ॥ तब राजाने कहा कि हे सत्पुरुष ! यदि इसको आभूषण नहिं दिये जांयेगे तो यह सर्वथा भोजनका त्याग कर देगा.

तब मैं क्या करूंगा ? ॥८॥ मन्त्रीने कहा कि " मैं इसका कुछ भी उपाय करूंगा " राजाने कहा कि अवश्य कोई उपाय कर ! मैं मनाही नहिं करता ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् मंत्रीने लोहेके आभरण और याचकोंको मारनेके लिये एक लोहेका दण्ड लाकर राजकुमारको दिया और कहा कि, "हे तात ! ये गहने पण्डितोंकर पूजने लायक कुलक्रमसे आये हुए हैं, सो इनको पहर लो. ये गहने किसीको भी नहिं देना. यदि दोगे तो तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा ॥ जो कोई इनको लोहमयी बतावे, उसीके माथेमें इस दंडकी मार देना. किसी प्रकारकी दया व करुणा कुछ भी नहिं करना ॥ ९ ॥ इसप्रकार मंत्रीके कहे हुए वचनोंको कुमारने भलेप्रकार स्वीकार किया. इस जगतमें ऐसा कौन है ? जो चतुरपुरुषोंके कहे हुए वचनोंको नहिं माने ॥ १० ॥ तत्पश्चात् वह राजकुमार रोमांचित हो प्रसन्नचित्तसे लोहेके दंडको ग्रहण कर बैठ गया ॥ ११ ॥ उसके पास आकर जो कोई कहता कि ये तो लोहमयी गहने हैं, तब वह उसीवक्त उसके माथेमें लोहदंडकी मार देता सो ठीक ही है जिसकी व्युद्ग्राही मति होगई, वह नीच सुंदर (अच्छा) कार्य कहांसे करैगा ? ॥१२॥ जो पुरुष अपने इष्टजनके कहे हुये समस्त वचनोंको अच्छा और अन्यके कहे हुये समस्त वचनोंको बुरा मानता है, उस अधमको कौन समझावे ॥१३॥ जो पुरुष जात्यन्धके समान परके वचनोंको नहिं विचारता

उसीको पंडितोंने अपने ही आग्रहमें आसक्तबुद्धि व्युद्ग्राही कहा है ॥१४॥ मनोवेगने कहा कि हे ब्राह्मणो! कदाचित् सुमेरु पर्वत तो हाथकी चोटसे तोडा जा सक्ता है, परन्तु व्युद्ग्राही पुरुष वचनद्वारा किसी प्रकार भी नहि समझाया जा सक्ता ॥ जिसप्रकार जात्यन्धने सुवर्णमयी आभूषणोंको छोड लोहेके आभूषण पहरे, उसीप्रकार अज्ञानरूपी अंधकारसे अन्धे पुरुष उत्तम वस्तुको छोडकर निकृष्टको ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ जो मूढ सदाकाल असुंदरको सुन्दर मानता है, उसके आगे बुद्धिमान पुरुष सुभाषित (सुंदर) वचन कदापि नहि कहते ॥ १७ ॥ यह समस्त लोक कामार्यी पुरुषोंकर ठगा जाता है. इस कारण शुद्धबुद्धि सत्पुरुषोंको यह बात सदैव विचारते रहना चाहिये ॥ १८ ॥ मनोवेगने कहा कि हे ब्राह्मणो! मैंने व्युद्ग्राही (हठग्राही) का वर्णन तो किया. अब पित्तदूषित मूढकी कथा कहता हूं, सो सावधानचित्त होकर सुनो ॥ १९ ॥

५। पित्तदूषितमूढपुरुषकी कथा.

कोई एक पुरुष प्रज्वलित अग्निकी समान तीव्र पित्तज्वरके वेगसे विह्वल-शरीर हो गया ॥ २० ॥ उसको अमृतके समान पवित्र, पुष्टि तुष्टिका देनेवाला मिश्री मिला हुवा दुग्ध दिया गया सो ॥ २१ ॥ वह अधम उसको कडुवे नीमके समान मानता हुवा. सो ठीक ही है. क्योंकि प्रकाशमान

सूर्यके प्रकाशको उल्लू तो अंधकार ही मानता है ॥ २२ ॥ इसीप्रकार मिथ्या ज्ञानरूपी महातीव्र ज्वरकर व्याकुल है आत्मा जिसकी ऐसा, जो कोई मनुष्य युक्त अयुक्तको न विचारनेवाला हो, उसको शांतिदायक जन्ममृत्यु जराके नाश करनेवाले अत्यंत दुर्लभ अमृतकी समान वस्तुका स्वरूप कहा जावे तो वह उस वस्तुस्वरूपको जन्ममृत्युजराका करनेवाले सुलभ कालकूटकी समान मानता है ॥२३॥ २४ ॥ २५ ॥ इस कारण जो पुरुष सदैव प्रशस्तको भी अप्रशस्त देखता है, वही अवज्ञासे व्याकुलचित्त पित्तदूषितमूढ पुरुष कहा जाता है ॥ २६ ॥ इसीप्रकार जो ज्ञानरहित पुरुष न्यायको अन्याय माने तो तत्त्वविचार करनेवाले पंडितजनोंको चाहिये कि उसको कुछ भी उपदेश नहिं करें ॥ २७ ॥ इसप्रकार मैंने विपरीत आशयवाले पित्तदूषितमूढपुरुषको प्रगट किया. अब आपको आम्रमूढपुरुषकी कथा कहता हूं सो सावधानतापूर्वक सुनें ॥ २८ ॥

६ । आम्रमूढपुरुषकी कथा ।

स्वर्गमें देवोंकर पूजित सुन्दर अप्सराओंकर रमणीक मनोहर मंदिरवाली अमरावतीनगरीकी समान, अंगदेशमें चम्पावती नामा एक नगरी है ॥ २९ ॥ उस नगरीमें स्वर्गमें देवोंकर सेवनीय इन्द्रकी समान, नम्रीभूतमुकुटवाले राजाओंकर सेवनीय ' नृपशेखर ' नामका राजा राज्य क-

रता था ॥ ३० ॥ उस राजाके पास उसके प्रिय मित्र वं-
गदेशीय राजाने समस्तरोग और जराको नष्टकरनेवाला, सा-
धारण मनुष्योंको अनेक प्रकारकी सेवा करनेपर भी पूज-
नीय रत्नत्रयकी समान है दुर्लभ प्राप्ति जिसकी, मनोहर
स्त्रीके यौवनकी समान सुखकारी. सुन्दर रूप रस गन्ध और
स्पर्शके द्वारा आनंदित किया है मनुष्योंके हृदयको जिसने,
तथा अपनी सौरभद्वारा आकर्षण किया है भ्रमरोंका समूह
जिसने ऐसा एक आम्रफल भेजा ॥ ३१-३२ ॥ उसको
देखते ही वह राजा अतिशय हर्षित होता हुवा, सो ठीक
ही है. रमणीय पदार्थको देखनेसे किसको हर्ष नहिं होता ?
॥ ३४ ॥ समस्तरोगोंके नाश करनेवाले इस एक ही आ-
म्रका समस्त लोगोंमें विभाग नहिं हो सक्ता. इस कारण
जिससे यह बहुत हो जाय ऐसा उपाय करूंगा, इसप्रकार
विचार कर राजाने वह आम्रफल एक चतुर मालीको देकर
कहा कि हे भद्र ! जिसप्रकार यह आम्र अनेकफलोंका दे-
नेवाला हो जावे, ऐसा उपाय कर और किसी उत्तम बागमें
लेजाकर इसको बोय दे ॥ ३५-३७ ॥ वृक्षारोपणविद्यामें
प्रवीण वह माली नमस्कार करके "ऐसा ही करूंगा"
इस प्रकार कहके उस आम्रफलको वनमें बोकर (लगाकर)
बढा करने लगा ॥ ३८ ॥ सो वह वृक्ष सज्जनपुरुषकी स-
मान शीघ्र ही सघन सुन्दर छाया और बडे २ अनेक
फलोंसे सबको आल्हादित करनेवाला बहुत बडा हो गया

॥ ३९ ॥ दैवयोगसे किसी पक्षीके द्वारा लेजाते हुये सर्पकी वसा (विषरूपचर्बी) उसी आमके एक फल पर गिर पड़ी ॥ ४० ॥ उस निन्दनीय वसाके संयोगसे वह आम्रफल पककर बुढापेसे नेत्रोंको आनन्द कारी मनोहर यौवनके समान पीला हो गया ॥ ४१ ॥ अतिशय बुरे अन्यायके करनेसे पूजनीय बडे कुलके अधःपतनके समान वह आम्रफल उस विषके आतापसे तापित होकर शीघ्र ही पृथिवीपर गिर पडा ॥ ४२ ॥ तुष्टचित्त वनपालने समस्त इन्द्रियोंको हर्षित करनेवाले उस फलको लाकर क्षितिपाल (राजा) की भेट किया ॥ ४३ ॥ क्षितिपालने विकलतापूर्वक उस प्राणहारी विषकर पकेहुये मनोहर फलको देखकर अपने युवराज पुत्रको दिया. राजपुत्रने 'प्रसादं' ऐसा कहकर ग्रहण किया और घोर कालकूट विषकी समान उसको उस वक्त खा लिया ॥ ४४-४५ ॥ सो वह राजपुत्र उस फलके खाते ही प्राणरहित हो गया. सो उचित ही है की हुई दुष्टसेवा किसके जीवन (प्राणों) को नहिं हरती ? ॥ ४६ ॥ राजाने अपने पुत्रको मरा देख क्रोधाग्निसे संतप्त होकर उद्यानकी शोभाकरनेवाले उस आम्रवृक्षको उसी वक्त कटवा डाला ॥ ४७ ॥ खांसी, शोष, (यक्ष्मारोग) जरा, कुष्ठ, वमन, शूल, (दर्द) क्षय श्वास आदि दुःसाध्य रोगोंसे पीडित जीवनसे विरक्त पुरुषोंने सुना कि राजाने विषमयी आम्रवृक्षको कटवा दिया है, तो उन सबने मरनेकी इच्छासे

उसके कचे फल ला ला कर खाने शुरू किये, परन्तु उनके खाते ही वे समस्त रोगी शीघ्र ही रोगरहित हो कामदेवकी समान सुंदर हो गये ॥ ४८-५० ॥ राजाने यह वार्त्ता सुनी तो विस्मित होकर उन रोगियोंको बुलाकर प्रत्यक्ष देखके परम अनिवार्य पश्चात्ताप किया ॥ ५१ ॥ हाय ! विचित्र पत्रोंकर पृथिवी मंडलका भूषण समस्त प्रकार वांछितका देनेवाला, चक्रवर्तीकी समान है उदय जिसका ऐसा ऊंचा आम्रवृक्ष विचाररहित क्रोधसे अन्धचित्त होकर मैंने जड़-सहित क्यों कटवा दिया ? ॥ ५२-५३ ॥ हाय ! मुझ दुर्बुद्धिने यह फल विना विचारे ही युवराजको क्यों दिया ? यदि वह दिया भी तो मैंने सर्वरोगहारी उस वृक्षको क्यों कटवा दिया ? ॥ ५४ ॥ इसप्रकार दुर्निवार वज्राग्निकी समान पश्चात्तापसे संतप्त होकर वह राजा मनही मनमें निरन्तर जलने लगा ॥ ५५ ॥ जो पुरुष पूर्वापर परीक्षा (विचार) न करके कार्य्योंको करता है, वह आम्रनाशक राजाकी समान महान् पश्चात्तापको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो कोई दुराशय विना विचारे ही किसी कार्यको करता है उसके समस्त वांछित कार्य्य शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥५७॥ क्रोधकर व्याप्त है चित्त जिसका ऐसे निर्विचारी पुरुषको दोनों भवमें समस्त प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ इसप्रकार निर्विवेकीपणेके दोषोंको जानकर हृदयमें उभयलोकसंबंधी सुख देनेवाला विवेक रखना चाहिये ॥ ५९ ॥

जो विद्वान अपना हित चाहते हैं, उनको चाहिये कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव युक्त अयुक्तमें तत्पर होकर सर्वदा विचारके कार्य किया करें ॥६०॥ मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यको तो हिताहितका विचार होता है, और पशु-को नहीं होता. इसकारण जो पुरुष विचाररहित हैं, वे प-शुके तुल्य हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार पूर्वापर विचार रहित आत्मघाती मूर्खको मैने सूचित किया. अब क्षीरमूर्खकी कथा कही जाती है, सो सावधान होकर सुनो ॥ ६२ ॥

७ । क्षीरमूर्खकी कथा.

प्रसिद्ध छोहार नामक देशमें सामुद्रिक व्यापारका ज्ञाता जलयात्रा करनेमें चतुर सागरदत्त नामका एक वणिक था ॥ ६३ ॥ सो वह वणिक एक समय जहाजपर चढकर नक्र (नाके) मगर ग्रहादिसे भरे हुये समुद्रसे पार होकर व्यापारार्थ चौल द्वीपमें पहुंचा ॥ ६४ ॥ उस वणिकने घरसे चलते समय जिनेश्वरकी वाणीके समान सुखदेनेमें चतुर दुग्ध देती हुई एक गौ भी अपने साथ ले ली थी ॥६५॥ सो उस व्यवहार चतुर वणिकने चौलद्वीपमें पहुंचते ही कुछ भेट लेकर द्वीपके पति तोमर बादशाहके दर्शन किये ॥ ६६ ॥ दूसरे दिन उस वणिकने शरीरमें कान्ति विस्तारनेवाली अमृतकी समान अतिशय स्वादिष्ट (पायस) खीर लेजा कर बादशाहकी भेट करी ॥ ६७ ॥ क्योंकि उस देशमें

गौ भैंसें नहिं होती थीं और न गौरस ही होता था. अन्य एक दिन उस वणिकने अमृतके समान दुर्लभ शालिधान्य के उत्तम चावल (भात) बनाकर सुंदर दही सहित भेट करके दर्शनकिये ॥ ६८ ॥ इसप्रकार अपूर्व उज्ज्वल मिष्ट पदार्थको भक्षण कर प्रसन्नचित्त हो, तोमर बादशाहने उस वणिकको पूछा कि, ॥ ६९ ॥ हे वणिक्पते ! तुमको ऐसे दिव्य भोजन कहांसे प्राप्त होते हैं ? तब वणिकने कहा कि हजूर मेरे पास एक कुलदेवी है, सो वह ऐसा आहार देती है ॥ ७० ॥ तत्पश्चात् म्लेच्छनाथ तोमर बादशाहने वणिकपुत्रको कहा कि हे भद्र ! वह अपनी कुलदेवता हमको दे दो ॥ ७१ ॥ यह बात सुनकर वणिकने कहा कि, हे द्वीपपते ! यदि आप मुझे मुंहमागा धन देवें तो मैं कुलदेवता आपको दे सक्ता हूं ॥ ७२ ॥ तब द्वीपपति तोमरबादशाहने कहा कि, हे भद्र ! बेशक मनचाहा द्रव्य ले जावो, और कुलदेवता हमको दे जावो तत्पश्चात् वणिकने उस बादशाहसे मुंहमांगे रुपये लेकर उस गौको दे दिया और जहाजकेद्वारा समुद्रपार हो चला आया ॥ ७४ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल ही तोमर बादशाहने उस गौके सन्मुख एक पात्र (बर्तन) रखकर कहा कि हे कुलदेवते ! जो दिव्य आहार उस वणिकको देती थी वह मुझे भी दे. परन्तु ॥ ७५ ॥ मूर्ख कामीके पास चतुर विलासिनी नायिकाके समान वह गौ चुपचाप ही खडी रही ॥ ७६ ॥ जब उस गौको चुप-

चाप खडे देखा तो बादशाहने फिर कहा कि—हे कुलदेवते ! प्रसन्न होकर मुझे दिव्य भोजन दे. भक्तकी इच्छा पूरी कर ॥ ७७ ॥ फिर भी उसको चुपचाप खडी देखकर बादशाहने विचारा कि, आज तो यह अपने सेठको स्मरण करती है, सो कल प्रातःकाल ही देगी. फिर उसने कहा कि अच्छा आज हे देवी ! तू निराकुलतासे स्वस्थ हो तिष्ठ ॥ ७८ ॥ दूसरे दिन भी उस गौके सामने एक बड़ासा वर्तन रखकर बादशाहने कहा कि हे देवी ! आज तो तू स्वस्थ हो गई, अब मुझे इच्छित भोजन दे ॥ ७९ ॥ परन्तु गौ तो फिर भी चुप खडी रही. वह विचारी क्या तो दे और क्या बोले ? इसप्रकार उसको चुप देखकर उस बादशाहने क्रुद्ध होकर नोकरोंके द्वारा उस गौको अपने द्वीपसे बाहर निकलवा दिया ॥ ८० ॥ देखो इस बादशाहकी कैसी मूर्खता है जो इतनी बात भी नहिं समझता कि याचनामात्र करनेसे किसी गौने कभी किसीको दुग्ध दिया है ? ॥ ८१ ॥ दूध देती हुई उस श्रेष्ठ गौको म्लेच्छ बादशाहने वृथा ही निकाल दिया. सो नीति ही है कि, मूर्खके हाथमें गया हुवा महा रत्न भी वृथा जाता है ॥ ८२ ॥ यद्यपि पाषाणमें सुवर्ण मौजूद है परन्तु उसको पाषाणसे निकालनेकी क्रिया जाने विना उसकी प्राप्ति नहिं हो सकी, उसीप्रकार गौ भी विधिपूर्वक लिये विना अपने पास रहता हुवा दूध कदापि नहिं दे सकी ॥ ॥ ८३ ॥ यह कार्य किसप्रकार सिद्ध होगा. इसमें हानि

कैसे होगी, इसकी वृद्धि किस प्रकार होगी, इसप्रकार जो पुरुष प्रतिसमय नहिं विचारता, वह दोनों लोकमें दुःख ही भोगता है ॥ ८४ ॥ जो नीच पुरुष गर्वित आशय होकर अपने मनमें सारभूत विचारको स्थान नहिं देता, वह उक्त बादशाहकी समान मानमर्दित हो, अपने कार्य्यको नष्ट करता है और वह बुद्धिमानोंके द्वारा त्यागने योग्य है ॥ ८५ ॥ उस नष्टबुद्धि म्लेच्छराजाने उस गौको असह्य पीडा दी, सो ठीक ही है. मूर्खकी संगति करनेवाला प्रगटतया अनिवार्य्य समस्त दोषोंको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ इस संसारमें मूर्खताकी समान तो कोई अंधकार नहिं है और ज्ञानके समान कोई प्रकाश नहिं है, इसीप्रकार जन्ममरणके समान कोई शत्रु नहीं और मोक्षके समान कोई मित्र (बंधु) नहिं है ॥ ८७ ॥ कदाचित् सूर्यके रहते अन्धकार हो जाय अथवा सूर्यमें शीतलता और चन्द्रमामें उष्णता हो जाय परन्तु मूर्खमें कदापि विचारशक्ति नहिं होती ॥ ८८ ॥ सिंहादि हिंस्रजन्तुओंसे परिपूर्ण वनमें फिरना, सर्पराजकी सेवा करना, तथा वज्राग्निमें जल जाना श्रेष्ठ है, परन्तु मूर्ख जन तो कभी क्षणभर भी सेवाकरने योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ जिसप्रकार अन्धेके आगे नृत्य करना बधिर (बहरे) के आगे संगीत करना, कन्धेका शोच करना, मुरदेको भोजन देना, नपुंसकके स्त्रीका होना वृथा है, इसीप्रकार मूर्खको दिया हुवा सुखकारी रत्न भी वृथा जाता है ॥ ९० ॥ यह

गौ मुझे दूध किसप्रकार देगी, इसप्रकार जिस म्लेच्छबा-दशाहने न पूछकर बहुतसा धन देके गौको ले लिया, सो उस म्लेच्छाधिपतिके समान दूसरा कौन मूर्ख है? ॥ ९१ ॥ जो पुरुष उस वस्तुके ज्ञाताको तो पूछे नहीं, और किसी वस्तुको धन देकर मोल लेवे तो वह मूढ भयावने वनमें मूल्यग्रहणकी इच्छासे चोरोंको रत्न बेचता है ॥ ९२ ॥ जो विनीत सत्पुरुष उभय लोकमें सुखकी इच्छा रखते हैं, उनको चाहिये कि मानको छोड अज्ञात कार्यको पूछकर विधिसे साधन करें ॥ ९३ ॥ जो दुर्बुद्धि राग द्वेष मोह काम क्रोध मान लोभ और मूढताके वशीभूत हो हित अहितका विचार नहिं करते हैं ॥ ९४ ॥ जो दुर्विदग्ध (मिथ्याज्ञानसे ही अपनेको पंडित समझनेवाला) पुरुष दुर्भेद्य गर्वरूपी पहाडके शिखरपर चढकर किसी दूसरेको नही पूछता, वह द्वीपाधिपति तोमर बादशाहके समान हस्तगत हुये पयरूपी पवित्र रत्न (उत्तम पदार्थ) को नष्ट करता है ॥ ९५ ॥ जो विनयवान पुरुष सदैव पूछकर अपने मनमें भले प्रकार विचारकर, चिंतवनकर युक्तायुक्त कार्योंको करते हैं, वे विस्तृतयशवाले, मनुष्य और देव गतिके सुखपनेको पायकर केवल ज्ञानके धारक हो आपदारहित निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रंथकी बालबोधिनी भाषामें सातवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ७ ॥

अथानन्तर प्राप्त हुये वीरको अज्ञानी म्लेच्छ राजाने जिस प्रकार नष्ट किया सो तो तुमसे कहा; अब अगुरु प्राप्त होकर नष्ट किया उसकी कथा कही जाती है ॥ १ ॥

८ अगुरुमूढकी कथा ।

मगधदेशमें वैरीरूपी मदोन्मत्त हस्तीके कुम्भको भेदन-करनेकेलिये केशरी (सिंह) के समान ' गजरथ ' नामका एक राजा था ॥ २ ॥ वह राजा अनेक प्रकारकी क्रीडा करनेवाला था, सो एक समय क्रीडाकेलिये वनमें गया तो सेनाको छोडकर मंत्रीसहित बहुत दूर निकल गया ॥ ३ ॥ वहां वनमें पहिलेसे आगे खडे हुए एक नोकरको देखकर राजाने पूछा कि यह कौन है और किसका नोकर व किसका पुत्र है ? सो मुझे कहो ॥ ४ ॥ तब मंत्रीने कहा कि हे राजन ! यह आपके हरि नामक महत्तरका पुत्र हालिक नामका आपका तावेदार सेवक है ॥ ५ ॥ श्रीमानके चरणाम्बुजकी नित्य क्लेशकारक सेवा करते २ आज इसको बारह वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ यह बात सुनकर राजा ने मंत्रीसे कहा कि हे भद्र ! तूने आज तक इसके क्लेशका कारण मुझे नहिं कहा सो बहुत बुरा किया ॥ ७ ॥ प्यादोंको क्लेश है, कौन अच्छी सेवा करता है, कौन नहिं करता इत्यादि समस्त बातें मंत्रीको जानकर राजाके प्रति निवेदन करना चाहिये ॥ ८ ॥ स्वाध्याय करते रहना सा-धुपुरुषोंका कार्य है, गृहकृत्य करना स्त्रियोंका और राज्य-

कार्य्य करना मंत्रियोंका काम है. सो इन तीनों बातोंको निरन्तर विचारते रहना चाहिये ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् राजाने प्रसन्न चित्त होकर हालीसे कहा कि संकराट नामक उत्तम मठ है सो तुमको दिया उसे स्वीकार करो ॥१०॥ हे भद्र ! यह मठ कल्पवृक्षके समान मनवांछित फलके देनेवाले अन्य पांचसै गांवोंकर सहित बहुत अच्छा है, सो तुम ग्रहण करो ॥ ११ ॥ यह वचन सुन कर हालीने राजासे कहा कि हे देव ! मैं तो अकेला हूं, बहुतसे गांव लेकर क्या करूंगा ? ॥ १२ ॥ ये तो उन्हीके ग्रहणकरनेके योग्य हैं कि जिनके हजारों पयादे और प्रबन्ध करनेवाले सेवक हों ॥ १३ ॥ तब राजाने कहा कि हे भद्र ! मनोहर गांवोंके विद्यमान रहते अपने आप प्रतिपालना करनेवाले सेवक हो जांयगे. क्योंकि ॥ १४ ॥ ग्रामोंसे धनकी प्राप्ति होती है, धनसे नोकर चाकरोंके समूह हो जाते हैं, और नोकर चाकर राजाकी सेवा करते हैं, द्रव्यसे उत्तम और कोई वस्तु नहिं है ॥१५॥ द्रव्यसे ही मनुष्य कुलीन पंडित मान्य शूर न्यायविशारद विदग्ध (चतुर रसज्ञ) धर्मात्मा और प्रिय होता है १६ योगी वाग्मी दक्ष वृद्ध (दाना) शास्त्रपरायण ये सब चाटुकारक (खुशामदी) होकर धनाढ्योंकी सेवा करते हैं ॥ ॥ १७ ॥ गल गये हैं हाथ पांव जिसके ऐसा कोढी होय और धनवान् हो तो उसको नवयौवना स्त्री भी गाढालिंगनकरके शयन करती है ॥१८॥ जिसके घरमें द्रव्य है उ-

सके सभी जने तावेदार मित्रकर और वशीभूत हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जिसके घरमें संपदा है, वह यदि मूर्ख हो तो भी उसकी बडे २ पंडितजन प्रशंसा करते हैं, यदि वह भीरु (कायर) हो तो भी उसकी बडे २ योद्धा सेवा करने लग जाते हैं, यदि वह पापी हो तो भी उसकी धर्मात्मा पुरुष स्तुति करते हैं ॥ २० ॥ बहुत कहां तक कहा जावे, चक्री नारायण बलभद्र (जिनकी बराबर और कोई नहिं भया ऐसे) वगैरह जो बडे पुरुष हो गये, वे सब ग्रामोंके ही प्रसादसे गौरवको प्राप्त हुये हैं ॥ २१ ॥ ये सब बातें सुननेके पश्चात् हालीने कहा कि महाराज ! मुझे तो कोई ऐसा क्षेत्र (खेत) देवें कि जिसमें हमेशह खेती हो सके व जिसमें वृक्ष कूप (गडे) वगैरह नहीं हों ॥ २२ ॥ यह सुनकर राजाने विचार किया कि यह अपने हित अहितको नहिं समझता, सो ठीक ही है, गांवके गवारोंमें निर्मल बुद्धि कहांसे होय ? ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् राजाने मंत्रीको आज्ञा दी कि, हे भद्र ! इसको अगुरु चन्दनका क्षेत्र दे दो, जिससे यह मरणपर्यन्त विस्तीर्ण काष्ठको वेच कर सुखसे रहै ॥ २४ ॥ तब मन्त्रीने जाकर उस हालीको कल्पवृक्षोंके समान मनवांछित वस्तुके देनेवाले अगुरुवृक्षोंसे भरा हुवा एक क्षेत्र दिखाकर कहा कि महाराजने तुझे यह खेत दिया है ॥ २५ ॥ उस खेतको देखकर हालीने अपने मन ही मन विचार किया कि, राजा बडा कृपण है, जो वृक्ष

रहित खेत मांगने पर भी अनेक वृक्षोंसे भरा हुवा खेत दिया ॥ २६ ॥ यह खेत अंजनके समान श्याम और विस्तीर्ण है, परन्तु मैंने ऐसा नहिं मांगा था. मैंने तो उपद्रव रहित साफ मांगा था. राजाने और ही दिया. खैर ! अब यही ले लेना चाहिये, क्योंकि यदि राजा यह भी नहिं देता तो मैं क्या करता ? इसको ही मैं ठीक कर लूंगा ॥ २७-२८ ॥ इसप्रकार विचारकर उस हालीने 'प्रसाद' कह कर वह क्षेत्र स्वीकार किया और अपने घर आ तीक्ष्ण कुठार लेकर उस कुबुद्धिने अगुरुके वृक्ष काटने शुरूकर दिये ॥ २९ ॥ सो आकृष्ट (खिचे) हैं भ्रमरोंके समूह जिससे ऐसी सौरभसे दशों दिशाओंको आमोदित करनेवाले, सज्जन पुरुषके समान सेवा करने योग्य ऊंचे २ सरल, सुखदायक, बडे कष्टसे मिलनेवाले, द्रव्यके देनेवाले, वे अगुरु वृक्ष सबके सब काट कर उस हालीने जला दिये. सो ठीक ही है, स्वेच्छाचारी निर्विवेकी गंवार कोई श्रेष्ठ कार्य नहिं करते ॥ ३०—३१ ॥ इसप्रकार बडे परिश्रमसे उन वृक्षोंको काट जलाकर शीघ्र ही अन्यायसे घरके समान वह खेत बोने लायक हथेलीकी समान निर्मल करता हुवा और हर्षके साथ राजाको भी दिखाया और कहा कि देखिये मैंने कैसा उमदा यह खेत बनाया है. सो ठीक ही है, घमंडी नीच पुरुष अपनी मूर्खतासे ही प्रसन्न रहते हैं ॥ ३२—३३ ॥ राजाने खेतको देखकर कहा कि,

ऐसे खेतमें तूंने क्या २ बोया है. तब हालीने कहा कि हु-
जूर मैंने महाफलके देनेवाले कोदों बोये हैं ॥ ३४ ॥ इस-
प्रकार उसकी मूर्खता देखकर राजाने कहा कि, अरे ! उन
जलाये हुये वृक्षोंमेंसे कुछ रहा भी है कि नहीं ? ॥ ३५ ॥
तब उसने अगुरुचन्दनका एक हाथभरका टुकडा लाकर
दिखाया. और बोला कि हुजूर उन वृक्षोंको जलाते समय
यह हाथभरका एक टुकडा तो रह गया है ॥ ३६ ॥ तब
राजाने कहा कि तू इस टुकडेको बाजारमें ले जाकर शीघ्र
ही बेचकर जा. हालीने कहा कि हुजूर ! इतने काठका क्या
मूल्य मिलेगा ? ॥ ३७ ॥ राजाने हंसकर उस दुर्बुद्धि हा-
लीको कहा कि वणियां जितना मूल्य दे, उतने ही लेलेना
॥ ३८ ॥ जब उस हालीने वह हाथभरका अगर चन्दन
बाजारमें लेजाकर बेचा तो बणियेने उसको पांच दीनार
दिये ॥ ३९ ॥ तब वह हाली इस बातको विचारकर वि-
षादरूपी अग्निसे तापित हो पश्चात्ताप करने लगा. सो ठीक
ही है, जो अज्ञानतासे कार्य करनेवाले हैं, उनमें ऐसा कौन
है कि जिसको पीछेंसे पश्चात्ताप न हो ? ॥ ४० ॥ जो इस
जरासे टुकडेका इतना मूल्य मिल गया तो उन सब वृक्षों-
का कितना मूल्य मिलता, उसकी तो गिनती ही नहीं ॥
राजाने तो मुझे निधानके समान क्षेत्र दिया था, परन्तु
मुझ अज्ञानी पापीने व्यर्थ ही नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥
यदि मैं उन वृक्षोंकी यत्नसे रक्षा करता तो मरण पर्यन्त

सुखका साधनभूत द्रव्य हो जाता ॥ ४३ ॥ इसप्रकार वह हाली कामसे पीडित विरहीके समान अनिवार्य्य दुःसह पश्चात्तापसे बहुत काल पर्य्यन्त दुःखी हुवा ॥ ४४ ॥ जो अधम बडे यत्नसे प्राप्त किये द्रव्यको नष्ट कर देता है, वह हालीके समान सदैव दुर्निवार पश्चात्ताप करता है ॥ जो नष्ट बुद्धि वस्तुमें सारासार नहिं जानता, वह पाये हुए दुष्प्राप्य रत्नको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥ जो कुधी वस्तुके हेय उपादेयको नहिं विचारता, वह आककी जड़के लिये सोनेके हलसे पृथिवीको कर्षण करता है ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगोंमें उस हालीके समान सारासारका विचार न करनेवाला हो तो पूछनेपर भी मैं कहते हुए डरता हूं ॥ ४९ ॥ अलभ्य अगर चन्दन वृक्षको नष्ट करनेवाले निर्विचार मूर्खकी कथा तो मैंने कही, अब तुमको चन्दनत्यागी मूर्खकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ ४९ ॥

चन्दनत्यागी मूर्खकी कथा.

भोगभूमिके समान सुखके आधारभूत मध्य देशमें शांतमन नामका मथुरा नगरीका राजा था ॥ ५० ॥ सो एक समय वह राजा ग्रीष्मऋतुके सूर्यसे हाथीके समान दुर्निवार पित्तज्वरसे अतिशय पीडित और विह्वल हो गया ॥ सूर्यके आतापसे थोडे जलमें मच्छीकी समान उस पित्तज्वरके तापसे वह राजा शय्यामें तलमलाता था ॥ ५२ ॥ उस राजाका बडे २ प्राभाविक वैद्योंद्वारा उपचार होते भी

यह दुःसाध्य आताप इन्धनसे अग्निकी समान उत्तरोत्तर ब-ढने लगा ॥ ५३ ॥ अष्टप्रकारकी चिकित्सा जानते हुए भी वे वैद्य दुर्जनकी साधनामें सज्जनोंकी समान उस ताप-को शमन करनेमें समर्थ नहिं हुए ॥ ५४ ॥ जब मन्त्रीनें देखा कि राजाके शरीरमें ताप बढता ही जाता है, तो उ-सनें मथुरा नगरमें चारों तरफ घोषणा करी (ढिंढोरा पीटा) कि जो कोई राजाके शरीरका दाह नष्ट कर देगा, उसको मान प्रतिष्ठाके साथ १०० गांव दिये जायेंगे ॥ ५५ —५६ ॥ इसके सिवाय खास राजाके पहिरनेका उत्कृष्ट कंठा, अत्यंत दुर्लभ कटिमेखला और एक पोपाकका जोडा भी दिया जायगा ॥ ५७ ॥ यह घोषणा सुनकर एक व-णिक गोशीर्ष चन्दनकी लकडी लेनेके लिये घरसे बाहर हुआ, सो दैवयोगसे एक धोबीके हाथमें गोसीर चंदनका मूठा देखा ॥ ५८ ॥ उस वणिकने चारों तरफ उडते हुए भ्रमरके समूहसे वास्तवमें गोशीरचन्दनका समझ धोबीसे पूछा कि, हे भद्र ! यह नीमकी लकडीका मूठा तू कहांसे लाया ? ॥ ५९ ॥ धोबीनें कहा कि मुझे नदीमें बहता हुवा मिला है. तब वणिकने कहा कि, इसके बदलेमें बहुत-सा काष्ठ लेकर यह हमको दे दो ॥ ६० ॥ उस निर्विवे-की धोबीने कहा कि हे साधु पुरुष ! ले लो. इसमें मेरी क्या हानि है ? इसप्रकार कहकर उस चन्दनके मूठेके बदलेमें बहुतसा काष्ठ समूह लेकर वह मूठा दे दिया ॥ ६१ ॥

पाकर घोर नरकमें जाता है ॥ ८९ ॥ तत्पश्चात् नगर निवासियोंने कहा कि हे भद्र पुरुषो! तुम उसी साधुके पास शीघ्र ही जाकर अपने मूर्खपणेको शुद्ध करो सो उचित ही है. सत्पुरुष असाध्यकार्यमें कदापि प्रयत्न नहिं करते ॥ हे ब्राह्मणो! इस प्रकार सारासार विचारके व्यवहार रहित चारप्रकारके मूर्ख मैंने प्रगट किये. यदि तुमलोगोंमें कोई ऐसा मनुष्य होय तो मैं तत्त्व (सच्चीबात) कहते डरता हूं ॥ ९० ॥ लज्जा करनेवाली वेश्या, अतिशय दान करनेवाला धनाढ्य, गर्वकरता नौकर, भोग विलास करता ब्रह्मचारी, पवित्रता करनेवाला भांड, शीलका नाश करनेवाली स्त्री और लोभी राजा ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ९१ ॥ विवेकरहित पुरुषके किसी कालमें भी कीर्ति कांति लक्ष्मी प्रतिष्ठा धर्म अर्थ काम सुख वगैरह नहिं होते. इसकारण सर्वप्रकारसे श्रेष्ठ प्रत्येक कार्यके करते समय सारासारका विचार रखना चाहिये ॥ ९२ ॥ जो पुरुष विनाकारण ही वृथा अभिमान रखता है, उस लोकनिंद्य नष्टबुद्धि पुरुषके जीवनके साथ साथ इस लोक परलोकसम्बन्धी समस्तकार्य भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देश कालानुसार सारासार विचार कर समस्त श्रेष्ठ कार्य करता है, वही इस लोकमें विद्वानोंकर पूजनीय. मनोवांछित सारभूत सुखको प्राप्त होकर मोक्षको जाता है ॥ ९४ ॥ इस जगतमें बहुधा अहित करने पर हितको करते हैं और हित करनेपर अहित करते

जो अन्धकारसे अंधा होता है वह नेत्रोंसे तो नहिं देखता, किन्तु चित्तसे तो तत्वको (वस्तुके स्वरूपको) देखता है. परन्तु जो अज्ञानकर शून्य हृदय हैं. वे न तो चित्तसे देखते और न नेत्रोंसे ही देखते हैं ॥ ७१ ॥ सो हे विप्रो ! उस धोबीकी समान बदला करनेवाला कोई मनुष्य इस वादशाला में होय तो मैं पूछने पर भी सच्ची बात कहते हुये डरता हूं ॥ ७२ ॥ इसप्रकार मैंने चंदनत्यागी मूर्खको कहा. अब सर्व प्रकार निंदाके भाजन ४ मूर्खोंकी कथा कहता हूं सो सुनो—

१० चारमूर्खोंकी कथा ।

एक समय चारमूर्ख मिलकर कहीं जा रहे थे सो मार्गमें कहीं पर जिनेश्वरके समान निष्पाप मोक्षाभिलाषी मुनिमहाराजको देखा ॥ ७४ ॥ कैसे हैं वे मुनिराज वीरनाथ होनेपर भी किसी जीवको पीड़ा नहिं देनेवाले हैं, दोनों नयके कहने वाले होकर भी सत्यवादी हैं, चित्तचोर होकर भी चौर्यकर्मसे रहित हैं, निष्काम होकर भी बडे बलवान् हैं ॥ ७५ ॥ ग्रन्थधारी (सिद्धांत शास्त्रके पाठी) होकर भी निर्ग्रन्थ (परिग्रहरहित) हैं, मलिन देहके धारी होकर भी निर्मल (पापरूपी मैलसे रहित) हैं, गुप्तिमान होकर भी निर्बन्ध हैं, विरूप होकर भी मनुष्योंको प्रिय हैं ॥ ७६ ॥ महाव्रती होकर भी अन्धकारादिकको नाश करनेवाले हैं, सर्वसंगरहित होकर भी समितियोंके प्रवर्तक हैं ॥ ७७ ॥ प्राणीमात्रके रक्षक होकर भी धर्ममार्गके चलानेमें चतुर हैं,

सत्यमें लवलीन होकर भी धर्मके बढानेवाले हैं ॥ ७८ ॥ समुद्रकी समान गंभीर, मेरुपर्वतकी समान स्थिर, सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान कांतिके धारक ॥ ७९ ॥ सिंहसमान निर्भय, कल्पवृक्षके समान वांछितके देनेवाले, वायुकी समान निःसंग, आकाशकी समान निर्मल हैं ॥ ८० ॥ जिसप्रकार शीतसे पीडितजन प्रज्वलित अग्निको सेवन करते हैं, उसी प्रकार इस मुनिमहाराजकी सेवा करनेसे समस्त प्राणियोंको पीडित करनेवाले तथा सम्यग्दर्शन चारित्रको नष्ट करनेवाले पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ८१ ॥ और जिसने इन्द्र ब्रह्मा विष्णु महेश आदिको भी अपने बाणोंसे हनकर जीत लिया और वे सैंकडों दुःख भोगते हैं, ऐसे कामको भी जिन्होंने सहजमें ही जीत लिया ॥ ८२ ॥ और " जिस मुनिराजने स्वर्ग लोकको जीतनेवाले कामदेवको ही नष्ट कर दिया सो हमको तो शीघ्र ही मारेगा." इसप्रकार भयभीत होकर मानो, बलवान क्रोधादिक कषायोंने इस महा पराक्रमी मुनिमहाराजकी सेवा नहीं की ॥ ८३ ॥ वे मुनिराज तपकी तो सेवा करते हैं, परन्तु तम कहिये मिथ्यात्वकी नहीं. वे सदा धर्मकथा कहते हैं, परन्तु निन्दनीय विकथा नहिं करते. वे अनेक प्रकारके दोषोंको नष्ट करते हैं, परन्तु गुणोंको कभी नहीं. वे निद्राका त्याग कर देते हैं, परन्तु जिनवाणीका त्याग कभी भी नहिं करते ॥ ८४ ॥ वे मुनिमहाराज समस्त जनोंको धर्मोपदेश करके शीघ्र ही

प्रतिबोधित धर्मात्मा करते हुये और जगतके समस्त चराचरोंको (जीवाजीव पदार्थोंको) जाननेवाले और जिनेन्द्र भगवानकी समान इन्द्रनरेन्द्रोंकर वन्दनीय हैं ॥ ८५ ॥ वे मुनिराज समस्त इंद्रियोंके प्रसारको रोककरके भी समस्त पदार्थोंके समूहको अवलोकन करते हैं, तथा त्रस स्थावर-जीवोंकी रक्षा करनेवाले होकर भी विषयोंको मर्दन करने-वाले हैं ॥ ८६ ॥ गुणोंसे जडे हुये, संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले उनी मुनीश्वरके चरणरूपी कमलोंको वे चारों मूर्ख पृथिवी पर मस्तक रख कर नमस्कार करते हुये ॥ ८७ ॥ निर्दोष है चेष्टा जिनकी ऐसे वे मुनिराज उन चारों मूर्खोंको एकसाथ ही दुःखोंको हरनेवाली पापरूपी पर्वतको उडाने-वाली धर्मवृद्धि [तुमारे धर्मकी वृद्धि होय ऐसा आशीर्वाद] कही ॥ ८८ ॥ तत्पश्चात् वे चारों मूर्ख यहांसे एक योजनके आगे जाकर परस्पर लडाई करने लगे. सो उचितही है, कि मनवांछित फलकी देनेवाली एकता मूर्खोंमें कहां से होय ? ॥ ८९ ॥ एकने तो कहा कि, साधुमहाराजने मुझे आशीर्वाद दिया. दूसरेने कहा कि मुझे दिया. इसप्रकार परस्पर बोलते हुये उन हतबुद्धि मूर्खोंमें बहुत देर तक निरंक कलह होती रही ॥ ९० ॥ तब किसी अन्यपुरुषने कहा कि, हे मूर्खो ! तुम वृथा ही कलह क्यों करते हो ? भले प्रकार निश्चयकरादेनेवाले उन मुनीश्वरको ही जाकर क्यों न पूछलो ? क्योंकि सूर्यके रहते हुये कहीं अन्धकार

नहीं रहता ॥९१॥ यह वचन सुनकर उन सब मूर्खोंने मुनी-न्द्रमहाराजके समीप जाकर पूछा, कि हे मुनिपुंगव ! आपने जो आशीर्वाद दिया था, वह आपके प्रसादसे हम चारोंमेंसे किसको हुवा ? ॥ ९२ ॥ तब मुनिमहाराजने कहा कि, तुम चारोंमेंसे जो अधिक मूर्ख है, उसीको वह आशीर्वाद था। यह वचन सुनकर सब कहने लगे कि "अधिक मूर्ख मैं हूं. अधिक मूर्ख मैं हूं" सो ठीक ही है क्योंकि ऐसा कोई भी मनुष्य नहिं, जो अपना पराभव सह ले ॥ ९३ ॥ तब उन सबका दुस्तर युद्ध सुनकर मुनिमहाराजने कहा कि–हे मूर्खो ! तुम नगरमें जाकर बुद्धिमानोंद्वारा अपनी मूर्खताका न्याय करालो. यहां पर यह कलह मत करो ॥ ९४ ॥ इसप्रकार मुनिमहाराजके वचन सुनकर वे सब मूर्ख लडाई छोड शीघ्र ही "अमितगतयः सन्" कहिये शीघ्रगति और प्रसन्न होकर नगरप्रति जाते हुये. सो ठीक ही है तीन भवनमें पूजनीय मुनिमहाराजके वचनोंको प्रसन्नचित्त होकर जब तिर्यंच भी मानते हैं तो बुद्धिके धारक मनुष्य तो क्यों न मानेंगे ? ॥ ९५ ॥

इति श्री अमितगतिआचार्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें अष्टम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ८ ॥

अथानन्तर वे मूर्ख पत्तन (नगर) में जाकर नगर-निवासियोंके सन्मुख कहते हुए कि. आप हमारा एक वि-चार (न्याय) कर दीजिये ॥ १ ॥ नगरनिवासियोंने कहा कि, हे भद्र ! तुम लोगोंका कैसा विचार है ? तब उन्होंने कहा कि, हमलोगोंमें अधिक मूर्ख कौन है सो विचार कर बता दो ॥ २ ॥ तब नगरनिवासियोंने कहा कि, तुम अपनी २ मूर्खताकी कथा कहो. तब एक मूर्खने कहा कि पहिले मेरी कथा सुन लीजिये ॥ ३ ॥

प्रथम मूर्खकी कथा.–हे महाशय ! विधाताने (कर्मने) मुझे बडे पेट और लम्बे स्तनोंवाली साक्षात् भयंकर वेताली के समान दो भार्या दीं ॥ ४ ॥ वे दोनों ही स्त्रियां मुझको रतिदायक अतिशय प्रिय होती भईं । सो नीति ही है कि, सबको सर्व प्रकारकी स्त्रियें स्वभावसे ही प्रिय हुवा करती हैं ॥ ५ ॥ मैं उन दोनोंसे राक्षसीकी तरह निरन्तर भयभीत रहता हूं जगतमें ऐसा कौन पुरुष है. जो बहुधा स्त्रियोंसे नहि डरता ? ॥ ६ ॥ उन दोनोंके साथ क्रीडा करते मेरे बहुत दिन सुखसे चले गये. एक दिन रात्रिके समय अपनी योग्य शय्यामें सोता था ॥ ७ ॥ सो वे दोनों ही गुणकी भाजन मेरी स्त्रियां शीघ्र ही आकर मेरे एक एक हाथको मस्तकके नीचे दबाकर दोनों तरफ सो गईं ॥ ८ ॥ मैंने विलासके लिये ठीक मस्तकपर दीपक रख दिया था. सो उचित ही है—कामी पुरुष आनेवाली विपदाको

तथा अन्य जीवोंके समान दुःखित होकर उसने मत्स्य कच्छप, शूकर सिंह वामन परशुराम राम कृष्ण वगैरह अवतार किस लिये धारण किये ? ॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके छिद्र सहित विष्ठाके घडेकी समान नवद्वारोंसे अपवित्र वस्तुओंको निकालनेवाले कर्मनिर्मित समस्त अपवित्रताके घररूप महा अपवित्र देहको पापरूपीमैलसे रहित स्वतंत्र वह परमेश्वर किस प्रकार धारण कर सक्ता है ? ॥ ४१–४२ ॥ उस प्रभुने दानवोंको उत्पन्न करके फिर कैसे मारा ? क्योंकि जगतमें ऐसा कोई भी पिता नहिं होता जो अपने पुत्रका अपकारक हो ॥ ४३ ॥ यदि वह तृप्त है तो भोजन क्यों करता है ? यदि अमर है तो अवतार लेलेकर मरता क्यों है ? यदि भय और क्रोधसे रहित है तो शस्त्र किसलिये धारण करता है ? ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञ होकर भी वसा (नसें) रुधिर मांस अस्थि मज्जा शुक्र आदिकसे दूषित विष्ठा घरके समान गर्भमें कैसे रहा ॥ ४५ ॥ हे भद्र ! इसप्रकार हम अपने देवके विषयमें विचार करते हैं तो पूर्वापर विचार करनेवाले हम सबकी भक्ति तेरे वचनोंमें ही होती है. अर्थात् तुम्हारा कहना ही सत्य है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष अपने संदेहोंको ही दूर नहि कर सक्ता, वह अन्य हेतुवादियोंको क्या उत्तर देगा ? ॥ ४७ ॥ हे भद्र ! निश्चयकरके तूने हमको जीत लिया. अब तू जयलाभरूपी आभूषणसे भूषित होकर जा. हम भी अब समस्त दोषरहित देवको ढूंढेंगे

ऐसा कौनसा अयोग्य कार्य है, जो नहिं करते ॥ १८ ॥ मनोवेगने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! इस वादशालामें उस विषमेक्षणकी सदृश कोई पुरुष हो तो मैं पूछने पर भी कहता हुआ डरता हूं ॥ १९ ॥ जब वह मूर्ख इसप्रकार अपनी मूर्खता को कहकर एक तरफ बैठ गया तो नष्टबुद्धि दूसरे मूर्खने प्रशंसा करते २ अपनी कथा कहना शुरु किया. २०

द्वितीयमूर्खकी कथा—मेरे दो स्त्रियां हैं सो विधाताने समस्त विडरूप पुद्गलोंको इकट्ठा करके ही मानो आकको डोंडीके समान दांतवाली वे दो स्त्रियें मेरे लिये बनाई हैं क्योंकि, ॥ २१ ॥ वे बहुत ही काली और कौडीके समान तो उनके दांत और जांघें पांव नासिका बडी लंबी हैं. भूखे हाथोंकी कंसकारों (कांसारियों) की देवीके समान बडी भयंकर हैं ॥ २२ ॥ भक्षणकरनेमें गधीको, अशुचि पदार्थ खानेमें शूकरीको और चपलतामें वायसी (कागिनी) को जीतनेवाली, और बुरी हैं उदासीकर समीपता जिनकी ऐसी हैं सो वे दोनों ही स्त्रियां मेरे पर प्रीति रखनेवाली मुझे बडी प्यारी थीं. सो एकतो मेरे दहने पांवको धोया करती थी और दूसरी बायें पांवको धोती थी ॥ २४ ॥ एकका नाम ऋक्षी [रीछनी] और दूसरीका खरी था. उन दोनोंसे निरन्तर क्रीडाके सम्भ्रममें हुए मेरा काल सुखसे जाता था ॥ २५ ॥ एक दिन प्राणोंसे भी अतिशय प्यारी मेरी ऋक्षी नामा स्त्रीने प्रीतिपूर्वक मेरा पांव धोकर दूसरे पांवपर

रख दिया ॥ २६ ॥ सो खरीने देखकर उसी वक्त एक मू-
शलद्वारा अतिशय निष्ठुर आघात करके मेरा पांव तोड
डाला ॥ २७ ॥

तब ऋक्षीने खरीसे कहा कि आज तुझे इतना स्वार्थ
हो गया है जो ऐसी नीच क्रिया करने लगी ? ॥ २८ ॥
हे दुष्टिनी ! गधोंको गधेडीके समान हजारों यारोंको भो-
गती २ अब पतिव्रता बननेको चली है ? ॥ २९ ॥ इस
प्रकार सुनकर खरीने कहा कि, हे लले ! अपनी माताकी
सदृश हजारों व्यभिचारियोंको भोगकर अब मेरे पर भी
यही दोष लगाती है ? ॥ ३० ॥ हे बोडे, हे शठे, तेरा
शिर मूंडकर पांच चोटी रखाकर गलेमें सरावोंकी माळा
पहिनाकर शहरमें फिराऊं तो ठीक लगै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार
उन दोनोंमें दुष्ट राक्षसियोंकी समान लोगोंके देखने योग्य
बडी दुर्निवार लडाई हुई ॥ ३२ ॥ तब ऋक्षीने रुष्ट होकर
कहा कि, ले तू और तेरी मा अपने पांवकी रक्षाकर, ऐसा
कहकर मूशल ले, मेरा दूसरा पांव ऋक्षीने तोड डाला ॥३३॥
दो दुष्ट बाघिनीसे बकरेके समान उन दोनों स्त्रियोंसे
भयभीत चित्त कंपितशरीर होकर मैं तो चुपचाप देखता
रहा ॥ ३४ ॥ जबसे मैंने स्त्रियोंके भयसे चुपचाप पांव
तुडवा लिये तभीसे मेरा 'कुंटहंसगति' ऐसा नाम पड
गया ॥ ३५ ॥ देखो मेरी कैसी मूर्खता है जो उससमय
स्त्रियोंके भयसे कम्पित शरीर होकर मौन धारण कर लिया ॥

जैसा दुःशील कुरूप नीच कुलकी स्त्रियोंके सौभाग्य रूप और सुन्दरताका गर्व होता है, वैसा सुशील सुरूप कुलीन निष्पाप धर्मात्मा स्त्रियोंके कदापि नहिं होता ॥ ३७—३८ अपने हितकी वांछा करनेवाले समझदार पुरुषोंको कुलीन भक्तिमती शांत धर्ममार्गकी जानकार एक ही स्त्री करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत होते हैं, वे निःसंदेह इस लोकमें तो कुलकी कीर्ति और सुखका नाश करते हैं और परलोकमें असह्य नरक वेदनाको भोगते हैं ॥ ४० ॥ इस जगतमें वैरी व्याघ्र और सर्पोंसे निर्भय रहनेवाले तो बहुत पुरुष हैं, परंतु स्त्रियोंसे नहिं डरनेवाला एक भी नहिं दीखता ॥ ४० ॥ जो पुरुष कुंटहंसगतिकी सदृश दुर्बुद्धि होते हैं, उनके सन्मुख पण्डित जनोंको चाहिये कि तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) न कहैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपनी निंदनीय कथा कह कर, दूसरे मूर्खके चुप रहनेपर तृतीय मूर्खने अपनी कथा कहनी प्रारंभ की ॥ ४३ ॥

तृतीय मूर्खकी कथा—हे पुरवासियो ! अब मैं तुमको अपना मूर्खपणा कहता हूं, सो आप सावधान होकर सुनें ॥ ४४ ॥ एक समय मैं ससुराल जाकर अपनी स्त्रीको ले आया. रात्रिको सोते समय वह बोलती नहिं थी. सो मैंने कहा कि हे कृशोदरि ! हम दोनोंमेंसे जो कोई पहिले बोलेगा वही घीमें तले हुये गुडके दश पुवे हारेगा (देगा) ॥४५—४६॥ तब मेरी स्त्रीने कहा कि, बहुत ठीक है. ऐसा

ही करो, सो उचित ही है कि, कुलीन स्त्रियां पतिके वाक्य को कदापि उलंघन नहिं करतीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार दोनोंके प्रतिज्ञारूढ होकर बैठ जानेपर उसी समय हमारे घरमें एक चोरने आकर समस्त धन हरण कर लिया ॥ ४८ ॥ उस चोरने द्रव्य ग्रहण करनेमें कुछ भी बाकी नहिं छोड़ा सो उचित ही है छिद्रके मिलनेपर व्यभिचारी और चोरोंमें बड़ी सामर्थ्य हो जाती है ॥ ४९ ॥ शेषमें जब वह चोर मेरी स्त्रीके पहरनेका वस्त्र खोलने लगा तब मेरी स्त्रीने मुझसे कहा कि, रे दुराचारी! क्या तू अब भी देखता है? हे दुष्ट! अपने सन्मुख मेरी धोतीको खोलने पर भी तू अभीतक जीता है! कुलीन पुरुषोंका जीना तो स्त्रीके पराभवतक ही होता है, अर्थात् कुलीन पुरुष मरजाना श्रेष्ठ समझते हैं परन्तु अपनी स्त्रीका पराभव नहिं देख सक्ते ॥ ५०–५१ ॥ अपनी स्त्रीके ये वचन सुनकर मैंने हँसके कहा कि, हे कान्ते! तु पहिले बोल उठी "सो हार गई हार गई" तूने गुडघीके दश पूवे देना स्वीकार किया था, सो अब मेरे दश पूवे इसी वक्त रख दे ॥ ५२–५३ ॥ देखो मेरी मूर्खता; जो मैंने दुष्पाप्य, धर्म और सुखके देनेवाले पूर्वोपार्जित समस्त द्रव्यको अपनी आंखों सामने चोरके द्वारा नष्ट करादिया ॥ ५४ ॥ उसी दिनसे मेरा नाम 'बोद' प्रख्यात हो गया है सो उचित ही है, मिथ्याभिमानके वशीभूत होकर यह मनुष्य क्या २ आपदा नहिं भोगता? ५५

अपने कर्तव्यमें अवज्ञा (अपमान) होती हो तो मनुष्य अपने जीवितव्यको छोड देता है, परन्तु शरीरका खंड खंड होजाय तो भी अपना गर्व नहिं छोडता ॥५६॥ धर्मको समस्त द्रव्यके नाशको सहते हैं इसमें सत्पुरुषोंको कुछ भी आश्चर्य नहीं क्योंकि मिथ्याभिमानसे नरककी वेदनातक सह लेते हैं ॥ ५७ ॥ जो नराधम बोदके समान मूर्ख हैं उनको सारासार विचार करनेका अधिकार (सामर्थ्य) ही नहीं है ॥ ५८ ॥ इसप्रकार अपनी मूर्खता प्रगटकर तीसरे मूर्खके चुप रहनेके बाद नगरनिवासियोंके पूछने पर चौथा मूर्ख अपनी कथा कहने लगा ॥ ५९ ॥

चतुर्थ मूर्खकी कथा—एक समय मैं अपनी स्त्रीको लेनेके लिये दूसरे स्वर्गके समान इच्छित सुखकी आधारभूत सहुरालमें गया ॥ ६० ॥ सो मेरी सासने विचित्रवर्णवाले सचिक्कन आनन्ददायक जिनवाणीके समान उज्वल (पवित्र) भोजन दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु कहते हैं उतार चढाव जिसका ऐसी महामारी (हैजे) के समान लज्जाके कारण विकलचित्त हो, मैंने कुछ भी नहिं खाया ॥ ६२ ॥ दूसरे दिन भी देहमहित व्याधियोंके समान उस गांवकी स्त्रियोंको देखकर कुछ भी भोजन करने नहिं पाया तब ॥ ६३ ॥ तीसरे दिन प्रलयकालकी अग्निके सदृश सर्वांगमें दाहकरनेवाली जठराग्नि (क्षुधा) बडी तेज होगई ॥६४॥ जो क्षुधाकर घबराया हुआ होता है, पर किसके सन्मुख

नहिं देखता सो मैंने उस समय सहज ही पलंगके नीचे झांका तो वहां पर आकाशको निर्मलकरनेवाला चंद्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ शालिचावलोंसे भरा हुवा एक बहुत बडा बर्तन देखा ॥ ६५-६६ ॥ तत्पश्चात् मैंने घरके दरवाजेकी तरफ देखा तो कोई भी नहीं है और न किसी के आनेकी आहट सुनी तब मैंने उन चावलोंसे मुंह भर लिया; सो उचित ही है, अत्यन्त क्षुधातुरके मर्यादा कहां ? ॥६७॥ दैवयोगसे उसी समय मेरी वल्लभा (स्त्री) आगई तो उसकी शरमसे उसी तरह फूले हुये गाल और मुख सहित मैं चुपचाप बैठा रहा ॥ ६८ ॥ उसने फूले गाल व मुखको तथा मिचे हुये नेत्रोंको देखा तो इन्हें महाव्याधि हो गई है, ऐसा समझकर अपनी माको खबर करदी ॥ ६९॥ मेरी सासूने आकर देखा तो वह मेरे जीनेमें ही संदेह करने लगी. सो उचित ही है. प्रेमीजन सुसमयमें भी अपने प्रियजनोंको बडी आपदा सहित देखा करते हैं ॥ ७० ॥ मेरी सास चिंतासहित ज्यों ज्यों मेरे गालोंको हाथसे दबा दबा कर देखती थी, त्यों त्यों मैं निश्चलशरीर होकर गालोंको कठिन किये बैठा रहा ॥ ७१ ॥ मेरी स्त्रीको रोती हुई सुनकर गांवकी अनेक स्त्रियां भी इकठी हो गई और सब की सब स्त्रियां अनेक प्रकारके रोग बताने लगीं ॥७२॥ एकने तो कहा कि इन्होंने माता की अथवा सप्तमाताओंकी (सात प्रकारकी देवियोंकी) सेवा पूजा नहीं की,

इसी कारण यह अनिष्ट दोष होगया है और कोई बात नहीं है ॥ ७३ ॥ दूसरीने कहा कि निःसंदेह यह किसी देवता-का दोष है, क्योंकि इसके सिवाय इस प्रकार अकस्मात् पीडा कैसे होगी ? ॥ ७४ ॥ तीसरीने अपने बांये हाथपर मेरा मस्तक रखकर दूसरे हाथको चलाकर कहा कि यह तो कर्णमूलिका माता (चेचक) है ॥ ७५ ॥ इसी प्रकार किसीने पित्तका रोग, किसीने वातरोग, किसीने कफसं-बंधी और किसीने सान्निपातिक दोष बताया ॥ ७६ ॥ इस प्रकार व्याकुलचित्त होकर परस्पर कहती हुई स्त्रियोंमें अ-पनी प्रशंसा करता हुआ एक शल्यवैद्य भी आ निकला ॥७७॥ चितामें घबराई हुई मेरी सासने उसी वक्त उस वैद्यको मेरा रोग बता कर मुझे दिखाया ॥ ७८ ॥ अनुमान करनेमें चतुर उस वैद्यने शंख फूंकनेवालेके सदृश कठोर मेरे गालोंको देखकर हाथसे दबाकर देखा और अपने मनमें विचार किया कि—निःसंदेह इसने भूखके मारे बिना चाबी हुई कोई भी वस्तु मुखमें डाली है, अन्यथा ऐसी चेष्टा कदापि नहीं हो सक्ती ॥ ७९–८० ॥ तत्पश्चात् उस चतुरवैद्यने पलं-गके नीचे चावलोंका वर्तन देखकर कहा कि हे मातः! इस तुम्हारे जमाईको कहते हैं अन्त जिसका ऐसा प्राणोंका नाश करनेवाला अत्यन्त-कष्टसाध्य तंदुली रोग हो गया है ८१ यदि तू मनचाहा बहुतसा द्रव्य देगी तो मैं तेरे जमाईका रोग दूर कर दूंगा. तब मेरी सासने कहा कि, हे वैद्यवर!

यदि यह बालक नीरोग होजाय और जीता रहेगा तो निः-
संदेह मुहमांगा द्रव्य दूंगी ॥ ८२ ॥ तदनन्तर उस वैद्यने
शस्त्रके द्वारा मेरे गालोंमें चांवलोंकी बराबर अनेक प्रकारके
कीडे (चावल) उन विषाद करती हुई स्त्रियोंको निकाल
निकाल कर दिखाये और शीघ्र ही मेरा रोग दूर कर दिया
तब एक जोडा वस्त्र देकर उन सब स्त्रियोंने वैद्यराजकी ब-
हुत कुछ भेट पूजा की. और मैं मानाग्निसे तप्त होकर वृथा
ही दुर्निवार पीडाको सहकर चुप चाप बैठा रहा ॥ ८३-८४॥
जब मेरे मुखसे वास्तविक हाल जाना तो समस्त लोगोंने
मेरी बडी हंसी करी और उसी दिनसे मेरा नाम ' गल्ल-
स्फोट ' प्रख्यात हुवा. सो उचित ही है कि, जो प्राणी
दुष्ट चेष्टा करेगा, वह शीघ्र ही निंदनीय हास्य और दुःख
को क्यों नहीं पावेगा ? ॥ ८५ ॥

हे पुरवासियो ! तुमने मेरी मूर्खता देखली ? मूका हो
कर गाल चीरनेकी असह्य पीडा सहनेवाला स्वार्थनाशक
मुझसरीखा मूर्ख तुमने कहीं पर भी देखा हो तो कहो ?
॥ ८६ ॥ लज्जा मान पौरुष शौच अर्थ काम धर्म संयम
और अकिंचनपनेको अच्छा भलेप्रकार समझकर योग्य
समय पर ही सेवन किये हुये ये तत्काल मनवांछित
सिद्धिको देते हैं ॥ ८७ ॥ सो हे ब्राह्मणो ! जो मूर्ख
हेयाहेयके ज्ञानरहित सर्वप्रकारसे त्याज्य होकर भी अभि-
मान करता है, वह हास्य दुःख और समस्त लोगोंसे निंदा

पाकर घोर नरकमें जाता है ॥ ८९ ॥ तत्पश्चात् नगर निवासियोंने कहा कि हे भद्र पुरुषो! तुम उसी साधुके पास शीघ्र ही जाकर अपने मूर्खपणेको शुद्ध करो सो उचित ही है. सत्पुरुष असाध्यकार्यमें कदापि प्रयत्न नहिं करते ॥ हे ब्राह्मणो! इस प्रकार सारासार विचारके व्यवहार रहित चारप्रकारके मूर्ख मैंने प्रगट किये. यदि तुमलोगोंमें कोई ऐसा मनुष्य होय तो मैं तत्त्व (सच्चीबात) कहते डरता हूं ॥ ९० ॥ लज्जा करनेवाली वेश्या, अतिशय दान करनेवाला धनाढ्य, गर्वकरता नौकर, भोग विलास करता ब्रह्मचारी, पवित्रता करनेवाला भांड, शीलका नाश करनेवाली स्त्री और लोभी राजा ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ९१ ॥ विवेकरहित पुरुषके किसी कालमें भी कीर्ति कांति लक्ष्मी प्रतिष्ठा धर्म अर्थ काम सुख वगैरह नहिं होते. इसकारण सर्वप्रकारसे श्रेष्ठ प्रत्येक कार्यके करते समय सारासारका विचार रखना चाहिये ॥ ९२ ॥ जो पुरुष विनाकारण ही वृथा अभिमान रखता है, उस लोकनिंद्य नष्टबुद्धि पुरुषके जीवनके साथ साथ इस लोक परलोकसम्बन्धी समस्तकार्य भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देश कालानुसार सारासार विचार कर समस्त श्रेष्ठ कार्य करता है, वही इस लोकमें विद्वानोंकर पूजनीय. मनोवांछित सारभूत सुखको प्राप्त होकर मोक्षको जाता है ॥ ९४ ॥ इस जगतमें बहुधा अहित करने पर हितको करते हैं और हित करनेपर अहित करते

हैं परन्तु अपना हित चाहनेवाले 'अमितगतयः' कहिये अ-प्रमाणज्ञानके धारक जो सत्पुरुष हैं वे अपनी बुद्धिके अनुसार अपने मनमें विचारकर पहिलेसेही हित किया करते हैं ॥

इति श्रीअमितगति आचार्य्य विरचित धर्मपरीक्षा संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें नवम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥

अथानन्तर मनोवेगने कहा कि, हे ब्राह्मणो! रागसे अन्धा रक्तपुरुष, द्वेषका करता द्विष्टपुरुष, विज्ञानकर रहित मूढपुरुष, व्युद्ग्राही राजाका पुत्र, विपरीतात्मा पित्तदूषित, विनापरीक्षा किये ही आम्रके वृक्षको काटनेवाला शेखर नामका राजा, सुरभि गौ का त्यागी तोमर बादशाह, अगरवृक्ष जलानेवाला हाली, नीमकी लकडीसे चन्दनका बदला करनेवाला लोभी रजक और विचाररहित चार मूर्ख ये दश प्रकारके मूर्ख कहे, इनमेंसे कोई मूर्ख तुम लोगोंमें हो तो मुझे बता दो ॥ १-२-३ ॥ यह वचन सुनकर समस्त ब्राह्मणोंने कहा कि हे भद्र! हम सब विचारवान् हैं जिसप्रकार गरुड सर्पको मारता है उसीप्रकार हम मूर्खको दण्ड देते हैं ॥ ४ ॥ मनोवेगने फिर कहा कि, हे विप्रगणो! मेरे मनमें अब भी थोडासा भय है, क्योंकि आप लोगोंमें बहुधा अपने वाक्यके आग्रह करनेवाले होंगे ॥ ५ ॥ दूसरे जिस वक्ताके पास सुन्दर मनोहर बैठनेका आसन नहिं हो, शिर पर मोटी पगडी

अथवा धोती नहिं हो, नयी पुस्तक न हो, योग्य सुन्दर धोती नहिं हो ॥ ६ ॥ तथा जिसके पैरोंमें सुंदर पांवड़ी [खड़ाऊं] का जोड़ा नहिं हो, लोकको रंजायमान करनेवाला भेष नहिं हो, तो उस वक्ताका कहना कोई भी प्रामाणिक नहिं समझता ॥ ७ ॥ क्योंकि आज कल बहुधा लोग किसी भेषके धारण किये बिना किसीका आदर नहिं करते, घटाटोप रूप आडम्बरकी ही पूजा करते हैं, गुणोंकी पूजा कोई भी नहिं करता ॥ ८ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि हे भद्र तू किसी प्रकार भी मत डर, प्रस्तावित कथन (रत्नालंकाररहित तृणकाष्ठके बेचनेवालोंके सदृश पुरुष भारतरामायणादिमें बताना वगैरह) कर, महात्मापुरुषोंद्वारा चर्वितका चर्वण करना (पिसे हुएको पीसना) नहिं शोभता ॥ ९ ॥ तब मनोवेगने कहा यदि ऐसा है तो मैं जो वचन कहूं सो पूर्वापर विचार कर स्वीकार करना ॥ १० ॥

इस जगतमें पुंडरीक नामका विख्यात एक प्रसिद्ध देव है. सो वह इस जगतकी सृष्टि स्थिति और विनाशका एकमात्र कारण है ॥ ११ ॥ जिसके प्रसादसे जगतजन अविनाशी पदको पाते हैं, और जो आकाशके समान सर्वव्यापी, नित्य, निर्मल और सदा प्रशस्त है ॥ १२ ॥ तथा त्रिलोकरूपी घरके एकमात्र स्तंभके समान तथा शत्रुको जलानेमें दावानलके समान, जिसके हाथ, धनुष, शंख, गदा, चक्रके द्वारा भूषित हैं ॥ १३ ॥ तथा जिसके द्वारा जगतको उपद्रव करनेवाले

दुष्ट दानव सूर्यकी किरणोंसे अंधकारके समूहके समान शीघ्र ही मारे जाते हैं ॥ १४ ॥

जिसकी गोदमें महानन्द करनेवाली आतापको नष्ट करनेवाली चन्द्रकिरणके समान मनोहर पूजनीय लक्ष्मी स्थित है ॥ १५ ॥ जिसके शरीरमें निर्मल प्रभावाला कौस्तुभमणि शोभायमान है, सो मानो लक्ष्मीने अपने सुंदर मंदिरमें दीपक ही रक्खा है ॥ १६ ॥ भो हे विप्रो ! इस प्रकारके समस्त देवोंके देव वैकुंठके परमात्मा (विष्णु) पुंडरीक भगवानमें तुम लोगोंकी प्रतीति है कि नहीं ? ॥ १७ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि, हे भद्र ! उपर्युक्त प्रकारका चराचर जगद्व्यापी जो विष्णु भगवान हैं, उसको कौन नहिं मानता ? ॥ १८ ॥ दुःखरूपी अग्निको मेघके समान और संसाररूपी समुद्रसे तारनेको जहाज समान विष्णुको जो लोग अंगीकार नहिं करते अर्थात् नहिं मानते, वे मनुष्य शरीरको धारण करते हुये पशु हैं ॥ १९ ॥ भो भट्टगणो ! यदि तुम्हारा विष्णु ऐसा उत्कृष्ट है तो नंदगोकुलमें गवालिया होकर गौओंको किसलिये चराता था ? ॥ २० ॥ तथा कुटजपुष्पोंकी मालासे दृढ बंधा हुआ मयूरपुच्छ धारणकर गोपालकों (गवालियों) के साथ बारम्बार रासक्रीडा क्यों करता था ? ॥ २१ ॥ तथा युधिष्ठिरकी तरफसे दूतपणा करनेकेलिये दुर्योधनके पास पदातियोंके समान भागा २ क्यों गया था ? ॥ २२ ॥ तथा

हाथी घोड़े पदातियोंसे भरे हुये युद्धमें अर्जुनका सारथी (रथ हांकनेवाला) बनकर किस लिये रथ हांकता था? ॥ २३ ॥ तथा बौनेका रूप धारणकर दरिद्रके समान दीन वचन कहता हुआ बलिराजासे पृथिवीकी याचना क्यों की थी? ॥ २४ ॥ तथा समस्त लोकको धारण करने वाला सर्वज्ञ सर्वव्यापी किंवा दोष रहित आत्मावाले पुरुषोंके सदृश सर्व तरफसे सीताकी विरहरूपी अग्निके द्वारा किसप्रकार तापित होता भया? ॥ २५ ॥ इनको आदि लेकर अनेक अनुचित कार्य्य करनेवाले योगियोंद्वारा नम्य जगतके गुरु, वंदनीय देवके (विष्णुके) होना योग्य हैं? ॥ २६ ॥ यदि इसप्रकारके कार्य विरागरूप हरि [विष्णु] करता है तो हम दरिद्रके पुत्रोंका काष्ठ बेचनेमें कौनसा दोष है? ॥ २७ ॥ यदि इसप्रकारकी क्रीडा [लीला] मुरारि परमेष्ठीकी है, तो अपनी शक्तिके अनुसार काष्ठादिक बेचनेरूप क्रीडा करते हुये हमको कौन निवारण कर सक्ता है? ॥ २८ ॥ इसप्रकार विद्यावर मनोवेगके वचन सुनकर चतुर ब्राह्मणोंने कहा कि, हमारा विष्णु भगवान तो ऐसा ही है इसका उत्तर हम क्या दे सक्ते हैं? ॥ २९ ॥ इस समय तो हमारे मनमें भी भ्रांति हो गई है कि परमेष्ठी हरि ऐसे कार्य किस प्रकार कर सक्ता है? ॥ ३० ॥ हे भद्र! तूने हम मूढमनवालोंको प्रबोधित किया सो उचित ही है, दर्पणके विना नेत्र रहते भी रूप नहिं देखा जा सक्ता ॥ ३१ ॥ यदि हमारा विष्णु ऐसे अनुचित-

कार्य किसी अन्यपरमेष्ठीकी प्रेरणासे करता है तो यह अपने पिताकी आज्ञासे तृणकाष्ठ बेचता है ॥ ३२ ॥ यदि देव ही ऐसे अन्यायकार्य करता है तो वह अपने शिष्यों [भक्तों) को निषेध कैसे कर सक्ता है ? क्योंकि खुद राजा ही चोरी करता हो तो वह चोरोंका किस प्रकार निवारण कर सक्ता है ? ॥ ३३ ॥ विष्णुको ऐसे कार्य करते हुये जान अन्य पुरुषोंको ऐसे कार्य करनेमें दोष क्यों देना ? क्यों कि जिस घरमें सासु ही व्यभिचारिणी हो तो बहूको दोष देना व्यर्थ है ॥ ३४ ॥ यदि वह विरागी है तो उसके अंश (अवतार) सरागी होने पर वह अंशी किसप्रकार वीरागी हो सक्ता है ? यदि परमेश्वर ही सरागी है तो वह विरागी किस प्रकार कहला सक्ता है ? ॥ ३५ ॥ समस्त लोक विष्णु भगवान् के उदरमें था तो फिर सीताका हरण किस प्रकार हुवा ? क्या आकाशसे बाहर भी कभी कोई वस्तु हो सक्ती है ? ॥ ३६ ॥ तथा विष्णु सर्व व्यापी और नित्य है तो उसके इष्टका विरह (वियोग) व पीड़ा किस प्रकार हो सक्ती है ? ॥ ३७ ॥ यदि वह किसीकी आज्ञासे ऐसे कार्य करता है तो वह जगतका प्रभु कैसे हो सक्ता है ? क्योंकि राजा होकर सेवकका कार्य कोई भी नहिं करता ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञ होकर उसने वृक्षादिकसे सीताकी खबर क्यों पूछी ? ईश्वर होकर भिक्षा क्यों मांगी ? प्रबुद्ध होय सो निद्रा कैसे ले ? और विरागी होकर काम सेवन कैसे कर सक्ता है ? ॥३९॥

तथा अन्य जीवोंके समान दुःखित होकर उसने मत्स्य कच्छप, शूकर सिंह वामन परशुराम राम कृष्ण वगैरह अवतार किस लिये धारण किये ? ॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके छिद्र सहित विष्ठाके घडेकी समान नवद्वारोंसे अपवित्र वस्तुओंको निकालनेवाले कर्मनिर्मित समस्त अपवित्रताके घररूप महा अपवित्र देहको पापरूपीमैलसे रहित स्वतंत्र वह परमेश्वर किस प्रकार धारण कर सक्ता है ? ॥ ४१–४२ ॥ उस प्रभुने दानवोंको उत्पन्न करके फिर कैसे मारा ? क्योंकि जगतमें ऐसा कोई भी पिता नहिं होता जो अपने पुत्रका अपकारक हो ॥ ४३ ॥ यदि वह तृप्त है तो भोजन क्यों करता है ? यदि अमर है तो अवतार लेलेकर मरता क्यों है ? यदि भय और क्रोधसे रहित है तो शस्त्र किसलिये धारण करता है ? ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञ होकर भी वसा (नसें) रुधिर मांस अस्थि मज्जा शुक्र आदिकसे दूषित विष्ठा घरके समान गर्भमें कैसे रहा ॥ ४५ ॥ हे भद्र ! इसप्रकार हम अपने देवके विषयमें विचार करते हैं तो पूर्वापर विचार करनेवाले हम सबकी भक्ति तेरे वचनोंमें ही होती है. अर्थात् तुम्हारा कहना ही सत्य है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष अपने संदेहोंको ही दूर नहि कर सक्ता, वह अन्य हेतुवादियोंको क्या उत्तर देगा ? ॥ ४७ ॥ हे भद्र ! निश्चयकरके तूने हमको जीत लिया. अब तु जयलाभरूपी आभूषणसे भूषित होकर जा. हम भी अब समस्त दोषरहित देवको ढूंढेंगे

क्योंकि जो अपना कल्याण चाहते हैं, उनको चाहिये कि जन्म मृत्यु जरा रोग क्रोध लोभ भयका नाश करनेवाले पूर्वापर दोषरहित देवको पहचानकर ग्रहण करें ॥ ४८-४९ इसप्रकार विप्रोंके कहने पर जिनेन्द्रभगवानके वचनरूपी जलसे धोकर निर्मल किया है अपना चित्त जिसने ऐसा वह सुबुद्धि मनोवेग विद्याधर उस वादशालासे निकलकर जाता हुवा ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् उसी बागमें जाकर अपने मित्र पवनवेगको कहने लगा कि, हे मित्र ! तूने इस लौकिक सामान्य देवको विचार पूर्वक सुना अब मैं तेरे संशयरूपी अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान थोडासा अनुक्रमका स्वरूप और भी कहता हूं सो सुन ॥ ५१-५२ ॥

हे मित्र ! इस भारतवर्षमें ६ ऋतुके समान अपने भिन्न भिन्न स्वभावोंको लिये हुये छः काल यथाक्रमसे हुवा करते हैं ॥ ५३ ॥ इनमेंसे चतुर्थकालकेविषैं चंद्रमाकी समान उज्ज्वल कीर्तिके धारक जगन्मान्य त्रेसठ शलाका पुरुष (उत्तम पुरुष) होते हैं ॥ ५४ ॥ उनमेंसे चौवीस तो तीर्थंकर (अर्हन्त), द्वादश चक्रवर्ती, नव बलभद्र (राम), नव नारायण और नव प्रतिनारायण (बलभद्र और नारायणके शत्रु) होते हैं ॥ ५५ ॥ इस समय वे पृथिवी मंडलके मंडन सबके सब उत्पन्न होकर व्यतीत हो गये. क्योंकि जगतमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि जिसको काल नहीं ग्रसता हो ॥५६॥ नारायणोंमेंसे अन्तका नारायण

वसुदेवका पुत्र श्रीकृष्ण हुआ. उसको इन ब्राह्मण भक्तोंने निरंजन परमेष्ठी मान लिया है ॥ ५७ ॥

और कहते हैं कि—जो पुरुष सर्वव्यापी, निष्कल जरा-मरणका नाशक, अच्छेद्य, अव्यय, देव विष्णुरूप ध्येयका ध्यान करते हैं, वे दुःख नहिं पाते ॥ ५८ ॥ तथा जिस विष्णुको मीन, कूर्म, शूकर, नारसिंह वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इन दश अवताररूप कहकर निष्कलंक कहिये शरीररहित भी कहा और दश अवतारका धारी भी बताया, सो इसप्रकार पूर्वापर विरोधवाले देवको विद्वज्जन कदापि प्राप्त नहिं कर सकते ॥ ५९—६० ॥ बलिकं बन्धनकी सच्ची कथा मैं कहता हूं जिसको कि मूढ-बुद्धि मनुष्योंने कुछका कुछ प्रसिद्ध कर दिया है ॥ ६१ ॥ एक समय बलि नामक दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मुनियोंको (उ-पसर्ग) उपद्रव किया था। सो ऋद्धिप्राप्त विष्णुकुमार नामा एक मुनिने वामन (बवना) का रूप धारण कर तीन पांव जमीन मांगकर बलिको बांध लिया और मुनि-योंकी रक्षा की थी. इसप्रकार जो कथा है उसको मूढ लो-गोंने और ही प्रकार मान ली है ॥ ६२—६३ ॥ नित्य निरंजन सूक्ष्म मृत्यु जन्मसे रहित तथा निष्कल होकर उ-सने दश अवतार कैसे धारण किये ? ॥ ६४ ॥ हे मित्र ! इसीप्रकार पूर्वापर विरोधसे भरे हुये इनके पुराण हैं, सो तुझे फिर भी बताता हूं। ऐसा कह कर उसने लकड़हारे-

का रूप छोडा ।। ६५ ।। तत्पश्चात् अपनी विद्याके प्रभावसे उस मनोवेगने वक्र है केशोंका भार जिसका, कज्जलकी समान कृष्ण, मोटे २ हाथ पांववाले भीलका रूप धारण किया. ।। ६६ ।। इसीप्रकार पवनवेगने भी पीली २ आंखों-वाले कटे हुए कानोंके काले मार्जारका (बिलावका) रूप बनाया ।। ६७ ।। तत्पश्चात् वह मनोवेग नगरमें प्रवेश क-रके मार्जारको एक घडेमें रख दूसरी वादशालामें पहुंचा और वहां जाकर घंटे व भेरी बजाकर सुवर्ण सिंहासनपर जा बैठा ।। ६८ ।। भेरीका शब्द सुनते ही वादी ब्राह्मण शीघ्र ही आकर मनोवेगको कहने लगे कि क्यों वे ! तू वाद किये विना ही इस सोनेके सिंहासनपर कैसे बैठ गया ? ।। ६९ ।। तब मनोवेगने कहा कि हे ब्राह्मणो ! 'वाद' इस नामको ही नहिं जानता तो मैं पशुकी समान वनमें फिरनेवाला वाद कैसे कर सक्ता हूं ।। ७० ।। तब ब्राह्म-णोंने कहा कि हे मूर्ख ! यदि तू वादका नाम ही नहिं जानता तो भट्ट ब्राह्मणोंको वादीकी सूचना करनेवाली भेरीको बजाकर इस सुवर्णसिंहासनपर क्यों बैठ गया ? ७१ तब मनोवेगने कहा कि मैं तो केवलमात्र कौतुकसे भेरी बजाकर इस सिंहासनपर बैठ गया, न कि वादके घमंडकी इच्छासे ।। ७२ ।। यदि सुवर्णके सिंहासन पर मूर्खका बैठना योग्य नहीं है तो हे विप्रो ! लो मैं उतर जाता हूं. ऐसा कहकर वह मनोवेग नीचे बैठ गया ।। ७३ ।। तब

विप्रोंने कहा, कि तू यहां किसलिये आया है ? मनोवेग-ने कहा कि मैं भील हूं. यह एक मार्जार बेचने आया हूं ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि इस बिल्लीका माहात्म्य तो क्या है और मूल्य क्या है ? सो कहो. भीलने (मनोवेगने) कहा कि, गरुडसे सर्पोंकी समान इस बिल्लीको गन्धमात्रसे बारह योजन (४८ कोस) तकके मूषक (चूहे) नष्ट हो जाते हैं. ॥ ७५—७६ ॥ हे विप्रो ! इस महा प्रभाव-वाले मार्जारका मूल्य पचास पल (एक प्रकारकी मुद्रा) है. यदि तुम्हारे आवश्यकता हो तो ले लो ॥ ७७ ॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मण परस्पर कहने लगे कि समस्त मू-षकोंके नाश करनेमें समर्थ ऐसा यह मार्जार अवश्य लेना चाहिये ॥ ७८ ॥ एक दिनमें चूहे जितना द्रव्य नाश कर देते हैं तो क्या उससे हजारवां हिस्सा भी इसका नहिं दिया जावे ? ॥ ७९ ॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मणोंने मिल कर उसी वक्त वह मार्जार पचास पल देकर ले लिया। सो उचित ही है दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करनेमें बुद्धिमान विलंब नहिं करते ॥ ८० ॥ तब मनोवेगने कहा कि, हे विप्रो यह बिडाल तुम परीक्षा करके ग्रहण करो नहिं तो पीछे हानि होगी. इसका फिर मुझे दोष नहिं देना ॥ ८१ ॥ यह बात सुनकर उन ब्राह्मणोंने मार्जारको देखा तो इसके कान न देखकर कहने लगे कि इसके कान किस प्रकार नष्ट हो गये सो कहो ॥ ८२ ॥ तब मनोवेगने कहा कि रा-

त्रिको हम एक देवालयमें थके थकाये सो गये । उस मंदिरमें चूहे बहुत थे ॥ ८३ ॥ वहींपर यह विडाल भी भूखके मारे अचेत निद्रामें सो रहा था । सो उन सब चूहोंने मिल कर इसके कान कुतर २ कर खा लिये ॥ ८४ ॥ तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त हंसीके साथ कहा कि, हे मूर्ख ! तेरे वचन परस्पर विरुद्ध हैं. क्योंकि जिसकी गंधमात्रसे १२ योजनके चूहे नष्ट हो जाते हैं, उसके कान मूसोंने कैसे काट खाये ? ॥ ८५—८६ ॥ तब जिनेन्द्र भगवानके चरणरूपी कमलोंमें भ्रमरकी समान वह मनोवेग कहने लगा कि, विप्रगणो ! क्या इस एक दोषके कारण इसके समस्त गुण नष्ट हो गये ? ॥ ८७ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—कि बेशक, इस एक दोषसे इसके समस्त गुण भी चले गये. क्या कांजीका बिन्दुमात्र पड़नेसे दूध नहिं फट जाता है ? ॥८८॥ तब मनोवेगने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! इसके एक दोषसे सब गुण कदापि नष्ट नहिं हो सकते हैं क्या अन्धकारसे मर्दन किये हुये सूर्यके किरण कहीं चले जाते हैं ? ॥ ८९ ॥ हम तो दरिद्रके पुत्र हैं, वनमें पशुके समान रहनेवाले हैं, आप सरीखे विद्वानोंके साथ विशेष वाद विवाद नहिं कर सक्ते ॥ ९० ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि भाई ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहिं है, किन्तु इस विलावका दूषण दूरकरो . तब मनोवेगने कहा ॥ ९१ ॥ कि बेशक मैं इस मार्जारका दूषण दूर कर सक्ता हूं, परन्तु आप ईश्वरके

समान इस नगरके नायक हैं आपके साथ बोलते हुये मेरा मन भयभीत होता है ॥ ९२ ॥ हे महाशयो ! जो मनुष्य कूपमंडूकके समान अथवा कृतकबधिरके तुल्य अथवा लिटभृत्यके सदृश होय तो उसके सामने सत्यार्थ तत्व [वस्तुका स्वरूप] कहते हुए मनमें भयकारक शंका होती है ॥ ९३ ॥ जो पुरुष शास्त्रकी बातको प्रमाण नहि करे और अपनी वस्तुको छोटी होने भी बहुत बडी कहे और परवस्तुका परिमाण नहि करे, उस पुरुषको कूपमंडूकके सदृश कहते हैं ॥ ९४ ॥ जैसे एक समय समुद्रनिवासी राजहंसको देखकर किसी कूपके मेंढकने पूछा कि, तुम कहां रहते हो ? हंसने कहा कि, मैं समुद्रमें रहता हूं. तब मेंढकने पूछा कि वह तेरा समुद्र कितना बडा है ? तो हंसने कहा कि बहुत बडा है ॥ ॥ ९५ ॥ तब मंडूकने अपने हाथ पांव पसार कर कहा कि समुद्र इतना बडा है, तब हंसने कहा कि भाई ! समुद्र बहुत बडा है. मेंढकने कहा कि क्या मेरे कूपसे भी बडा है ? परन्तु उस मेंढकने हंसका कहना झूठा माना. जैसे कि एक कहावत है कि,—

"हाथ पसारे पांवपसारे और पसारा गात ॥
इससे बडा समुद्र है, कहन सुननकी बात ॥ १ ॥"

सो हे भाइयो ! ऐसे कूपमंडूक सदृश जो अधम पुरुष सत्य वचनको भी स्वीकार नहि करे उसको पंडित जन कुछ भी नहि कहते, क्योंकि सत्पुरुष व्यर्थ कार्य कभी नहि करते हैं ॥ ९६-

९७ ॥ जो पुरुष स्वजनोंके तथा शकुनशास्त्रके शब्दोंद्वारा निवारण किया हुवा भी उन शब्दोंको नहिं सुनकर ढोल वगैरहके शब्दोंसे अन्य शब्दोंको आच्छादन करके किसी कार्यका प्रारम्भ करता है, वही निष्कृष्ट कृतकवधिर नामा मूर्ख होता है ॥ ९८ ॥ जो पुरुष राजाको तृष्णावान दुष्ट-मति, अदायक (कृपण) जानकर भी नहिं छोडता और अ-नेक प्रकारके क्लेशोंको भोगता है, वही निंदनीय क्लिष्टभृत्य कहा गया है ॥९९॥ जो मनुष्य इन तीनोंकी समान कार्य अकार्यको प्रगट करनेवाले वचनको चुटकियोंमें उडानेवाले हैं, उनके प्रति पंडितजनोंकर पूजनीय मोक्ष लक्ष्मीको देख-नेवाले, निर्दोष, अप्रमाण ज्ञानके धारक पुरुषोंको चाहिये कि वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप न कहैं ॥ १०० ॥

इति श्रीअमितगति आचार्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालबोधिनी भाषाटीकामें दशम परिच्छेद पूर्ण भया ॥ १० ॥

अथानन्तर ब्राह्मणोंने कहा कि, हे भद्र ! हम क्या ऐसे मूर्ख हैं ? जो युक्तिसे प्रगटतया घटमान (सिद्ध किये) हुये वचनको भी नहिं समझें ? ॥ १ ॥ तब विद्याधरनाथके चतुर पुत्रने कहा कि, हे विप्रगणो ! यदि ऐसा है तो मैं अपने मनोभावको प्रगट करता हूं सो सुनो ॥ २ ॥

जिसप्रकार सूर्यमें तेज है उसी प्रकार निवास किया है दोष जिनमें ऐसी तपस्याओंका घर एक मंडपकौशिक नामका तपस्वी था ॥ ३ ॥ सो एक समय तारोंमें चंद्रमाके समान पवित्र

शरीरवाले तपस्वियोंके साथ भोजन करनेकेलिये बैठा था सो निंदनीय चंडालकी सदृश उसको बैठा हुवा देखकर उसके स्पर्शका है चित्तमें भय जिनके ऐसे ये समस्त तपस्वी उसी वक्त खडे हो गये ॥ ५ ॥ तब मंदपकौशिकने उनसे कहा कि, मुझे भोजन करते हुये कुत्तेके समान देखकर आप लोग क्यों उठ गये ? ॥ ६ ॥ तब तपस्वियोंने कहा कि, तुम पुत्रका मुख न देखकर अभीतक कुमार ब्रह्मचारी ही हो, इसकारण तापसियोंके नियमसे बहिर्भूत हो क्योंकि, ॥ ७ ॥ निपुत्र की (जिसने पुत्रका मुख नहीं देखा हो) उसकी न तो गति होती है और न उसके तप तथा स्वर्ग ही होता है. इस कारण पहिले गृहस्थाश्रम धारण पूर्वक पुत्रका मुख देख कर मोक्षके लिये तपस्या ग्रहण की जाती है. यदि तुम्हें मोक्ष की इच्छा होय तो पहिले गृहस्थाश्रम धारण पूर्वक पुत्रमुख दर्शन कर ॥ ८ ॥ तब वह मंदपकौशिकने उन ऋषियोंकी आज्ञानुसार अपने जाति भाइयोंसे विवाहके लिये कन्या मांगी किन्तु उसकी उमर बहुतसी बीत जानेके कारण किसी ने भी अपनी कन्या देनी स्वीकार नहि की ॥ ९ ॥ तब उसी वक्त तपस्वियोंके पास जाकर पूछा कि मुझे वृद्ध समझकर कोई भी कन्या नहि देता, सो अब मैं क्या करूं ॥

तब उन ऋषियोंने आज्ञा करी कि तू किसी विधवाको ही ग्रहण करके सुख भोग, इस प्रकार करनेमें तुम दोनोंको कोई भी दोष नहि है, क्योंकि हमारे ऋषिमतमें (स्मृतियों-

में) कहा है कि, ॥ ११ ॥ पतिके दीक्षित हो जानेपर, नपुंसक होनेपर, रोगी दरिद्री होनेपर अथवा भाग जानेपर पतित (जातिच्युत) होनेपर तथा मर जानेपर. इन पांच आपदाओंमें स्त्रीके लिये दूसरा पति किया जाता है ॥१२॥ तब उसने ऋषियोंकी आज्ञानुसार एक विधवाका ग्रहण किया. सो ये जगवर्ती मनुष्य विना उपदेशके ही विषयोंमें लालसा रख हैं तो गुरुजनोंकी आज्ञा होनेपर तो क्यों न इच्छा करेंगे? ॥ १३ ॥ उस स्त्रीके साथ भोगविलास करते करते उसके लक्ष्मीकी समान समस्त जनोंकर प्रार्थना करने योग्य एक अतिशय मनोहर कन्या उत्पन्न हुई॥ १४ ॥ वह कन्या ज्यों ज्यों बढती गई त्यों त्यों ब्रह्मा विष्णु महेश और इन्द्रादिकदेवोंके अनिवार्य्य कामदेवको बढाने लगी ॥ १५ ॥ वह कन्या ताये स्वर्णकी कांतिके समान कांतिवाली. विद्वानोंको प्रिय ऐसे गुण कलाओंकी घर, ' छाया ' नामको धारण करती हुई ॥ १६ ॥ अपनी कांतिरूपी सम्पदासे समस्त स्त्रियोंको जीतकर तिष्ठी. जिसके समान उसीकी छाया ही आदर्शरूप होती हुई, अन्य कोई भी स्त्री उसकी सदृशता धारण करनेवाली नहीं थी ॥ १७ ॥ जिस प्रकार कृपणके घरमें परोपकारिणी लक्ष्मी होती है । उसीप्रकार वह कन्या उस मंडपकौशिकके घर आठ वर्षकी हो गई १८ एक दिन मंडपकौशिकने अपनी स्त्रीसे कहा कि, हे प्रिये ! मेरी इच्छा है कि समस्त पापोंको नाशकरनेवाली तीर्थयात्रा

करैं परन्तु--॥ १० ॥ सुवर्णकी समान है कांति जिसकी शुभलक्षणोंकी धारक, नवीन यौवनावस्थाको धारण करने-वाली इस कन्याको किस देवके हाथ सौंप जावें ? क्योंकि जिसके सुपुर्द यह कन्या की जायेगी, वही अपनी कर बैठेगा. कारण इस लोकमें ऐसा कोई भी नहिं दीखता जो रा-मारूपी रत्नसे पराङ्मुख हो ॥ २०—२१ ॥ जो रुद्र (महादेव) है सो तो सर्वकाल कामरूपी अग्निसे तप्तायमान होकर अपने आधे शरीरमें पार्वतीको रखता है और विपरे-शण है. क्योंकि अपनी देहमें रहनेवाली प्रिय पार्वतीको छो-ड़कर गंगाको सेवन करता है । सो ऐसी उत्तम लक्षणोंवाली कन्याको पाकर कैसे छोडेगा ? ॥ २२–२३ ॥ जिसके हृदयमें अहोरात्र समुद्रकी वडवानलकी समान महा तापकारक कामाग्नि प्रज्वलित हो रही है, उस महाकामी महादेवके हाथ इस कन्याको किस प्रकार सौंपी जावे ? क्योंकि पंडितजन हैं, वे रक्षाकेलिये मार्जारको (बिल्लीको) दूध कदापि नहिं सौंपते ॥ २४–२५ ॥ तथा जो विष्णु नदियोंद्वारा सेवन किये हुवे समुद्रकी सदृश निरन्तर सोलह हजार गोपि-योंको सेवन करता हुआ भी तृप्तिको प्राप्त नहिं होता और हृदयस्थित लक्ष्मीको छोडकर गोपियोंमें रमता है, वह माधव इस सुंदर कन्याको पाकर कैसे छोडेगा ? ॥ २६-२७ ॥. सो हे प्रिये ! ऐसे विष्णुको यह कन्या किस प्रकार सौंपू ? क्या कोई रक्षा करनेकेलिये चोरके ही हाथमें धन देता

है ? ॥ २८ ॥ जिस ब्रह्माने देवांगनाके नृत्यमात्र देखने-केलिये अपनी उत्तम तपस्याको छोड दिया. वह ब्रह्मा सुंदर कामिनीको पाकर क्या नहिं करेगा ? ॥ २९ ॥

एक समय अचानक ही इन्द्रका आसन कम्पायमान होने पर इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा कि, हे साधो ! मेरा आ-सन किसने कम्पायमान किया ? ॥ ३० ॥ तब बृहस्पतिने कहा कि, हे देव ! आपके राज्य लेनेकी इच्छासे ब्रह्माको तप करते हुए आज ४ हजार वर्ष वीत गये हैं. सो हे प्रभो! उस तपके महाप्रभावसे ही आपका आसन कंपित हो गया है. सो उचित ही है कि तपके प्रभावसे क्या नहिं सधे ? ॥ ३१–३२ ॥ इस कारण हे हरे ! अब किसी उत्तम स्त्री-को भेजकर उसके तपको नष्ट करो। सिवाय स्त्रीके तप ह-रणकरनेका अन्य कोई भी उत्कृष्ट उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ तब इन्द्रने मनोहर २ समस्त स्त्रियोंका (अप्सराओंका) तिल २ भर रूप (सौन्दर्य) ले ले कर एक वहुत सुन्दर स्त्री (अप्सरा] बनाई, जिसका नाम ' तिलोत्तमा ' रक्खा. और " तू ब्रह्माके पास जाकर उसको तपसे भ्रष्ट कर " इसप्रकार आज्ञा देकर उस तिलोत्तमाको ब्रह्माके पास भेज दिया ॥ ३४–३५ ॥ तत्पश्चात् तिलोत्तमाने उसी वक्त ब्रह्माजीके सन्मुख पहुंचकर पुराने मद्य [शराब] के स-मान मनको मोहित करनेमें तत्पर ऐसा रसपूरित सुन्दर नृत्य करना शुरू किया ॥ ३६ ॥ तथा उस चतुर तिलो-

चमाने ब्रह्माके कामरूपी वृक्षको बढानेके लिये मेघके स-
मान शरीरके गुप्त अवयव (भाग) दिखाये, जिनके दे-
खनेसे ब्रह्माकी चंचलदृष्टि उस तिलोत्तमाके शरीरमें कभी
पावोंमें तो कभी उसकी जंघा व उरस्थलमें, कभी विस्तीर्ण
जघनस्थलमें, कभी नाभिपर तो कभी दोनों स्तनों पर,
स्तनों परसे हटी तो गर्दन तथा मुखरूपी कमलपर जा
टिकी. इसप्रकार बहुत काल तक इधर उधर दौडती २ व
विश्राम करती २ क्रीडा करने लगी ॥ ३७–३९ ॥ वह
मंदगामिनी तिलोत्तमा विलास विभ्रमकी आधारभूत वि-
न्ध्याचलको नर्मदाके समान ब्रह्माके हृदयको भेदती हुई
॥ ४० ॥ तत्पश्चात् उसने ब्रह्माको दृष्टिसे लवलीन जान
कर अनुक्रमसे दक्षिण उत्तर और पीठ पीछे नृत्य करके
उसके मनको चारों तरफ घुमाया परन्तु ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा-
जीने लज्जाके वशीभूत होकर नाच देखनेकेलिये अपनी
गर्दनको इधर उधर घुमाकर नहिं देखा. सो उचित ही है
कि लज्जा मान और मायावाले पुरुषोंके द्वारा कोई भी उत्तम
काम नहिं होता ॥ ४२ ॥ जब लज्जा और मानके वश
अपनी गर्दनको घुमाकर तिलोत्तमाके रूपको नहिं देख सका
तो लाचार होकर उस नष्टबुद्धि ब्रह्माने एक हजार वर्षकी
तपस्याका फल व्यय करके प्रत्येक दिशामें एक एक नया
मुंह बनाकर उसके रूपको निरखने लगा ॥ ४३ ॥ जब
उस तिलोत्तमाने ब्रह्माको अतिशय आसक्तदृष्टिवाला देखा

चम्पानगरीमें गुरुवर्मराजाके मंत्री हरिनामकद्विजने एक दिन पानीमें एक शिला तैरती हुई देखी. उस समय उसके पास दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था ॥ ६३ ॥ उसने राजसभामें आकर यह प्रत्यक्ष देखाहुवा आश्चर्य राजाके सन्मुख प्रगट किया तो राजाने इसपर कुछ भी विश्वास नहिं किया, किंतु उलटा क्रोधित होकर इस असत्य कथनके अपराधमें मंत्रीको बन्धवा दिया और कहा कि—इस ब्राह्मणके अवश्य ही कोई पिशाच (भूत) लग गया है. यदि ऐसा नहिं होता तो यह ऐसी असंभव बात कदापि नहिं कहता ॥ ६४-६५ ॥ तत्पश्चात् उस मंत्रीने कहा कि—हे देव ! मैंने यह बात झूठ ही कह दी थी, सो अपराध क्षमा करें. इसप्रकार प्रार्थना करनेपर राजाने मंत्रीको छोड़ दिया ॥ ६६ ॥ फिर मंत्रीने इसका बदला लेनेकी इच्छासे कई एक बंदरोंको बाजा बजाना और नाचना गाना सिखाकर तयार किया फिर ॥६७॥ एकदिन बागमें राजाको अकेला देख उन बदरोंका मनोहर संगीत कराया. जिसको देखकर राजा मोहित होगया ॥ ६८ ॥ जब राजाने तुरंत ही अपने मंत्री और भट्टोंको वह संगीत दिखानेकेलिये बुलाया तो इतनेमें ही वे सब बंदर अपना संगीत बंद करके इधर उधर भाग गये ॥ ६९ ॥ तब मंत्रीने कहा कि, हे भट्टगणो ! राजाको अवश्य ही कोई भूत लग गया है, सो इनको बांध लो, योद्धाओंने उसी वक्त राजाको बांध.

ही क्या ? ॥ ५१ ॥ तत्पश्चात् ब्रह्माने भी अतिशय क्रोध करके महादेवजीको श्राप दिया कि " तूने जो यह ब्रह्म-हत्या की है, इसका कारण तेरे हाथसे यह शिर कभी नहिं पड़ेगा " ॥ ५२ ॥ तब महादेवजीने लाचार होकर प्रार्थना करी कि, हे साधो ! बेशक, मैंने ब्रह्महत्या की, परन्तु अब आप मेरे पर दया करके इस महापसे छुड़ाइये. तब ब्रह्माने पार्वतीके पतिको (महादेवजीको) कहा कि, हे शंभो ! इस मेरे मस्तकको जब विष्णु भगवान् अपने रक्तसे सिंचन करेंगे तो उसी समय यह मेरा शिर तेरे हाथमेंसे गिर पड़ेगा ! ॥ ५३-५४ ॥ तब महादेवजीने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधारणकर कपालव्रत अंगीकार किया. सो खेद है कि सर्वव्यापी प्रपंच देवोंसे भी नहिं छोड़ा जाता ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् उस ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये महादेवजी हरि (विष्णु) के पास गये सो ठीक ही है अपनेको पवित्र करनेकेलिये ये जगतजन किसका आश्रय नहिं करते ? ५६ इधर ब्रह्माजीने मृगोंसे भरे हुए एक वनमें प्रवेश किया. सो ठीक ही है, क्रोधकामरूपी अग्निसे सन्तप्त पुरुष चेतना रहित हो क्या नहीं करता ? ॥५७॥ उस वनमें एक रीछ-नीको ऋतुवती देखकर ब्रह्माजी उसके साथ ही रमने लगे. सो उचित ही है, कि कामाग्निसे पीड़ित जनोंको गधी भी अप्सरा दीखती है ॥ ५८ ॥ उस रीछनीने गर्भ धारणकर पूरे दिन होनेपर तीन भवनमें प्रसिद्ध जांबवनामा पुत्र जना

को चल दिया ॥ ८० ॥ सो एक नगरके निकट पहुंचा तो जलके निर्झरने सहित चलतेहुये पर्वतकी समान अपने मदरूपी जलसे पृथिवीको सींचते हुये एक वहुत बडे हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ८१ ॥ सो शरीरसहित अनिवार्य मृत्युकी समान मुझे देख क्रोधित होकर महावतके अंकुशको न माननेवाला वह महाभयंकर हाथी अपना विस्तीर्ण सुंड पूंछ और कानोंको चलायमान करता हुवा मेरे पीछे भागने लगा ॥८२॥ तत्पश्चात् कोई शरण न पाकर भागनेमें असमर्थ हो मैंने वह कमण्डलु तो भिंडीके एक वृक्षपर रख दिया और मारे डरके मैं कांपने लगा ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे उसी समय मेरे चित्तमें एक बुद्धि उपजी कि–मैं उस हाथीके भयसे झट पट उस कमंडलुकी नाल (टोंटी) से कमंडलुमें प्रवेश कर छिप गया और 'इस कष्टसे मैं मुक्त हो गया' इस प्रकार क्षणभर प्रसन्नचित्त हो विचार रहा था कि–इतनेमें ही ॥ ८४ ॥ वह विरुद्ध-चित्त गजराज भी शीघ्र ही उस कमंडलुमें प्रवेश करके क्रोधित हो मेरे रोते हुयेके वस्त्र खेंचकर अपनी सूंडसे मेरी धोतीको फाडने लगा ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात् उस हाथीको वस्त्रके फाडनेमें लगा हुवा देख मैं तो व्याकुल होकर शीघ्र ही कमंडलुके ऊर्ध्वभागसे [मुखके छिद्रसे] वाहर निकल आया, सो ठीक ही है, जीते रहते कोई न कोई वचनेका उपाय निकल ही आता है ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात वह हाथी

पनी की रचना हुई, क्योंकि दुनियामें ऐसा कोई भी नहिं
होगा, जो स्त्रियोंमें निस्पृह हो ॥ ६८ ॥ यमराजने उस
स्त्री को हर ली जानेके भयसे अपने पेटमें रख (छिपा)
लिया, सो उचित ही है, कुबुद्धि कामीजन अपनी प्रिय स्त्री
को कहां नहिं रखेंगे ? ॥ ६९ ॥ तत्पश्चात् वह यमराज
उसको पेटसे निकाल २ कर उसके साथ वारंवार रमने
लगा, रमण करनेके पश्चात् हराजानेके भयसे फिर अपने
पेटमें रखलिया करता था ॥ ७० ॥ इस प्रकार यमराज
उसके साथ रतामृत भोगते २ अपना समय सुखसे व्यतीत
करता हुआ अपनेको इन्द्रसे भी अधिक मानने लगा ॥७१॥
सो यह नीति ही है कि, लेखनी पुस्तक और स्त्री पराये हाथ गई
हुई वापिस नहिं आती, यदि आती है तो टूटी फटी मर्दन
की हुई मिलती है ॥ ७२ ॥ एक समय पवनदेवने अग्नि-
देवको कहा कि, हे भद्र ! देवोंमें तो आजकल एक यमराज
ही अपना काल सुखसे बिताता है, क्योंकि उसने सुरतामृ-
तकी नदीके समान एक मनोहर स्त्री पाई है, सो उसको
दृढालिंगनकर सुखरूपी सागरमें मग्न होकर सोता है !
॥ ७३-७४ ॥ उस नितम्बिनीके दिये हुये पवित्र सुखमें
गंगाके जलसे समुद्रके समान यमराज कभी तृप्त ही नहिं
होता ॥ ७५ ॥ यह सुनकर अग्निदेवने कहा कि उसके
साथ मेरा समागम किस प्रकार हो ? तब पवनदेवने कहा
कि, ॥७६॥ यमराज कर रक्षा की हुई वह स्त्री देखनेको भी

नहिं मिलती तो उसका मिलाप किस प्रकार हो सक्ता है ? ॥७७॥ क्योंकि वह स्त्री अपनी शोभासे समस्त देवांगनाओं को जीतनेवाली है सो यमराज रतामृत भोगनेके पश्चात् उस को अपने पेटमें रख लेता है ॥७८॥ परन्तु जिस समय यम-राज नित्यकर्म करता है तो उसको एक पहर तक उदरसे बाहर निकालकर रखता है, सो उस समय बेशक वह अकेली ही स्पष्टतया देखनेमें आती है ॥७९॥ तब अग्निदेवने कहा कि, हे वायु ! एक पहरमें तो मैं तीन लोकमेंसे किसी भी स्त्रीको ग्रहण कर सक्ता हूं, सो एकांतमें बैठी हुई की तो बात ही क्या है ? ॥८०॥ आचार्य्य कहते हैं कि, यौवनकर भूषित है अंग जिसका और कामकर व्यापित है शरीररूपी यष्टि जिसकी, ऐसी एकान्तमें बैठी हुई अकेली स्त्रीको युवा पुरुष तुरंत ही अपने वशमें करले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ८१ ॥ तीक्ष्ण कामरूपी बाणसे भिद गया है शरीर जिसका ऐसा वह अग्निदेव वायुको इस प्रकार कह कर जहांपर यमराज उस तन्वीको उदरसे निकालकर अघ-मर्षण (नित्यकर्म) किया करता था, वहीं पर जा पहुंचा ॥ ८२ ॥ यमराजने आकर छायाको बाहर निकाल कर पापरूपी मैलसे विशुद्ध होनेके लिये गंगाजीमें प्रवेश किया. उसी वक्त अग्निदेव, अपना अत्यन्त मनोहररूप बनाकर छायाको ग्रहण करके उसके साथ रमने लगा ॥८३॥ जिस प्रकार हरे पत्तोंके समूहको देखकर मूर्ख बकरी उन पत्तोंको

खाने लग जाती है, इसी प्रकार रक्षा नहिं की हुई निरं-
कुश स्त्री मनसे प्रसन्न हो अपने मनचाहे इष्ट पुरुषको ग्रहण
कर लेती है. और रोकने पर प्रायः कोप किया करती है
॥८४॥ उस अग्निदेवके साथ रमण करनेके पश्चात् छाया
ने कहा कि तू यहांसे शीघ्र ही चला जा, क्योंकि मेरे पति
विरुद्धवृत्ति यमराजके आनेका समय हो गया है ॥८५॥ वह
यदि मुझे तेरे साथ देखेगा तो गुस्से होकर मेरी नासिका
काट लेगा और तुझे भी जानसे मार डालेगा. क्योंकि
अपनी स्त्रीके जारको देखकर कोई भी क्षमा नहिं करता
॥ ८६ ॥ तब उस पीनस्तनसे पीड़ित अंगवाली छायाको
आलिंगनपूर्वक अग्निदेवने कहा कि, हे प्रिये ! तुझे छोड़
कर मैं चला जाऊं तो मुझे दुष्टविषवाला वियोगरूपी
हस्ती मार डालेगा ॥ ८७ ॥ इस कारण हे प्रिये ! तेरे
सन्मुख दुष्ट यमराजके हाथसे मारा जाऊं तो बहुत ही श्रेष्ठ
है, परन्तु दुःखसे हे अंत जाना ऐसी कामरूपी अग्निसे तेरे
विना निरन्तर जलता हुआ श्रेष्ठ नहीं ॥ ८८ ॥ इस प्रकार
कहते हुवे अग्निदेवको उस छायाने उसी समय निगलकर
अपने पेटमें रख लिया. जो अपने प्रिय पुरुषको भी हृदयमें
रख ले तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥ ८९ ॥
तत्पश्चात् यमराज, अपना नित्य कर्म करके इस बातको
कुछ भी नहिं जानता हुआ छायाको अपने पेटमें रखकर
चल दिया. सो उचित ही है स्त्रियोंका प्रपंच विद्वानोंसे

अगम्य है ॥ ९० ॥ जब अग्निदेव छाया और यम-राजके पेटमें अटक गये, तो इधर उनके (अग्निके) विना संसारभरमें रसोई बनाना, होम करना, प्रदीप जलाना आदि समस्त काम बंद होगये. तब मनुष्य और देव सबके सब घबडा गये ॥ ९१ ॥ फिर लाचार होकर इन्द्रने वायुदेवको कहा कि हे सखे ! तू सर्वत्र फिरता है और तेरी समस्त देवोंके यहां गति है अग्निदेव कहां है ? सो तुम ढूंढकर पता लगाओ ॥ ९२ ॥ वायुने कहा कि हे देव ! मैंने अग्निदेव को सर्वत्र ढूंढ लिया, परन्तु कहीं भी पता नहीं लगा. हां एक जगह मैंने नहिं ढूंढा है, सो हे देवेश ! उस जगह भी ढूंढता हूं ॥ ९३ ॥ इसप्रकार कह कर वायुदेवने उत्तमोत्तम भोजन बनाकर समस्त देवोंको निमंत्रण दिया, जब सबके सब देव आगये, तब उसने हरएक देवकेलिये तो एक एक आसन दिया, परन्तु यमराजकेलिये तीन आसन दिये ९४ जब समस्त देव बैठ गये तो अपरिमाण है गति जिसकी ऐसे वायुदेवने हरएक देवको तो एक एक भाग परोसा परंतु यमराजको तीन भाग (पत्तल या थालीमें) भोजन परोसा सो ठीक ही है, प्रपंच किये विना किसीका भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ९५ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें ग्यारहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ११ ॥

अथानन्तर—जब अपने सन्मुख भोजनके तीन भाग परोसे हुवे देखे तो यमराजने वायुदेवसे कहा कि हे पवन ! तूने मेरे सामने तीन भाग क्यों रक्खे ? ॥ १ ॥ यदि मेरे पेटमें एक स्त्री है तो दो भाग परोसने थे, तूने तीन भाग किस कारण परोसे ? ॥ २ ॥ यह सुनकर पवनदेवने कहा कि—हे भद्र ! अपनी मनकी प्यारी स्त्रीको पेटसे निकाल, तब अपने आप ही तीन भाग परोसनेका कारण मालूम हो जायगा ॥ ३ ॥ तब प्रेतपती (यमराज) ने अपने पेटमेंसे छायाको निकाला तो तत्काल वायुदेवने छायासे कहा कि—हे भद्रे ! अपने उदरस्थित अग्निदेवको शीघ्र ही निकाल ॥ ४ ॥ जब छायाने अपने पेटमेंसे प्रकाशमान अग्निदेवको निकाल दिया तो यह कौतुक देख समस्त देव आश्चर्यान्वित हो गये सो उचित ही है अदृष्ट-पूर्व (जो पहिले नहिं देखनेमें आई एसी) वस्तुके देखनेसे किसको आश्चर्य नहीं होता है ? ॥ ५ ॥ जो स्त्री कामातुर हो कर जलती हुई अग्निको निगल जाती है उस स्त्रीको कोई भी वस्तु प्राप्त करना दुर्गम व दुष्कर नहिं है ॥ ६ ॥ यमराजने अग्निको देख कर बडा क्रोध किया और दण्ड लेकर मारनेके लिये तत्पर हुवा सो नीति ही है. कि—प्रत्यक्षमें अपनी स्त्रीके जारको देखकर ऐसा कौन है जो उस पर क्षमा कर दे ॥ ७ ॥ यमराजको दंड लिया हुवा देखकर अग्निदेव भागे. सो उचित ही है, नीच,

जार व चोरोंको धीरता कहां ? ॥ ८ ॥ भागते २ थक गया तो अग्निदेव वृक्ष पाषाण वगैरहमें छिप कर बैठ गया. सो ठीक ही है व्यभिचारी व चोर छिपकर ही रहते हैं ॥ ९ ॥ जो अग्नि उस समय यमराजके भयसे वृक्ष और पत्थरोंमें छिपा था, सो अभीतक बुद्धिमानोंके प्रयोग विना प्रगट नहिं होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार कहकर मनोवेगने पूछा कि-हे विप्रो ! आपके पुराणोंमें यह कथा इसीप्रकार है ? कि नहीं ? तो ब्राह्मणोंने कहा कि-निःसंदेह ऐसी ही कथा है ॥ ११ ॥ तब मनोवेगने कहा कि-हे ब्राह्मणो ! जो यमराज सबके शुभाशुभका ज्ञाता है और हमेशह शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टोंपर दंड करनेवाला है तो अपने पेटमें स्थित प्रियाके पेटमें अग्निदेवको रहते हुए भी उसको नहिं जाना, तब उसका व अग्निका देवपणा क्यों नहीं चला गया ? ॥ १२—१३ ॥ जिस प्रकार इस छोटेसे दोषसे उनका देवपणा नहिं गया तो उसी-प्रकार मूसोंके द्वारा मेरे मार्जारके कान काटे जानेसे अन्य जो बडे २ गुण हैं, वे कैसे जा सक्ते हैं ? ॥ १४ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणोंने प्रशंसापूर्वक कहा कि-हे भद्र ! तुमने बहुत ठीक कहा. सो नीति ही है कि-जो समझदार सत्पुरुष होते हैं, वे न्यायरहित पक्षका समर्थन कदापि नहिं करते ॥ १५ ॥ हे भद्र ! हम अपने पुराणोंका ज्यों ज्यों विचार करते हैं, त्यों त्यों उनके जीर्ण वस्त्रोंके समान सैकडों खंड होजाते हैं,

सो क्या किया जाय. उनका हम किसी प्रकार भी समर्थन नहिं कर सके ॥ १६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके वचन सुनकर विद्याधरपुत्र मनोवेगने कहा कि—हे विप्रो ! संसाररूपी वृक्षको अग्निके समान जो देव है, उसका स्वरूप सुनो १७ जिसका चित्त, लावण्यरूपी जलकी लहर, कामदेवके रहने की वस्ती, गुण और सुंदरताकी खानि, कटाक्षरूपी बाणों-के द्वारा समस्त जनोंको घायल करनेवाली, त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ ऐसी स्त्रियोंके द्वारा नहिं भिदता, उसी देवको मन वचनकायकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार करो और उसीकी शरण ग्रहण करो ॥ १८–१९ ॥ भो विप्रो ! जिस कामके वशीभूत हो शंकरने अपना पवित्र योग छोडकर पार्वतीको अपने आधे अंगमें स्थापन किया ॥ २० ॥ और जिस कामदेवकी आज्ञासे सुखकी इच्छा रखनेवाला विष्णु गोपियोंका विदारै हुये अपने हृदयमें लक्ष्मीको रखता हुवा ॥२१॥ तथा जिसके बाणोंसे पीडित होकर ब्रह्माजीने तृणके समान तपश्चरणको छोड दिव्य तिलोत्तमाके नृत्यको देखनेकेलिये चतुर्मुख बनाये ॥२२॥ तथा जिसने अपने दुर्वार तीक्ष्ण-बाणोंसे घायलकर इन्द्रको दुष्कर्मोंका घर और सहस्रभग बना दिया ॥२३॥ तथा जिस कामदेवकी आज्ञासे समस्त लोगोंको आज्ञामें चलानेवाले सबसे बलवान यमराजने चोरी जानेके भयसे छायानामकी लडकीको पेटमें रखकर मिथ्या बनाया ॥२४॥ तथा जिस कामदेवने त्रिलोकीमें रहनेवाले

समस्त देवोंमें प्रधान अग्निदेवको पत्थर और वृक्षोंमें प्रवेश करा दिया, ऐसे दुर्जय कामदेवको जिसने जीत लिया, उसी परमेष्ठीके प्रसादसे ही सबका कल्याण हो सक्ता है ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके सन्मुख परमात्माका विचार करके इस मनोवेगने उसी बागमें उपस्थित हो, अपने मित्र पवनवेगसे कहा कि—॥२७॥ हे मित्र ! तूने अन्यमता॰वलम्बियोंके माने हुये देवोंका विशेष सुना। विचार करनेमें चतुर है आशय जिनका ऐसे पुरुषोंको चाहिये कि अपने विचारके बलसे ऐसे रागी द्वेषी कामी देवोंको छोड़ दें ॥ २८ ॥ हे मित्र ! समस्तदेवोंमें अणिमा महिमादि अष्ट ऋद्धियां प्रसिद्ध हैं. उनमेंसे लघिमा (नीचपणा) नामकी ऋद्धि ही इन देवोंमें विशेषतर देखनेमें आती है ॥ २९ ॥

ब्रह्मा तो महादेवके विवाहमें पुरोहित (विवाहकरानेवाला) बनकर गया था, सो पाणिग्रहण कराते समय पार्वतीके स्पर्शमात्रसे कामसे पीडित हो गया और ॥३०॥ महादेवने नृत्य करते समय ऋषियोंकी कन्याओंको तकलीफ दी, जिससे वह उन ऋषियोंके द्वारा शिश्नच्छेदनकी दुःसह पीडा भोगता हुवा और ॥ ३१ ॥ अहल्याने इन्द्रको, छायाने यमराज और अग्निको, कुंतीने सूर्य्यको, अखंडित नीचपणोंके कार्यमें प्रवर्त्ताया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार लोकमें अनेक देव हैं परन्तु जिसने कामदेवको नष्ट कर दिया, ऐसा लोकसम्मत निर्दोष देव एक भी नहीं है ॥ ३३ ॥ हे

साधु ! अब जैनमतमें गणेशके शिरश्छेदनका जो सच्चा इतिहास है, वह कहता हूं सो सुन-॥ ३४ ॥ जिनमतमें ११ रुद्र माने हैं. उनमेंसे अन्तका रुद्र सात्यकी नामक, मुनिके अंगसे ज्येष्ठा नामकी आर्जिका (जैनसाध्वी) के गर्भसे उत्पन्न हुवा था. सो वह बडा होनेपर मुनिदीक्षा ग्रहण करके दुष्कर तपश्चरणके प्रभावसे अनेक प्रकारकी विद्याओंका स्वामी हो गया ॥ ३५ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें नदियोंका मिलाव (प्रवेश) होता है उसीप्रकार इस धीर मुनिको पांचसौ तो बडी २ विद्यायें और सातसौ छोटी २ विद्यायें प्राप्त हुईं ॥ ३६ ॥ सो वह ग्यारहवां रुद्र जिनमतके अंग चौदहपूर्वोंमेंसे दशवें पूर्वतकका पाठी था. उस दशवें पूर्वमें विद्याओंका (देवांगनाओंका) अपरिमाण विभव देखकर मुनिके व्रतसे चलायमान होगया. सो ठीक ही है, अनेक प्रकारके भोगाभिलाषकरनेवाली स्त्रियोंके द्वारा ऐसा कौन पुरुष है जो व्रतसे चलायमान न होय ? ॥ ३७ ॥ तब उस मुनिने एक जगह विद्याधरोंकी आठ कन्याओंको देखकर उसी वक्त मुनिपनेको छोड दिया और उन कन्याओंके पिताओंसे याचना करनेपर उन्होंने आठों कन्या इस रुद्रको परणाय दीनी ॥ ३८ ॥ परन्तु उस रुद्रके साथ रतिकर्म करनेमें असमर्थ हो, वे आठों ही विद्याधरकी पुत्रियें मरगईं सो नीति ही है कि-जहां विपरीत कार्य्य (ये ओडका विवाह वगैरह) होते हैं, वे सब सत्यानाशकेलिये ही होते हैं ॥ ३९ ॥

होगी, इसप्रकार अहोरात्र आर्तध्यानमें मग्न हो दुःखी ही रहता है ॥ ६२ ॥ नरकसे भी अधिक है असाताकर्मका उदय जिसमें ऐसे कृमिकुल सहित गर्भमें प्राणीजन बारम्बार जन्म लेकर दुःख भोगते हैं ॥ ६३ ॥ बुढापेमें अपना शरीर ही वशमें नहिं रहता तो अन्य कुटुंबी जन तो उस चेतनारहित बुड्ढेके वशमें कैसे होंगे ? ॥६४॥ जिसका नाम सुनते ही चित्तमें कंपकंपी छुटती है, ऐसा मृत्यु साक्षात आनेपर किसको भय वा दुःख नहीं होता ? ॥६५ उपसर्ग, महारोग, पुत्र मित्र और धनके क्षयहोनेपर अल्पज्ञ जीवोंके ही प्राणहारी विषाद होता है ॥ ५६ ॥ अपने पास होना असंभव है, ऐसी परकी संपत्तिको देखनेसे ज्ञानशून्य पुरुषोंके दुःखदायक आश्चर्य होता है ॥ ६७ ॥ समस्त अशुचियोंका घर त्यागनेयोग्य ग्लानिकारक कुत्सित शरीरमें कुत्तेकी समान नीच पुरुष ही रत होते हैं ॥ ६८ ॥ व्यापार करनेसे देहको नष्ट करनेवाला, व विकल करनेवाला स्वेद [पसीना] बल रहित जीवोंके होता है ॥ ६९॥ जिसप्रकार अग्निसे घृतका घडा पिघल जाता है; उसीप्रकार व्यापारसंबन्धी असह्य परिश्रमके कारण शीघ्र ही मनुष्यका शरीर खेदमयी हो जाता है ॥ ७० ॥ जो पुरुष निद्राके वशीभूत होता है, वह मदिरासे उन्मत्तकी तरह समस्त व्यापाररहित हो अपने हिताहितको नहीं जानता ॥ ७१ ॥ इसप्रकार अठारह दोष महादुःखके कारण हैं.

समान उसके हाथके लगा ही रह गया. नीचे नहिं गिरा ॥ ४६-४७ ॥ इसप्रकार वह ब्राह्मणी विद्या उसकी विद्या-साधनेरूप जापादिक्रियाको व्यर्थ [नष्ट] करके अपनी विक्रियाको संकोच कर चली गई. सो ठीक ही है निरर्थक [निकम्मे] पुरुषके निकट कोई भी स्त्री नहिं रहती है ॥ ४८ ॥ तत्पश्चात् उस रुद्रने रात्रिके समय वर्द्धमान भगवानको श्मशान भूमिमें पद्मासनसे ध्यानारूढ देखकर उनको विद्यारूपी मनुष्य समझ बड़ा उपद्रव किया ॥ ४९ ॥ जब प्रातःकाल होनेपर मालूम हुवा कि ये तो वर्द्धमान भगवान हैं, तब उसने उदास होकर नमस्कारपूर्वक बड़ा पश्चात्ताप किया और शीघ्र ही उनके चरणोंका स्पर्शन किया ॥ ५० ॥ सो जिनेंद्र भगवानके स्पर्शनमात्रसे ही उसके हाथमेंसे विनयवानके मनसे पापके समान वह गधेका शिर गिर पड़ा ॥ ५१ ॥ हे मित्र ! खरमस्तकके कटनेका तो यह प्रकार [सच्चा इतिहास] है, परन्तु मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अंधे हुये पुरुषोंने और ही प्रकारसे प्रसिद्ध करके जगत्के भोले भाले जीवोंको बहका दिया है ॥५२॥ हे मित्र ! तुम्हें मैं फिर भी बड़ा कौतुक दिखाता हूं ऐसा कहकर मनोवेगने नग्नमुद्रा धारी जैनके मुनिका रूप धारण किया और पवनवेगको साथ लेकर उस चतुर धर्मात्मा मनोवेगने पश्चिमकी तरफसे उस पुष्पनगर (पटने) में प्रवेश किया ॥ ५३-५४ ॥ और तीसरी वादशालामें जाकर ब्राह्मणोंके मनमें वादीके

आनेकी सूचना करनेकेलिये वादसूचक भेरीको बजाकर सोनेके सिंहासनपर जा बैठा ॥ ५५ ॥ जिसप्रकार मेघकी गर्जना सुनकर अपनी गुफामेंसे केशरी सिंह निकलते हैं, उसी प्रकार उस भेरीके शब्दको सुनते ही पक्षपातमें तत्पर सबके सब ब्राह्मण पंडित अपने २ घरसे निकल पडे ॥५६॥ उन ब्राह्मणोंने आकर पूछा कि हे भद्र ! तुम हमारे साथ कौनसा वाद करना चाहते हो ? तब मनोवेगने कहा कि हे विप्रो ' वाद ' किस चीजको कहते हैं, सो मैं नाम भी नहीं जानता ॥ ५७ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-जब वादका नाम ही नहिं जानता तो वादसूचक भेरी किसलिये बजाई ? तब मनोवेगने कहा कि-हे ब्राह्मणो ! मैंने यों ही कौतुकसे बजा दी और ॥ ५८ ॥ जन्मसे आजतक मैंने ऐसा मनोहर आसन नहिं देखा था, इसकारण मैं इसपर बैठ गया, न कि वादके गर्वसे. इसलिये आप क्रोध न कीजिये. लो मैं उतर जाता हूं ॥ ५९ ॥ तत्पश्चात् ब्राह्मणोंने कहा कि-तेरा गुरु कौन है सो कहो. मनोवेगने कहा कि-मेरा गुरु कोई भी नहीं है, मैने अपने आप ही तपग्रहण कर लिया है ॥ ६० ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-हे सुबुद्धे ! तुमने विना गुरुके अपने आप ही तप ग्रहण किया सो इसका क्या कारण है ? ॥६१॥ तब मनोवेगने कहा कि-हे द्विजो ! मैं इसका कारण कहते डरता हूं परन्तु तो भी आपसे एकबात कहता हूं, सो सुनो ॥ ६२ ॥

चम्पानगरीमें गुरुवर्मराजाके मंत्री हरिनामकद्विजने एक दिन पानीमें एक शिला तैरती हुई देखी. उस समय उसके पास दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था ॥ ६३ ॥ उसने राजसभामें आकर यह प्रत्यक्ष देखाहुवा आश्चर्य राजाके सन्मुख प्रगट किया तो राजाने इसपर कुछ भी विश्वास नहिं किया, किंतु उलटा क्रोधित होकर इस असत्य कथनके अपराधमें मंत्रीको बन्धवा दिया और कहा कि—इस ब्राह्मणके अवश्य ही कोई पिशाच (भूत) लग गया है. यदि ऐसा नहिं होता तो यह ऐसी असंभव बात कदापि नहिं कहता ॥ ६४–६५ ॥ तत्पश्चात् उस मंत्रीने कहा कि—हे देव ! मैंने यह बात झूठ ही कह दी थी, सो अपराध क्षमा करें. इसप्रकार प्रार्थना करनेपर राजाने मंत्रीको छोड़ दिया ॥ ६६ ॥ फिर मंत्रीने इसका बदला लेनेकी इच्छासे कई एक बंदरोंको बाजा बजाना और नाचना गाना सिखाकर तयार किया फिर ॥६७॥ एकदिन बागमें राजाको अकेला देख उन बंदरोंका मनोहर संगीत कराया. जिसको देखकर राजा मोहित होगया ॥ ६८ ॥ जब राजाने तुरंत ही अपने मंत्री और भट्टोंको वह संगीत दिखानेकेलिये बुलाया तो इतनेमें ही वे सब बंदर अपना संगीत बंद करके इधर उधर भाग गये ॥ ६९ ॥ तब मंत्रीने कहा कि, हे भट्टगणो ! राजाको अवश्य ही कोई भूत लग गया है, सो इनको बांध लो, योद्धाओंने उसी वक्त राजाको बांध-

लिया. तत्पश्चात् उस तुष्टचित्त मंत्रीने हंसकर राजाको छोड दिया और कहा कि–हे राजन् जिसप्रकार आपने बागमें बंदरोंका नृत्य देखा, उसी प्रकार मैंने भी जलमें तरती हुई शिला देखी थी ॥ ७०–७२ ॥ राजा और मंत्रीके वृत्तांतको जाननेवाले विद्वानोंको चाहिये कि प्रत्यक्ष देखा हुआ भी अश्रद्धेय वचन कदापि नहिं कहैं ॥ ७३ ॥ इसीप्रकार हे ब्राह्मणो ! साक्षीविना मुझ अकेलेके कहे हुये वाक्यका आप विश्वास नहिं करैंगे. इस कारण मैं पूछने पर भी अपने हालात नहिं कह सक्ता ॥ ७४ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र ! क्या हम ऐसे मूर्ख हैं ! जो युक्तिसे घटते हुये वाक्यको भी नहिं पहचानें ! ॥ ७५ ॥ तब मनोवेगने कहा कि–यदि आप सत्यासत्यका विचार करनेवाले हैं तो मैं स्पष्टतया कहता हूं सो एक चित्त होकर सुनो ॥

श्रीपुरमें मुनिदत्तनामक श्रावक मेरा पिता है. उसने मुझे एक ऋषिके पास पढनेकेलिये भेज दिया ॥ ७७ ॥ एक दिन उस ऋषिने अपना कमंडलु देकर मुझे जल लानेकेलिये भेजा. मैं मार्गमें लडकोंके साथ बहुत देरतक खेलनेमें लग गया ॥ ७८ ॥ तब कई विद्यार्थियोंने आकर कहा कि–तेरे पर गुरूजी बडे क्रोधित होगये हैं, सो हे मित्र ! भाग जा, नहीं तो गुरुजी आकर तुझे बहुत मारैंगे ॥ ७९ ॥ तब मैंने अन्य नगरोंमें भी पढानेवाले साधु अनेक हैं, उनसे पढलूंगा, ऐसा विचारकर मैं वहांसे भागाहुवा दूसरे नगर

को चल दिया ॥ ८० ॥ सो एक नगरके निकट पहुंचा तो जलके निर्झरने सहित चलतेहुये पर्वतकी समान अपने मदरूपी जलसे पृथिवीको सींचते हुये एक बहुत बडे हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥ ८१ ॥ सो शरीरसहित अनिवार्य मृत्युकी समान मुझे देख क्रोधित होकर महावतके अंकुशको न माननेवाला वह महाभयंकर हाथी अपना विस्तीर्ण सुंड पूंछ और कानोंको चलायमान करता हुवा मेरे पीछे भागने लगा ॥८२॥ तत्पश्चात् कोई शरण न पाकर भागनेमें असमर्थ हो मैंने वह कमण्डलु तो भिंडीके एक वृक्षपर रख दिया और मारे डरके मैं कांपने लगा ॥ ८३ ॥ दैवयोगसे उसी समय मेरे चित्तमें एक बुद्धि उपजी कि—मैं उस हाथीके भयसे झट पट उस कमंडलुकी नाल (टोंटी) से कमंडलुमें प्रवेश कर छिप गया और 'इस कष्टसे मैं मुक्त हो गया' इस प्रकार क्षणभर प्रसन्नचित्त हो विचार रहा था कि—इतनेमें ही ॥ ८४ ॥ वह विरुद्ध-चित्त गजराज भी शीघ्र ही उस कमंडलुमें प्रवेश करके क्रोधित हो मेरे रोते हुयेके वस्त्र खेंचकर अपनी सूंडसे मेरी धोतीको फाडने लगा ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात् उस हाथीको वस्त्रके फाडनेमें लगा हुवा देख मैं तो व्याकुल होकर शीघ्र ही कमंडलुके ऊर्ध्वभागसे [मुखके छिद्रसे] बाहर निकल आया, सो ठीक ही है, जीते रहते कोई न कोई बचनेका उपाय निकल ही आता है ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात वह हाथी

भी उसी रस्तेसे निकल आया परन्तु उस कमंडलुके मुखमें हाथीकी पूंछका एक बाल अटक गया, जिसको निकालनेमें असमर्थ होकर वह हाथी दुःखित व विपण्णचित हो वहीं पर गिर पड़ा ॥ ८७ ॥ उस हाथीको जमीनपर पड़ा हुवा देखकर मैंने कहा कि—रे दुर्मते ! रे शत्रु ! तू अब यहीं पर मर, इस प्रकार कह कर मैं भय और कांपनेसे रहित प्रसन्नचित्त हो उस नगरमें पहुंचा ॥ ८८ ॥ उस नगरमें एक मनोहर जिनमंदिर देखा. उसमें जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करके मार्गके परिश्रमसे वहां पर नंगा ही जमीनपर शयन कर रात्रि बिताई ॥ ८९ ॥ मुझे पहरनेको कपड़ा कौन देगा ? और नग्न शरीर रहते मांग ही कैसे सक्ता हूं ? इस कारण अपने कुल आम्नायसे चला आया तपश्चरण करना ही श्रेष्ठ है, इसप्रकार बहुत समय तक विचार कर मैं वैसाही दिगम्बर मुनि हो गया ॥ ९० ॥ तत्पश्चात् अनेक पुर नगर ग्रामोंमें सैर करता करता आज आपके इन विद्वज्जनोंसे भरे हुये पत्तनमें आ निकला ॥ ९१ ॥ इस प्रकार मैंने अपने आप ही व्रत ग्रहण करनेका कारण संक्षेपमें ही आपको कह सुनाया. विद्याधरके ये वचन सुनते ही वे सबके सब ब्राह्मण हंसीसे विकसित मुख हो बोले ॥ ९२ ॥ हे दुर्मते ! हमने असत्य भाषण करनेमें चतुर अनेक प्रकारके मनुष्य देखे हैं परन्तु तेरी समान असत्य कहनेवाला कोई भी नहिं देखा, जो मुनिव्रत धारण करके झूंठ बोलता है ?

॥ ९३ ॥ मिट्टीके वृक्षकी शाखा [डाली] पर कमंडलुका रक्खा जाना और उसमें हाथीका प्रवेश करना, फिरना और निकलना आजतक इस तीन लोकमें क्या किसीने भी देखा या सुना है ? ॥ ९४ ॥ हे दुर्मते ! कदाचित् अग्निमें जल, शिलापर कमल, गधेके सींग, सूर्यमें अन्धकार और कमलपत्रोंमें चलना हो जाय परन्तु तेरे वचनकी सत्यता तो कदापि नहिं हो सक्ती ॥ ९५ ॥ यह सुनकर विद्याधरने कहा कि—हे ब्राह्मणों ! बडा आश्चर्य है कि—ऐसे असत्य-भाषी केवल हम ही हैं ? क्या तुम्हारे मतमें ऐसे २ अनिवार्य असत्य वचन नहीं हैं ? ॥ ९६ ॥ इस लोकमें प्रायः सब जने परके ही दोष देखते हैं अथवा अपने असत्यपनको पोषण करनेवाले ही दीखते हैं किन्तु परके गुणोंको बुद्धिको विस्तार करनेवाला पक्षपात रहित अमित ज्ञानका धारक कोई विरला ही होता है ॥ ९७ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्यविरचितधर्मपरीक्षा संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें बारहवां परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

अथानंतर सूत्रकंठोंने [ब्राह्मणोंने] कहा कि–हे भद्र! यदि तूने ऐसी असंभव बात हमारे वेद या पुराणोंमें देखी हो तो कह ॥ १ ॥ यदि पुराणोंमें ऐसी असंभवता निकल आवेगी तो हम पुराणोंका कथन कदापि ग्रहण नहिं करेंगे क्योंकि न्यायनिपुण पुरुष कहीं भी न्यायरहित वचनको ग्रहण नहिं करते ॥ २ ॥ यह सुनकर ऋषिरूपके धारक मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो ! बेशक मैं जानता हूं और कहूंगा परन्तु कहते हुये डरता हूं. क्योंकि जब मैंने अपना वृत्तांत कहा, तब तो तुम रुष्ट होगये और तुमारे वेद पुराणोंके विषयमें कहूंगा तो न मालूम तुम क्या कर बैठो ? ॥ ॥ ३–४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि–तुम निर्भय होकर कहो यदि तुमारे वचनोंकी सदृश कहनेवाला कोई शास्त्र होगा तो हम उस शास्त्रको अवश्य ही छोड देंगे ॥ ५ ॥ तब मनोवेगने कहा कि–यदि तुम विचारवान हो तो लो, मैं कहता हूं, एक चित्त होकर सुनो ॥ ६ ॥

एक समय युधिष्ठिरने सभामें कहा था कि–कोई ऐसा पुरुष है जो पातालमेंसे फणीन्द्रको ले आवे ? ॥ ७ ॥ तब अर्जुनने कहा कि–हे देव ! आपकी आज्ञा होय तो पातालमें जाकर सप्त ऋषिसहित फणीश्वरको मैं ला सक्ता हूं ! ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् अर्जुनने गांडीव धनुषके द्वारा तीक्ष्ण मुखवाले शरोंसे कामसे वियोगिनी स्त्रीकी समान पृथिवीको भेदकर छिद्र किया तत्पश्चात् रसातलमें जाकर दश करोड

सेनासहित शेषनाग और सप्त ऋषियोंको ले आया ॥१०॥ अनोवेगने कहा कि—क्यों विप्रो ! आपके शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि नहीं ? तब ब्राह्मणोंने कहा कि—बेशक ! ऐसा ही लिखा है ॥ ११ ॥ तब मनोवेगने कहा कि—जब बाणके द्वारा किये हुये सूक्ष्म छिद्रसे दश करोड सेनासहित शेषनाग आता है तो हे विप्रो ! कमंडलुके छिद्रमेंसे हस्ती कैसें नहिं निकलेगा ? सो पक्षपात छोडकर शीघ्र ही कहो ॥ १२–१३ ॥ आपका शास्त्र तो सच्चा और मेरा वचन झूठा है सो इसमें सिवाय पक्षपातके दूसरा कोई कारण प्रतीत नहिं होता ॥ १४ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—कमंडलुके छिद्रमेंसे हाथीका और तेरा निकलना तो हमने शेषनागके आने जानेकी समान प्रमाण किया परन्तु इतना बडा हाथी उस कमंडलुमें कैसे समाया ? तथा हाथीके भारसे मिट्टीका वह कैसें नहिं टूटा ? तथा कमंडलुके मुखसे जब हाथीका पुष्ट शरीर निकल गया तो पूंछका बाल कैसें अटक रहा ? सो हे भद्र ! यह वचन तो तेरा हम कदापि नहिं मान सक्ते । तब मनोवेगने कहा कि—यह वचन मेरा सत्यतया सत्य है क्योंकि—आपके आगममें सुना गया है कि—एक बार अंगुष्ठके बराबर अगस्त्य मुनिने समुद्रका समस्त जल तीन चुल्लूमें भरकर पी लिया था ॥ १५–१८ ॥ जब अगस्त्य मुनिके उदरमें समस्त समुद्रका जल समागया तो हे विप्रो ! मेरे कमंडलुमें हाथी कैसें नहिं समासक्ता ॥१९॥

करता २ आज आपके इस पत्तनमें आया हूं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सुनकर क्रोधके साथ होठोंको चबाते हुये ब्राह्मण बोले कि—अरे दुष्ट! तूने इस प्रकार असत्य बोलना कहां सीखा! ॥ ४३ ॥ मालूम होता है कि—ब्रह्माजीने जगत की समस्त असत्यता इकट्ठी करके ही तुझे बनाया है, नहीं तो इसप्रकार असम्भव कार्यको वृथा ही क्यों कहता? ४४ तब मनोवेगने कहा कि—हे विप्रो! आप इसप्रकार क्यों कहते हो? आपके पुराणोंमें क्या ऐसे कार्य नहीं हैं? ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि हे भद्र! तूने हमारे वेद या पुराणोंमें ऐसा असम्भव देखा हो तो बता? ॥४६॥ तब मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो! मैं कहूंगा परन्तु तुम लोग विना विचारे ही मेरे समस्त वचन ग्रहण करो तो तुमसे कहते हुये डरता हूं ॥ ४७ ॥ क्योंकि आपके वेद और पुराणोंमें पदपदपर ब्रह्महत्या है तो तुम सुभाषित कहे हुयेको किसप्रकार ग्रहण करोगे ॥ ४८ ॥ जैसे आपके आगममें कहा है कि—पुराण, मानवधर्म (मनुस्मृतिमें कहा हुवा धर्म) अंगसहित वेद और चिकित्सा ये चार आज्ञासिद्ध हैं, इनको हेतुसे खण्डन नहिं करना चाहिये ॥४९॥ तथा मनु व्यास वशिष्ठके वचन वेदानुकूल ही हैं, इनके वचनोंको जो अप्रमाण करते हैं, उनको बडी भारी ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५० ॥ जो सदोष वचन होते हैं, उनमें ही हेतु लगानेका निषेध किया जाता है. क्योंकि—निर्दोष सुवर्ण

उत्कंठित हो रहा है, सो ठीक ही है, बाल्यकोंका विरह
सबको ही असह्य होता है ॥ ३० ॥ तब विष्णुने कहा
कि—तू वृथा ही क्यों दुःखी होता है? मेरे उदरमें प्रवेश
करके आनन्दके साथ अपनी समस्त सृष्टिको देखले ॥३१॥
तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु भगवानके उदरमें प्रविष्ट हो अपनी
सृष्टिको देखकर बहुत ही हर्षित हुआ, सो उचित ही
है, कि—सन्तानके देखनेसे किसका चित्त हर्षित नहीं होता?
॥ ३२ ॥ विष्णुके उदरमें बहुत कालपर्यंत अपनी समस्त
सृष्टिको देखकर ब्रह्माजी विष्णुकी नाभिकमलके छिद्रसे
निकले परन्तु निकलते समय वृषणके बालका एक अग्र-
भाग अटक गया. तब लज्जित होनेसे आगेसे उसको
निकालनेमें असमर्थ हो उसी बालाग्रको कमल बनाकर
वहीं पर अपना आसन जमाकर बैठ गये. सो ठीक ही है,
विश्वव्यापिनी माया देवोंको भी नहिं छोडती ॥ ३३—
३४ ॥ उसी दिनसे ब्रह्माजीका पद्मासन नाम जगतमें
प्रसिद्ध हुआ. सो ठीक ही है, महापुरुषोंका किया हुआ
प्रपंच [कपट] ही जगतप्रसिद्ध होता है ॥३६॥ हे विप्रो!
आपके पुराणोंमें ऐसा कथन है कि नहीं? सो निष्पक्ष-
भावसे कहो? क्योंकि सत्पुरुष होते हैं, वे कदापि असत्य-
वादी नहिं होते ॥ ३७ ॥ तब अवनीदेव [ब्राह्मण] बोले
कि—निःसन्देह इसप्रकार कथन हमारे पुराणोंमें प्रसिद्ध
है. हे भद्र! ऐसा कौन है जो प्रकाशमान सूर्यको छिपा

सके ? ॥ ३८ ॥ तब मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! जब ब्रह्माका केश नाभिके छिद्रमें अटक गया तो हाथीकी पुंछका बाल कमंडलुके छिद्रमें कैसे नहिं अटक सक्ता ॥ ३९ ॥ जब समस्त सृष्टिसहित कमंडलुके भारसे अलसीके वृक्षकी शाखा नहिं टूटी तो एक हस्तीके भारसे मेरा भिंडीका वृक्ष कैसे टूट सक्ता है ॥ ४० ॥ जब अगस्त्यके सरसों बराबर कमंडलुमें समस्त सृष्टि समा गई तो हे ब्राह्मणो ! मेरे बडे कमंडलुमें मुझसहित हस्ती कैसे नहिं समावैगा ? ॥ ४१ ॥ कुछ विचार तो करो कि—विष्णुने जगतको पेटमें रखकर वह विना जगतके कहां बैठा ! और अगस्त्यमुनि ही कहांपर बैठा था और अलसीका वृक्ष ही कहां पर रहा और ब्रह्माजी, पृथिवीके विना ही सृष्टिको ढूंढते हुये कहां फिरे ॥ ४२ ॥ बडा आश्चर्य है कि—पृथिवीके रहते भिंडीके वृक्षपर हाथी सहित मेरे कमंडलुका रहना तो असत्य और आपका बेशिरपांवका कथन सत्य, यह कैसा न्याय है ॥ ४३ ॥ जो ब्रह्मा सर्वज्ञ है व्यापक है चराचर पदार्थोंको जाननेवाला है तो उस ब्रह्माने सृष्टि कहां है सो कैसे नहीं जानी, जो ढूंढता फिरा ॥ ४४ ॥ जो ब्रह्मा शीघ्र ही नरकसे प्राणियोंको खैंचकर ला सक्ता है, वह ब्रह्मा अपने वृषणके केशको कैसे नहिं छुटा सका ॥ ४५ ॥ जो विष्णु समस्त पृथिवीको प्रलय होता जानकर रक्षा करता है, उसने सीताके हरणको कैसे नहीं जाना

और क्यों नहीं रक्षा की ॥ ४६ ॥ जो लक्ष्मण समस्त जगतको मोहित कर सक्ता है, वह श्रीपति लक्ष्मण इन्द्र-जीतके द्वारा मोहित होकर नागपाशमें कैसे बांधा गया ॥ ४७ ॥ जिस विष्णुके स्मरणमात्रसे समस्त जीवोंकी आपदा नष्ट होना मानते हो, ऐसे विष्णुभगवानको सीताका वियोग होना वगैरह दुःख कैसे प्राप्त हुआ ? और जो अपनी आपदा ही दूर नहीं कर सक्ता, वह दूसरोंकी आपदा किसप्रकार दूर कर सक्ता है ? ॥ ४८ ॥ जिस रामचन्द्रने नारदको अपने दशजन्मकी वार्ता कही, वह राम फणिपतिसे अपनी कांता सीताका हाल क्यों पूछै ? कि—॥४९॥ "हे फणिराज ! जिसके कमलसमान हाथ पांव और मुख या. रूपत्व,वयकी नदी गुणोंकी खान ऐसी मेरी स्त्री तुमने कहीं देखी ?" ॥५०॥ जो लोग अनादिकालसे मिथ्यात्वरूपी हवासे टेढे किये गये हैं, उनको सैकड़ों जन्ममें भी सरल करनेको कौन समर्थ है ? ॥ ५१ ॥ क्षुधा १ तृषा २ भय ३ द्वेष ४ राग ५ मोह ६ मद [गर्व] ७ रोग ८ चिंता ९ जन्म १० जरा ११ मृत्यु १२ विषाद १३ विस्मय १४ रति १५ स्वेद १६ खेद १७ निद्रा १८ ये अठारह दोष सर्वसाधारणके मुख्यतया दुःखके हैं. सो हम भिन्न २ कहते हैं ॥ ५२—५३ ॥ क्षुधारूपी अग्निसे तप्तायमान होकर मनुष्यका शरीर तुरन्त ही सूख जाता है. तथा पांचों इंद्रियें भी अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्ति नहिं

करतीं और ॥ ५४ ॥ तृष्णासे पीडित होनेवालेका विलास विभ्रम [कटाक्ष] हास्य संभ्रम [विनय] कौतुक आदि समस्त शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ पवनसे हने हुवे सूखे पत्तोंकी समान भयसे समस्त शरीर कम्पित होकर वचनशक्ति नष्ट हो जाती है और समस्त विषय विपरीत दीखते हैं और ॥ ५६ ॥ जो पुरुष द्वेषी है, वह बिना कारण ही सबके दोषोंको ग्रहण करता है, तब वह नष्टबुद्धि क्रोधित हो जाता है. और किसीको भी नहीं मानता ॥ ५७ ॥ जो नीच कामातुर होता है, वह पंच इंद्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो अन्य प्राणीको पीडा करता है तथा युक्त अयुक्तको कुछ भी नहीं देखता ॥ ५८ ॥ जिनके पीछे मोहरूपी पिशाच लग जाता है, वह पुरुष मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा घर और बान्धव भी मेरे हैं, इसप्रकार करता हुवा मोहित (अज्ञानी) हो जाता है ॥ ५९ ॥ जो पुरुषमद सहित है, वह दुराचारी ज्ञान (विद्या) जाति कुल ऐश्वर्य तप रूप बल आदिके गर्वसे सबका अनादर करने लग जाता है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य वातपित्तकफजनित रोगरूपी अग्निसे तप्तायमान होता है, वह शरीरके द्वारा पराधीन होकर कदापि सुखको प्राप्त नहीं होता ॥ ६१ ॥ जो नर चिंतातुर होता है, वह मित्र कैसे होगा, धन कैसे होगा, पुत्र कैसे होंगे, प्रिया कैसे होगी, मेरी प्रसिद्धि कैसे होगी, अमुकसे प्रीति कैसे

होगी, इसप्रकार अहोरात्र आर्तध्यानमें मग्न हो दुःखी ही रहता है ॥ ६२ ॥ नरकसे भी अधिक है असाताकर्मका उदय जिसमें ऐसे कृमिकुल सहित गर्भमें प्राणीजन बारम्बार जन्म लेकर दुःख भोगते हैं ॥ ६३ ॥ बुढापेमें अपना शरीर ही वशमें नहिं रहता तो अन्य कुटुंबी जन तो उस चेतनारहित बुड्ढेके वशमें कैसें होंगे ? ॥६४॥ जिसका नाम सुनते ही चित्तमें कंपकंपी छुटती है, ऐसा मृत्यु साक्षात आनेपर किसको भय वा दुःख नहीं होता ? ॥६५ उपसर्ग, महारोग, पुत्र मित्र और धनके क्षयहोनेपर अल्पज्ञ जीवोंके ही प्राणहारी विषाद होता है ॥ ५६ ॥ अपने पास होना असंभव है, ऐसी परकी संपत्तिको देखनेसे ज्ञानशून्य पुरुषोंके दुःखदायक आश्चर्य होता है ॥ ६७ ॥ समस्त अशुचियोंका घर त्यागनेयोग्य ग्लानिकारक कुत्सित शरीरमें कुत्तेकी समान नीच पुरुष ही रत होते हैं ॥ ६८ ॥ व्यापार करनेसे देहको नष्ट करनेवाला, व विकल करनेवाला स्वेद [पसीना] बल रहित जीवोंके होता है ॥ ६९॥ जिसप्रकार अग्निसे घृतका घडा पिघल जाता है; उसीप्रकार व्यापारसंबन्धी असह्य परिश्रमके कारण शीघ्र ही मनुष्यका शरीर खेदमयी हो जाता है ॥ ७० ॥ जो पुरुष निद्राके वशीभूत होता है, वह मदिरासे उन्मत्तकी तरह समस्त व्यापाररहित हो अपने हिताहितको नहीं जानता ॥ ७१ ॥ इसप्रकार अठारह दोष महादुःखके कारण हैं.

दया ॥ ९२ ॥ उस दिन अनेक देवांगनाओंसहित इन्द्राणीकी सदृश गुणोंकी राजधानी अतिशय सुन्दर रघुराजाकी चंद्रमतीनामा कन्या अपनी सखियों सहित चतुर्थस्नान करनेके लिये गंगास्नानको आई ॥ ९३ ॥ सो स्नान करते समय उस वीर्यसहित कमलको सूंघनेपर वह वीर्य्य उस चंद्रमतीके उदरमें चला गया सो जलसे सीपकी समान उस चंद्रमतीके अपरस्त देहयष्टिको बढाता हुवा गर्भाधान हो गया ॥ ९४ ॥ उस कुमारी कन्याको गर्भवती देखकर उसकी माताने यह वृत्तांत रघुराजाको निवेदन किया. राजाने तुरन्त ही उस चंद्रमती कन्याको वनमें छुडवा दिया. सो ठीक ही है, सत्पुरुष अपने गृहकलंकसे डरते ही रहते हैं ॥ ॥ ९५ ॥ तत्पश्चात् उस कुमारीने तृणबिंदु नामा मुनिके आश्रममें धनको नाश करनेवाली दुर्नीतिके सदृश निर्मलकीर्तिको नष्ट करनेका कारण नागकेतु नामा पुत्रको जना ॥ ९६ ॥ उस बालाने उद्विग्नचित्त हो उसीवक्त अपने पुत्रसे कहा कि–" जा तू अपने पिताको अन्वेषण कर " ऐसा कहकर उसीवक्त संदूकमें रखकर गंगाजीमें छोड दिया ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् उसी विशुद्धज्ञानी उद्दालक ऋषिने गंगाजीमें संतरण करके बहती हुई संदूकमें अपने वीर्य्यसे उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर ग्रहण किया ॥ ९८ ॥ फिर वह चंद्रमती भी अपने पुत्रको ढूंढती हुई उस ऋषिके पास आई. ऋषिने प्रसन्नताके साथ उस बालकको दिखाकर

जलके भीतर अपना वीर्यक्षेपण किया. उससे एक बुदबुदा उठकर उससे एक जगदंडक (जगतको पैदाकरने वाला एक अंडा) पैदा हुवा ॥ ७९ ॥ उस अंडेका दो खण्ड करनेपर तीनलोककी (सृष्टिकी) उत्पत्ति हो गई. सो यदि ऐसा आपके आगममें (शास्त्रोंमें) कहा है तो यह बताइये कि—सृष्टि होनेसे पहिले जल किसके ऊपर था ॥ ८० ॥ नदी पर्वत पृथिवी इत्यादिकोंकी उत्पत्तिके उपादान कारणोंके अभावस्वरूप आकाशमें पृथिवी नदीपर्वतादि पदार्थोंकी उत्पत्तिकारक सामग्री कहांपर मिली ? ॥ ८१ ॥ क्योंकि जिस आकाशमें (सृष्टिसे पहिले) एक शरीरको उत्पन्न करनेकी सामग्रीका मिलना भी दुर्लभ है, उसमें तीनलोकके कारणभूत मूर्त्तिक पुद्गल द्रव्यकी प्राप्ति किसप्रकार हो सक्ती है ? ॥ ८२ ॥ शरीररहित ब्रह्माने सृष्टिको किस प्रकार बनाया । क्योंकि जो स्वयं शरीररहित [अमूर्त्तिक] है, वह अन्य शरीरको (मूर्त्तिक पदार्थको) कदापि नहिं बना सक्ता ॥ ८३ ॥ दूसरे सृष्टिको उत्पन्न करके वही ब्रह्मा नाश करता है तो उसको जो लोककी हत्याका (अपनी संतानके मारनेका) महापाप होता है, वह किसप्रकार दूर किया जा सक्ता है ? ॥ ८४ ॥ जो परमात्मा (ब्रह्मा) कृतकृत्य, शुद्ध, नित्य, अमूर्तिक सर्वज्ञ है तो उसको सृष्टि रचनेसे क्या लाभ है ॥ ८५ ॥ जो सृष्टि विनाश करने योग्य है तो उसका उत्पन्न करना ही व्यर्थ

है. क्योंकि पुनः पुनः विनाश करके विनाशनीय जगतके उत्पन्न करनेमें कोई फल नहीं है ॥ ८६ ॥ इसप्रकार तुमारे समस्त पुराण पूर्वापर विरोधसे भरे हुये हैं, सो हे विप्रो ! न्यायनिष्ठ विद्वज्जन उनपर कैसे विश्वास करें ॥ ८७ ॥ इसप्रकार मनोवेगके कहनेपर ब्राह्मणोंको कोई उत्तर नहिं आया, तब वह मनोवेग वहांसे निकलकर बागमें आया और अपने मित्र पवनवेगसे कहने लगा कि— ॥ ८८ ॥ हे मित्र ! तूने वेदोंका विशेष व पुराणोंका अर्थ सुना कि कैसे हैं जो विचारवान हैं, उनको तो इन पुराणों व वेदोंमें कुछ भी सार नहिं दीखता ॥ ८९ ॥ ऐसा कौन पुरुष है जो नारायणको चतुर्भुज ब्रह्माको चतुर्मुख व महादेवको त्रिनेत्री विश्वास करे, या प्रतिपादन करे ॥ ९० ॥ जगतमें सबके एक मुख दो हाथ और दो नेत्र ही दीखते हैं. परन्तु मिथ्यात्वसे आकुलित लोक कुछका कुछ बक देते हैं ॥९१॥ हे मित्र ! यह लोक अनादि निधन आकाशमें स्थिर और अकृत्रिम है. आकाशकी समान इसका भी कोई कर्ता हर्ता नहीं है ॥ ९२ ॥ इसलोकमें अपने २ कर्मोंकर प्रेरे हुये प्राणीमात्र सर्वदा पवनसे सूके पत्तोंकी सदृश सुखदुःख भोगते हुये परिभ्रमण करते रहते हैं ॥ ९३ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र अपने दुःख भी नष्ट नहिं कर सके, वे दूसरोंके दुःख नष्ट करनेमें कारण (समर्थ) हैं. इस बातको बुद्धिमान किसप्रकार विश्वास कर सक्ते हैं क्योंकि ॥९४॥

जो आलसी अपने ही जलते हुये घरको नहिं बुझाता वह अन्यके घरको बुझावेगा। इस बातको शुभमति पुरुष किसी प्रकार भी हृदयमें श्रद्धान नहिं कर सके ॥ ९५ ॥ जो देव रागद्वेष भय मोहादिकसे मलिन होकर अपने सुखदायक पदार्थोंको नहिं जानते, वे नष्टबुद्धि दूसरोंको शाश्वत सुखका कारणभूत मोक्षमार्गका उपदेश कैसे करेंगे ॥ ९६ ॥ आश्चर्य है कि—इस लोककी स्थिति तो और ही प्रकार है, और पापभावके वशीभूत नष्टबुद्धि खलपुरुषोंने औरका और ही कर दिया है सो उन्होंने दुःखदायक नरकस्थानको नहिं देखा. यदि देखते व जानते तो नरकमें ले जानेवाले ऐसे महापापरूप असत्य वचन कदापि नहिं कहते ॥ ९७ ॥ मत्सरसमुद्रमें पड़नेवाले कुमार्गियोंके द्वारा सत्यार्थ मोक्षमार्ग आच्छादन किया जाता है, उसको जो कोई नष्टबुद्धि नहिं विचारता, वह मोक्षरूपी मंदिरको किसप्रकार जायगा? ॥ ९८ ॥ जो निर्मलबुद्धिके धारक हैं, वे छेदकर तपाकर घसकर और कूटकर सोनेकी परीक्षा किया करते हैं, उसी प्रकार शील संयम तप दया आदिक गुणोंसे अमूल्य धर्मरूपी रत्नकी भी परीक्षा करके ग्रहण करते हैं ॥ ९९ ॥ जो पुरुष देव धर्म गुरु और शास्त्रकी परीक्षा करके निर्दोष देव शास्त्र गुरु आदिकी उपासना करते हैं, वे ही कर्मरूपी दृढ़ बेड़ीको काटकर अविनाशी पवित्र पदको (मोक्षपदको) प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ जो पूजनीय ज्ञानी पुरुष अपने हितकी वांछा करते हैं, उनको

चाहिये कि अपने घमंडको छोड़कर देवसे देवकी, शास्त्रसे शास्त्रकी, धर्मसे धर्मकी और गुरुसे गुरुकी परीक्षा करें १०१ देव तो वह है कि जो समस्तकर्मरहित, सर्वज्ञ और इन्द्र धरणींद्र नरेन्द्रोंकर पूजित हों. धर्म वही है जो कि रागादि दोषोंको नष्ट करनेमें कुशल व दयाप्रधान हो. शास्त्र वही इष्ट है जो कि हेय उपादेय और युक्तिपूर्वक वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट करनेमें निपुण हो और यति कहिये गुरु वही है जो कि अपरिमाणज्ञानका धारक और परिग्रहरहित होकर निर्दोष हो ॥ १०२ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित-धर्मपरीक्षा संस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें तेरहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा॥ १३॥

अथानन्तर वह मनोवेग " हे मित्र ! तुझे और भी कौतूहल दिखाऊंगा " ऐसा कहकर ऋषिका भेष जो किया था वह छोड़ता हुवा ॥ १ ॥ तत्पश्चात् उन दोनोंने तपस्वी का भेष बनाकर उस पटने नगरमें उत्तरकी तरफसे प्रवेश किया और ॥ २ ॥ एक अन्यवादशालामें जाकर घंटेकी भेरी बजाकर मनोवेग सुवर्णके सिंहासनपर बैठ गया भेरीके सुनते ही समस्त ब्राह्मण आकर बोले कि-हे तापस ! तू कहांसे आया ?॥ ३ ॥ तू व्याकरण जानता है कि

विस्तृत तर्कशास्त्र जानता है ? शास्त्रोंके पारगामी इन ब्राह्मणोंके साथ कौनसा वाद करेगा ? ॥ ४ ॥ तब तापसरूप मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! मैं तो इस अगले ग्रामसे आया हूं, व्याकरण तर्क वा वाद मैं कुछ नहिं जानता॥५॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—हे तपस्वी ! तु हंसी ठट्ठा छोड़कर यथार्थ है सो कह, स्वच्छ पूछनेवालोंके साथ हंसी ठट्ठा करना योग्य नहीं ॥ ६ ॥ तब तापसाकारधारक मनोवेगने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! इसके सिवाय और मैं तुमसे क्या कहूं ? क्योंकि जो निर्विचार दुष्टपुरुष होते हैं, वे युक्तवचन कहते भी अयुक्त समझकर तुरंत ही महा उपद्रव कर बैठते हैं ॥ ७–८ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—हे भद्र ! जो कुछ कहनेयोग्य हो सो कह. यहां पर सब ब्राह्मण विवेकी और युक्तवचनके अनुरागी हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुन कर मनोवेगने कहा कि—यदि आप सब जने विचारी हैं तो मैं अपना यथेच्छ वृत्तांत कहता हूं ॥ १० ॥ साकेत-नगरमें वृहत्कुमारिका नामक मेरी माता मेरे नानाने मेरे पिताको दी सो ॥ ११ ॥ उन दोनोंके विवाहके समय बाजोंका शब्द सुनकर यमराजकी सदृश एक मदोन्मत्त हस्ती जिसमें वह बंधा हुवा था उस स्तंभको तोड़कर भाग आया उसके भयसे विवाहका आनंद छोड़कर सबके सब लोग दशों दिशामें भाग गये. सो ठीक ही है ऐसे महाभयमें स्थिरता कैसे रहे ? ॥ १२ ॥ ऐसे समयमें व्याकुलित

हो वरने भी भागनेकी चेष्टा की तो उसके धक्केसे वह वधू वेहोश हो पृथ्वीपर पड़ गई. यह कौतुक देखकर लोगोंने कहा कि " देखो २ वर वधूको पटककर भागा जाता है " लोगोंके इसप्रकार वचन सुनकर लज्जाके वशीभूत हो मेरा पिता कहींको भाग गया सो फिर नहिं आया ॥ १४-१५ ॥ तत्पश्चात् डेढ महीनेके अनंतर मेरी माताके गर्भका लक्षण प्रगट हुवा और उदरसहित वह गर्भ नव मासपर्यन्त बढता रहा ॥ १६ ॥ मेरी मातामहीने (नानीने) पूछा कि हे पुत्री ! यह पेट किसने बढाया ? तब उसने कहा कि-हस्तीके भयसे भागते समय वरके अंग स्पर्शके सिवाय आजतक मैंने किसी पुरुषको नहिं छुआ. मैं कुछ भी नहिं जानती कि यह क्या हुआ ? ॥१७॥ उस दिन मेरे नानाके घर पर कितने ही तपस्वी आये थे उनको विधिपूर्वक आहारदानकरके मेरे नानाने पूछा कि-" आप लोग कहां जाते हैं " ॥ १८ ॥ उन तपस्वियोंने कहा- कि इस देशमें वारह वर्षका दुर्भिक्ष (अकाल) पडेगा इस कारण हम वारह वर्षकेलिये जहांपर सुभिक्ष है, वहां जाते हैं ॥ १९ ॥ तपस्वियोंने किंचित् उपकारके साथ यह भी कहा कि- " यहां किस कारण भूखों मरता है तू भी हमारे साथ चल" इस प्रकार कहकर वे तपस्वी तो चले गये ॥ २० ॥ मैं माताके गर्भमें रहते ही उनके व माताके समस्त वचन सुनकर चकितचित्त हो अपने चित्तमें

विचारने लगा कि-पृथ्वीपर तो बारह वर्षका दुष्काल पड़ेगा तब गर्भसे निकलकर क्षुधासे पीड़ित हो क्या करूंगा ? ॥ २१-२२ ॥ इस प्रकार विचारकर मैं बारह वर्ष पर्यन्त गर्भमें ही रहा, सो ठीक ही है, क्षुधाके भयसे मनुष्य क्या क्या नहिं करता ? ॥ २३ ॥ जब दुर्भिक्ष दूर होगया तो वे ही तपस्वी मेरे गर्भमें रहते ही मेरे नानाके घर पर आये ॥ २४ ॥ मेरे नानाने तपस्वियोंको नमस्कार करके पूछा तो उन्होंने कहा कि " अब दुर्भिक्ष दूर होगया, सो हम अपने देशको जाते हैं " ॥ २५ ॥ उनके ये वचन सुनकर मैं भी गर्भसे निकलने लगा, उस समय मेरी माता चूलेके पास बैठी थी, सो मेरे प्रसवकी वेदनासे वहीं ओढ़नेको डालकर अचेत हो गई, मैं उसी वक्त गर्भसे निकलकर चूलेकी राखमें गिर गया, मैं बारह वर्षका भूखा था सो उठते ही मैंने एक पात्र लेकर अपनी मातासे कहा कि-हे माता ! मैं बहुत ही भूखा हूं सो मुझे भोजन दे ! ॥ २६-२८ ॥ उस समय मेरे नानाने कहा कि-हे तपस्वियो ! तुमने कहीं ऐसा बालक भी देखा है जो पैदा होते ही भोजन मांगे ? ॥ २९ ॥ उन्होंने कहा कि-यह कोई दरशान है, इसको घरसे निकाल दो, नहीं तो हे भद्र ! तेरे घरमें निरन्तर विघ्न होते रहेंगे ॥ ३० ॥ तब मेरी माताने कहा कि तू मुझे बड़ा दुःखदायक है अतः अब यमके द्वार जा, वहीं तुझे भिक्षा देगा ॥ ३१ ॥ तब मैंने कहा कि हे माता ! तू आज्ञा दे तो

मै चला जाता हूं। माताने कहा, बेशक तू मेरे घरसे निकल जा ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् मैं अपने देहमें भस्म रमाकर मस्तक मुंडा घरसे निकल तपस्वियोंके साथ चल दिया ॥ ३३ ॥ तपस्वियोंमें रहकर मैंने बडा दुष्कर तप किया, क्योंकि चतुर हैं ते कल्याणकारी कार्यको प्रारम्भ करके कदापि प्रमादी नहिं होते ॥ ३४ ॥ एक दिन मैं स्मरण करके साकेतपुर नगरमें गया तो अपनी माता अन्य वरसे व्याही हुई देखी ॥ ३५ ॥ तब मैंने अपना पूर्वसम्बन्ध निवेदन करके तपस्वियोंसे पूछा तो उन्होंने कहा कि एकसे विवाह हुये पीछे अन्य वरसे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रोपदीके पांचों पांडव भर्त्तार थे, तो तेरी माताके दो भर्त्तार होनेमें क्या दोष है ? ॥ ३६-३७ ॥ एकवार विवाह करने पर दैवयोगसे पति मरगया हो तो अक्षतयोनि स्त्रीका फिर से विवाहसंस्कार होना चाहिये ॥ ३८ ॥ यदि पति परदेश में चला गया हो तो प्रसूता स्त्री आठ वर्षतक और अप्रसूता चार वर्षतक पतिके आनेकी राह (बाट) देखकर दूसरा पति करले. केवल ॥ ३९ ॥ विशेषकारण होनेपर पांच पतितक करनेमें भी स्त्रियोंको कोई भी दोष नहीं है। इस प्रकार व्यासादि ऋषियोंके वचन हैं ॥ ४० ॥ तब मैंने ऋषियोंके वचन सुनकर अपनी माताको निर्दोष जान तापसाश्रमके एकांतमें रहकर एकवर्षतक तप किया ॥४१॥ तत्पश्चात् हे ब्राह्मणो ! तीर्थयात्राके अर्थ पृथिवीमें भ्रमण

करता २ आज आपके इस पत्तनमें आया हूं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सुनकर क्रोधके साथ होठोंको चबाते हुये ब्राह्मण बोले कि–अरे दुष्ट! तूने इस प्रकार असत्य बोलना कहां सीखा! ॥ ४३ ॥ मालूम होता है कि–ब्रह्माजीने जगत की समस्त असत्यता इकट्ठी करके ही तुझे बनाया है, नहीं तो इसप्रकार असम्भव कार्यको वृथा ही क्यों कहता ? ४४ तब मनोवेगने कहा कि–हे विप्रो! आप इसप्रकार क्यों कहते हो ? आपके पुराणोंमें क्या ऐसे कार्य नहीं हैं ? ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि हे भद्र! तूने हमारे वेद या पुराणोंमें ऐसा असम्भव देखा हो तो बता ? ॥४६॥ तब मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो! मैं कहूंगा परन्तु तुम लोग विना विचारे ही मेरे समस्त वचन ग्रहण करो तो तुमसे कहते हुये डरता हूं ॥ ४७ ॥ क्योंकि आपके वेद और पुराणोंमें पदपदपर ब्रह्महत्या है तो तुम सुभाषित कहे हुयेको किसप्रकार ग्रहण करोगे ॥ ४८ ॥ जैसे आपके आगममें कहा है कि–पुराण, मानवधर्म (मनुस्मृतिमें कहा हुवा धर्म) अंगसहित वेद और चिकित्सा ये चार आज्ञासिद्ध हैं, इनको हेतुसे खण्डन नहिं करना चाहिये ॥४९॥ तथा मनु व्यास वशिष्ठके वचन वेदानुकूल ही हैं, इनके वचनोंको जो अप्रमाण करते हैं, उनको बडी भारी ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५० ॥ जो सदोष वचन होते हैं, उनमें ही हेतु लगानेका निषेध किया जाता है. क्योंकि–निर्दोष सुवर्ण

की परीक्षा करानेमें कोई भी नहिं डरता ॥ ५१ ॥ तब उन वेदावलम्बियोंने कहा कि–हे भद्र ! केवलमात्र वचन कहनेमें ही पाप नहिं लगता क्योंकि 'तीक्ष्ण खड्ग' इसप्रकार उच्चारणकरनेमात्रसे जिह्वा नहिं कटती ॥ ५२ ॥ यदि वचनके उच्चारणमात्रसे ही पाप होता है तो 'उष्ण अग्नि' कहतेहुये मुख क्यों नहिं जलता ? ॥ ५३ ॥ इसकारण तुम निर्भय होकर पुराणोंका अर्थ कहो, हम सब नैयायिक हैं, सो न्यायपूर्वक कहेहुये वचनको अवश्य ही ग्रहण करेंगे ॥५४ ॥ तत्पश्चात् स्वपरशास्त्रके जानकर मनोवेग विद्याधरने कहा कि यदि ऐसा है तो हे विप्रो ! मैं अपने मनोगत विचारको प्रकाश करता हूं ॥ ५५ ॥

भागीरथी नामकी दो स्त्रियें एकत्र सूती थीं सो उनदोनोंके स्पर्शसे एकके गर्भस्थिति होकर जगत्प्रसिद्ध भगीरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ ५६ ॥ यदि स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्रीके गर्भ होता है तो पुरुषके स्पर्शसे मेरी माताके गर्भ कैसे नहिं हो सक्ता ५७ तथा गांधारी नामकी लडकी धृतराष्ट्रको देना निश्चय किया था, उस वाक्सम्प्रदानसे दो मास पहिले ही वह रजस्वला हो गई ॥ ५८ ॥ चौथे दिन स्नानकरके उसने पनसवृक्षके आलिंगन किया, सो उसी दिनसे गांधारीके बडेभार सहित गर्भस्थिति होकर पेटको वढाने लगी ॥ ५९ ॥ तब उसके पिताने गांधारीके गर्भ हुवा देखा तो तुरन्त ही धृतराष्ट्रको विवाह दी. क्योंकि

लोकापवादको दूर करनेकेलिये सभी जने यत्न किया करते हैं ॥ ६० ॥ फिर उस गांधारीके पेटमें पनसका बहुत बड़ा फल हुवा उसीसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ६१ ॥ मनोवेगने कहा कि—क्यों तुमारे पुराणमें ऐसा है कि नहीं ब्राह्मणोंने कहा कि—बेशक है. इसका कौन निषेध कर सक्ता है ॥ ६२ ॥ यदि पनसके आलिंगनसे ही पुत्रोंका होना कहा गया है तो मेरी माताके पुरुषका स्पर्श होनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होना असत्य कैसे है ? ॥ ६३ ॥ इसप्रकार मनोवेगके वचन सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि—तू भरतारके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न हुवा सो तो सत्य है परन्तु तपस्वियोंके वचनको सुनकर तू बारहवर्षपर्यन्त माताके गर्भमें ही रहा, यह बात हम प्रमाण नहिं कर सके ॥ ६४–६५ ॥ तब मनोवेगने कहा कि—पूर्वकालमें श्रीकृष्णने सुभद्राको चक्रव्यूहकी रचनाका ब्योरा कहा था, तब उसके गर्भमें स्थित अभिमन्युने सुना था. ऐसा तुमारे पुराणमें कहा है सो मैंने तपस्वियोंके वचन कैसे नहिं सुने ॥ ६६–६७ ॥ एक समय यमनाम मुनिने किसी तालाबमें अपनी कोपीन धोई. उस कोपीनके लगा हुवा वीर्य जलमें गिरनेपर एक मेंडकीने (मंडूकीने) पी लिया. इसके पीनेसे मेंडकीके गर्भ रह गया. गर्भके दिन पूरे होनेपर उस मेंडकीके एक बहुत ही सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई. किंतु मेंडकीने जाना कि यह शुभलक्षणा तो हमारी जातिकी नहीं है. ऐसा समझकर उसने एक कमलके पत्ते-

पर रख दिया ॥ ६८–७० ॥ फिर किसी समय वही यद्‌ नामा मुनि आया तो उस सुन्दरीको देखते ही पहिचान गया कि–यह तो मेरे वीर्यके बलसे उत्पन्न हुई है. ऐसा समझ स्नेहके साथ उस पुत्रीको ग्रहण किया, और अनेक प्रकारके उपायोंसे प्रतिपालना करके बडी करी. सो ठीक ही है अपनी सन्तानको पालनेमें स्वभावसे ही सबजने यत्न किया करते हैं ॥ ७१–७२ ॥ उस छोकरीने तरुण होने पर रजस्वलावस्थामें अपने पिताके वीर्यसे मैली कोपीनको पहरकर स्नान किया, स्नानकरते समय उस कोपीनके लगे हुये वीर्यका कोई बिन्दु उस छोकरीके पेटमें चला गया, उसके संयोगसे वह छोकरी गर्भवती होगई तब उस मुनिने अपने वीर्यसे गर्भोत्पत्ति जान कन्याका दूषण प्रगट होनेके भयसे अपने तपोबलसे उस गर्भका स्तम्भन कर दिया अर्थात् गर्भका बढना व संततिका उत्पन्न होना बंध कर दिया ॥ ७३–७४ ॥ सो निश्चल किया हुवा वह गर्भ सात हजार वर्षपर्यन्त उस कन्याको कष्ट देता हुवा रुका रहा ॥ ७५ ॥ तत्पश्चात् वह सुन्दरी मुनिकर प्रदान की हुई लंकाधिपति रावण महात्माने परणी. तब उसके उस गर्भसे इन्द्रजीतनामा पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ ७६ ॥ सो इन्द्रजीत सात हजारवर्ष पहिले ही गर्भमें आया और उसका पिता रावण सातहजार वर्ष पीछे उत्पन्न भया ॥ ७७ ॥ यदि इन्द्रजीत अपनी माताके गर्भमें सातहजार वर्षतक रहा, यह बात

सत्य है तो मैं अपनी माताके गर्भमें १२ वर्ष कैसे नहिं रहा ॥ ७८ ॥ तब ब्राह्मणोंने लाचार होकर स्वीकार किया कि तेरा कहना सत्य है परन्तु तूने उत्पन्न होते ही तपमहण कैसे किया ॥ ७९ ॥ तथा तेरी माता परणीहुई थी कन्या कैसे हुई ! यह सब होना दुर्घट है सो हमारे संदेहरूपी अंधकारको दूर कर ॥ ८० ॥

तब उस मनोवेग वक्ताने कहा कि–ध्यान देकर सुनो. पूर्वकालमें अनेक तपस्वियोंकर पूजनीय पारासरनामा तपस्वी होता हुवा ॥ ८१ ॥ सो वह पारासर एकदिन तरुणावस्थाकी धारक योजनगन्धा नामक धीवरकी कन्याके द्वारा चलाई हुई नावसे गंगाजी पार होता था ॥ ८२ ॥ उससमय धीवरकी कन्याको अतिशय तरुण देखकर वह पारासर उसके साथ रमने लगा. सो नीति ही है कि काम-बाणसे भिदे हुए पुरुष योग्य अयोग्य स्थानको नहिं देखते ॥ ८३ ॥ उस विचारी बालिकाने भी ऋषिके शापके भयसे वह नीचकृत्य करना स्वीकार किया. क्योंकि संसारी जीव अकृत्य करके भी अपने जीवनकी रक्षा करते हैं ॥ ८४ ॥ परन्तु इस नीचकृत्यको करते हुए कोई देखेगा तो मुझे कैसा शरमिंदा होना पडेगा इत्यादि निंदाके भयसे पारा-सरने तपोबलके प्रभावसे दिनमें ही अन्धकारमय रात्रि कर डाली. सो ठीक ही है. तापसोंके विना किसीका भी कोई कार्य भलेप्रकार सिद्ध नहिं होता ॥ ८५ ॥ फिर जब था

उस नीचकर्मके करते ही तत्काल उस धीवरीके उदरसे अष्टादशपुराणके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध वेदव्यासजी उत्पन्न हो गये. व्यासजीने भक्तिपूर्वक पारासरजीसे कहा कि-"हे पिता! मुझे आज्ञा दीजिये कि-मैं क्या करूं?" ॥ ८६ ॥ पारासरने कहा कि-"हे पुत्र! तू यहीं पर तप करता हुवा तिष्ठ" ऐसा कहकर प्रसन्नताके साथ व्यासको दीक्षा देकर योगी (तपस्वी) कर दिया ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् उस योजनगंधा धीवरकी कन्याको भी पारासरने अपने तपके प्रभावसे ऐसी सुगन्धित शरीरवाली कर दी कि-"जिसकी सुगन्धसे दशोदिशा महकने लगीं. फिर वे पारासरजी अपने आश्रममें चले गये ॥ ८८ ॥ अब जरा विचार तो करो कि जब व्यासजीने जन्म लेते ही पिताकी आज्ञासे तप ग्रहण कर लिया तो मैं अपनी माताकी आज्ञासे क्यों नहीं तपस्वी होऊं? ॥ ८९ ॥ और व्यासजीको पैदा करने पर भी वह धीवरी, कन्या ही रही तो मेरी माताके कन्या रहनेमें उजर करना सिवाय पक्षपातके और क्या है? ॥ ९० ॥ तथा यह बात भी महत्पुरुषोंको विचारना चाहिये कि-सूर्यके प्रसंगसे कुन्ती कर्णनामा पुत्रको पैदा करके भी कन्या ही तो मेरी माता कन्या क्यों नहीं रह सक्ती? ॥ ९१ ॥ तथा पूर्वकालमें एक जगत्प्रसिद्ध उद्दालकनामा महातपस्वी था. उसका स्वप्नावस्थामें वीर्यस्खलित हो गया, सो उसको ग्रहण करके गंगाजीमें कमलपत्रपर स्थापन कर

दया ॥ ९२ ॥ उस दिन अनेक देवांगनाओंसहित इन्द्राणीकी सदृश गुणोंकी राजधानी अतिशय सुन्दर रघुराजाकी चंद्रमतीनामा कन्या अपनी सखियों सहित चतुर्थस्नान करनेके लिये गंगास्थानको आई ॥ ९३ ॥ सो स्नान करते समय उस वीर्यसहित कमलको सूंघनेपर वह वीर्य्य उस चंद्रमतीके उदरमें चला गया सो जलसे सीपकी समान उस चंद्रमतीके अपस्त देहयष्टिको बढाता हुवा गर्भाधान हो गया ॥ ९४ ॥ उस कुमारी कन्याको गर्भवती देखकर उसकी माताने यह वृत्तांत रघुराजाको निवेदन किया. राजाने तुरन्त ही उस चंद्रमती कन्याको वनमें छुडवा दिया. सो ठीक ही है, सत्पुरुष अपने गृहकलंकसे डरते ही रहते हैं ॥ ॥ ९५ ॥ तत्पश्चात् उस कुमारीने तृणबिंदु नामा मुनिके आश्रममें धनको नाश करनेवाली दुर्नीतिके सदृश निर्मलकीर्तिको नष्ट करनेका कारण नागकेतु नामा पुत्रको जना ॥ ९६ ॥ उस बालाने उद्विग्नचित्त हो उसीवक्त अपने पुत्रसे कहा कि–" जा तू अपने पिताको अन्वेषण कर" ऐसा कहकर उसीवक्त संदूकमें रखकर गंगाजीमें छोड दिया ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् उसी विशुद्धज्ञानी उद्दालक ऋषिने गंगाजीमें संतरण करके बहती हुई संदूकमें अपने वीर्य्यसे उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर ग्रहण किया ॥ ९८ ॥ फिर वह चंद्रमती भी अपने पुत्रको ढूंढती हुई उस ऋषिके पास आई. ऋषिने प्रसन्नताके साथ उस बालकको दिखाकर

कहा कि-"मैं तेरा हूं अब तू मेरी प्रिया हो जा" ॥ ९९ ॥ उस कुमारीने कहा कि हे मुने! यदि मेरा पिता तुमको प्रदान करेगा तो निःसंदेह मैं तुमारी प्रिया हो सक्ती हूं. इस कारण तू जाकर मेरे पितासे याचना कर, क्योंकि-कुलीन कन्यायें पिताकी आज्ञाके विना अपने आप पतिको ग्रहण नहिं करतीं ॥ १०० ॥ तत्पश्चात् उस उद्दालक ऋषिने शीघ्र ही राजाके पास जाकर प्रार्थनापूर्वक उस महागुणवती यौवनवती चंद्रमतीको पुनः कुमारी कन्या करके आनंदके साथ विवाह किया और अपनी प्राणप्रिया स्त्री बनायी सो नीति ही है कि कामके पांचों बाणोंसे पीडित होकर प्राणी जन क्या २ अनर्थ नहिं करते ? ॥ १०१ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चौदहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १४ ॥

अथानंतर मनोवेगने कहा कि-यदि पुत्रके होते संते भी चंद्रमती कन्या रही तो मेरे होनेसे मेरी माता कन्या कैसे नहिं हो ? ॥ १ ॥ इसप्रकार उन वैदिक ब्राह्मणोंको निरुत्तर करके वह विद्याधर, तापसीके भेषको छोडकर बागमें जाता हुवा और अपने मित्रसे कहा कि-हे मित्र ! कैसा आश्चर्य है कि-लोगोंके पुराण परस्पर विरुद्ध होनेपर भी मिथ्यात्वके वशीभूत हो उनके सत्यासत्यका कुछ भी

विचार नहिं करते ॥ २-३ ॥ कहींपर पनसवृक्षके आलिंगनसे स्त्रीके पुत्र होता है ? यदि ऐसा होता हो तो मनुष्यके स्पर्शसे वल्ली कहिये वेलें क्यों नहिं फलतीं ? ॥ ४ ॥ स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्री गर्भवती कैसे हो सक्ती है ? गौके संगसे गौका गर्भवती होना हमने तो कहीं भी नहिं देखा ॥ ५ ॥ मंडूकी (मेंडकी) मनुष्यको पैदा करती है ऐसा कोई विश्वास करैगा ? कहीं शालिसे कोदोंको भी पैदा हुए देखा है ॥ ६ ॥ यदि शुक्रके भक्षणमात्रसे ही संतान हो जाय तो स्त्रियोंको सन्तानके अर्थ पतिके संग करनेसे क्या प्रयोजन ? ॥ ७ ॥ शुक्रके स्पर्शनमात्रसे ही पुत्रोत्पत्ति हो जाय तो फिर बीजके पडते ही पृथिवी क्यों नहीं धान्य देती ? ॥ ८ ॥ यदि शुक्रसहित कमलके सूंघने मात्रसे ही स्त्रीके गर्भाधान हो जाता है तो भोजनसहित पात्रके (थालके) निकट होते ही तृप्ति क्यों न हो जाती ॥ ९ ॥ मंडूकीने कन्या समझकर उसको कमलपत्रपर कैसें रख दिया। क्या मेंडुक जातिमें ऐसा ज्ञान कभी किसीने देखा वा सुना है ? ॥ १० ॥ सूर्य धर्म पवन और इन्द्रके संगसे कुन्तीके कर्ण युधिष्ठिर भीम अर्जुन ये पुत्र हुए, ऐसा किस बुद्धिमानके हृदयमें विश्वास हो सक्ता है ? ॥ ११ ॥ यदि देवोंके साथ मनुष्यनीका संगम होता है तो मनुष्योंका देवांगनाओंके साथ संगम होना क्यों नहिं देखनेमें आता ? ॥ १२ ॥ समस्त अशुचियोंका घर ऐसे महामलीन मनुष्यके

शरीरमें धातु और मलरहित देव किस प्रकार रमें ! ॥ १३ ॥ हे मित्र ! अन्यमतके शास्त्र हैं, ते अविचारियोंको ही रमणीक भासते हैं परन्तु विवेकी पुरुष उनका जितना जितना विचार करते हैं, उतने २ ही खंडित होते जाते हैं ॥ १४ ॥ महाप्रभावसम्पन्न देवता और तपस्वियोंने कन्याको भोगा और स्त्री बनाया यह बात विद्वज्जन कदापि विश्वास नहिं कर सके, क्योंकि ॥ १५ ॥ जो परस्त्रीलंपट होकर परस्त्रियोंको सेवन करते हैं ऐसे व्यभिचारियोंको प्रभावशाली कैसे कह सक्ते हैं ? ॥ १६ ॥ हे मित्र ! असत्य प्रलाप करनेसे क्या लाभ ? तुझे मैं जैनमतानुसार कर्णराजाकी उत्पत्तिकी सच्ची कथा कहता हूं सो सुन ॥ १७ ॥

हस्तिनापुर नगरके व्यास नामा राजाके गुणोंके घर धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर नामक जगत्प्रसिद्ध तीन पुत्र हुये ॥ १८ ॥ एक दिन किसी मनोहर उपवनमें (बागमें) क्रीडा करते हुये पांडुने लतामंडपमें पडीहुई एक विद्याधर की कामसुद्रिका (अंगूठी) देखी ॥ १९ ॥ पांडु उस मुद्रिकाको अंगुलीमें डालकर देखता था इतनेमें हो उस कामसुद्रिकाका मालिक चित्रांगद नामा विद्याधर अपनी मुद्रिकाको ढूंढता हुआ आ पहुंचा ॥ २० ॥ उस निस्पृही पांडुने उसी वक्त वह अंगूठी उस विद्याधरके सुपुर्द करदी, सो नीति ही है कि—महापुरुष परद्रव्यमें निस्पृही होते हैं ॥ २१ ॥ वह विद्याधर पांडुकी इसप्रकार अलोभताको देख

उसको अपना परममित्र समझने लगा, क्योंकि जो अन्य-द्रव्यसे पराङ्मुख हैं वे जगत-भरके मित्र होते हैं ॥ २२ ॥ सो उस विद्याधरने पांडुसे कहा कि हे साधु ! तू मेरा मित्र है, जो परद्रव्यको कूडे कचरेकी समान देखता है ॥ २३ ॥ हे मित्र ! तू उदासीन दीखता है, इसका कारण क्या है ? क्योंकि चतुर पुरुष अपने मित्रसे कुछ भी नहिं छिपाते । ॥ २४ ॥ तब पांडुने कहा कि–हे मित्र ! सूर्यपुरमें अंधकवृष्टि नामा राजा स्वर्गके इन्द्रकी समान राज्य करता हुवा तिष्ठै है ॥ २५ ॥ उस राजाके त्रिलोकीको जीतनेवाले कामदेवकर ऊंची की हुई पताकाके समान एक कुन्ती नामा अतिशय सुन्दर कन्या है ॥ २६ ॥ सो वह कामदेवको बढानेवाली कन्या उसके पिताने पहिले तो मुझे देनी करी थी, परन्तु मुझे पांडुरोगी देखकर अब नहिं देता है २७ इसीकारण हे मित्र ! मेरे चित्तमें काष्ठोंको कुठारकी समान मेरे मर्मोंको काटनेवाला विषाद उत्पन्न हो गया है ॥२८॥ तब चित्रांगदने कहा कि हे मित्र ! इस विषण्णताको छोड, मैं तेरे उद्वेगको दूर कर दूंगा. तू मेरा कहा कर ॥ २९ ॥ हे मित्र ! इस मेरी काममुद्रिकाको लेकर पहर ले, जिससे तू कामदेवकी समान सुन्दर होकर उस अपने मनकी प्यारी को सेवन कर. जब वह गर्भवती हो जायगी तो वह राजा अपने आप तुझे ही देदेगा. क्यों कि–दूषित कन्याको अपने घरमें कोई भी नहिं रखता ॥ ३०–३१ ॥ तत्पश्चात् वह

पांडु उस मुद्रिकाको पहरकर उस कुन्तीके महलमें जाता हुवा. सो प्रथम तो संसारी जीव अपने आप ही विषयलंपटी होते हैं, जब सुगम उपाय मिल जाय तो कहना ही क्या ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कामाकारका धारक वह पांडु उस कुन्तीको प्राप्त होकर स्वेच्छापूर्वक सेवने लगा. सो ऐसा कौन पुरुष है जो अपने मनकी प्यारी स्त्रीको एकांतमें प्राप्त होकर अपनी इच्छाको पूर्ण न करे ? ॥ ३३ ॥ उस कुमारीको सात दिन तक उस युवा पुरुषने सेवन करके उसके गर्भारोपण कर दिया ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् वह पांडु वहांसे निवृत्त हो कुन्तीको वहीं छोड़कर अपने घर आ गया। सो ठीक ही है, मनवांछित कार्यकी सिद्धि होनेपर किसको निवृत्ति नहिं होती ? ॥ ३५ ॥ कुन्तीकी माताने उसको गर्भवती जानकर पूरे दिन होनेपर गुप्तभावसे प्रसूति कराई, सो ठीक ही है अपने घरकी निंदाके भयसे सभी जने गुप्त बातको छिपाते हैं ॥ ३६ ॥ फिर कुन्तीकी माताने गृहकलंकके भयसे उसके पुत्रको एक संदूकमें बन्द करके गंगाजीमें बहा दिया ॥ ३७ ॥ सम्पत्तिको दुर्नीतिकी सदृश उस संदूकको गंगाजी बहाकर ले जाती थीं, सो चम्पापुरके आदित्य राजाने ग्रहण किया ॥ ३८ ॥ सन्दूकको उघाड़कर देखा तो उसमें राजाने पवित्र लक्षणसहित विद्वानोंकर पूजनीय अनिन्द्य अर्थवाली सरस्वती (जिनवाणी) के समान सुंदर बालक देखा ॥ ३९ ॥ बालकको अपने कान पकड़े हुये

देखकर राजाने उसका प्रीतिपूर्वक ' कर्ण ' नाम रख दिया ॥ ४० ॥ जिसप्रकार दरिद्री द्रव्यराशिको पाकर रक्षा करता है, उसी प्रकार वह निपुत्र राजा उसको पुत्र समझ बडे यत्नसे रक्षाकर बढाता हुवा ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् उस महोदयरूप आदित्य राजाके मरजानेपर वह कर्ण आकाशको चंद्रमाकी समान त्रिभुवनको आनन्द करनेवाला चम्पावती नगरीका राजा होता भया ॥ ४२ ॥ आदित्य नामा राजाने पालनपोषणकर बढाया इसकारण वह कर्ण ' आदित्यज ' कहलाया है. ज्योतिष्क जातिके सूर्यका पुत्र कदापि नहिं है ॥ ४३ ॥ यदि धातुरहित देवोंकेद्वारा स्त्रियें नरको उत्पन्न करती हैं तो पाषाणके द्वारा पृथिवीमें धान्यादिक उत्पन्न होने चाहिये ॥ ४४ ॥ तत्पश्चात् दोष छिपानेकेलिये अंधकवृष्टि राजाने ये सब वृत्तांत जानकर वह कुन्ती पांडुको ही परणादी—और धृतराष्ट्रको गांधारी नामकी दूसरी कन्या परणाई ॥ ४५ ॥ पुराणोंकी सत्य २ कथा तो उक्तप्रकार है. सो रागद्वेष और आग्रहके ग्रसे हुये मनुष्य पापकार्यसे नहिं डरते ॥ ४६ ॥ क्योंकि धर्मात्मा पुरुष होते हैं, वे युक्तिसे सिद्ध नहिं हों, ऐसे वचन कदापि नहि कहते. पापीजन ही युक्तिसे अघटित वचन कहते हैं ॥ ४७ ॥ इस संसारमें सबके सर्वप्रकारके संबन्ध देखनेमें आते हैं परन्तु ऐसा कहीं भी देखने सुननेमें नहिं आया कि—पांच भाइयोंके एक ही स्त्री हो ॥ ४८ ॥ यद्यपि संसारी जीव सर्वप्रकारकी

धनसंपत्तिका विभाग करते हैं. परन्तु स्त्रीका संगविभाग तो नीच पुरुषोंके यहां भी निंदनीय है ॥ ४९ ॥ हे मित्र ! योजनगन्धा नामकी धीवरीका जना व्यास कोई दूसरा ही होगा. और यह धन्यवादनीय सत्यवती राजकन्याका व्यासपुत्र (व्यासनामा) राजा अन्य है ॥ ५० ॥ परासर राजा दूसरा है. परासर तापसी दूसरा ही है, परन्तु मूढ़लोक नाममात्र सुनकर कहींका कहीं संबन्ध लगाते हैं ॥ ५१ ॥ दुर्योधनादिक सौ पुत्र तो गांधारी और धृतराष्ट्र से उत्पन्न हुये और जगत्प्रसिद्ध पांच पांडव हैं ते कुन्ती तथा मद्रीके पुत्र हैं ॥ ५२ ॥ गांधारीके सौ पुत्र तो कर्ण-राजासहित जरासिंधु नामा राजाके अनुयायी सेवक थे, और पांच पांडव हैं, वे श्रीकृष्ण नवमें नारायणकी सेवामें रहते थे ॥ ५३ ॥ वह महाबली श्रीकृष्ण जरासिंधु प्रति-नारायणको मारकर समस्त पृथिवीका (तीनखण्डका) राजा होता हुवा और ॥ ५४ ॥ कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर भीम और अर्जुन तीन तपस्या करके मोक्षपदको गये और मद्रीके अन्य पुत्र नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धिको गये और ॥ ५५ ॥ दुर्योधनादि भी जिनशासनकी सेवा करके अपने अपने कर्मानुसार स्वर्गादिकमें जाते हुये ॥५६॥ हे मित्र ! पुराणोंका अभिप्राय तो ऐसा है. व्यासने औरका और ही कहा है, सो नीति ही है. मिथ्यात्वसे आकुलित है चित्त जिनका, ऐसे पुरुषोंकी वाणी सत्य कैसे होय ? ॥

॥ ५७ ॥ महाभारतमें अतिशय निंदाकी कारणरूप पूर्वापरविरुद्ध कथाको देख व्यासजीने अपने मनमें इस प्रकार विचार किया कि— ॥ ५८ ॥ यदि इस लोकमें निरर्थक कार्य प्रसिद्धिको प्राप्त हो जाय तो निश्चय करके विरुद्धार्थका प्रतिपादन करनेवाला मेरा बनाया असंबद्ध शास्त्र (महाभारत) भी प्रसिद्ध हो जायगा ॥ ५९ ॥ इस प्रकार विचार करते हुये व्यासजीने गंगाके किनारेपर अपना ताम्रपात्र वालूरेतमें गाड़कर उसके उपरि एक वालूका पुंज बनाकर स्नानार्थ गंगाजीमें प्रवेश किया ॥ ६० ॥ व्यासजीको वालुकापुंज करके स्नान करनेको जाते देख मूर्ख लोगोंने " इसप्रकार वालुकाका पुंज करके गंगास्नानार्थ जानेमें कोई भी विशेष पुण्य (धर्म) होगा " ऐसा समझा और व्यासजीकी देखादेखी सब जने वालुका पुंज बना कर गंगास्नान करने लगे ॥ ६१ ॥ व्यासजी स्नानकरके अपने ताम्रभाजनको देखनेकेलिये आये तो असंख्यात वालुकापुंजोंके समूहमें उस स्थानका भी पता नहिं लगा सके इसप्रकार वालुकापुंजसे गंगातटको भरा हुवा देख समस्त लोकको मूढ समझकर यह श्लोक पढा कि— ॥ ६२ ॥ " जो लोग परमार्थका विचार नहिं करके दूसरोंकी देखादेखी करते हैं, वे मेरे ताम्रभाजनके सदृश अपना कार्य नष्ट करते हैं ॥ ६४ ॥ इस मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकारके विस्तारसे भरे हुये लोकमें यदि कोई विचारवान पुरुष होय

तो लाखोंमें कोई एक ही होगा ॥ ६५ ॥ इसकारण निश्चय है कि मेरा यह विरुद्धशास्त्र भी लोकमें बहुमान्य होगा " इसप्रकार लोकमूढताका विचार करके व्यासजी अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुये ॥ ६६ ॥ इसप्रकारके लौकिक पुराणोंको अपने शत्रुके वचनोंके समान जानकर बुद्धिमानोंको प्रमाण करना किसीप्रकार भी उचित नहीं है ॥ ६७ ॥ " हे मित्र तुझे मैं और भी पुराणोंके गपोडे दिखाता हूं " ऐसा कह कर मनोवेगने रक्ताम्बरका भेष धारण किया ॥ ६८ ॥ तत्पश्चात् अपने मित्रको साथ ले पांचवे द्वारसे पटने नगरमें प्रवेश किया और वादशालामें जाकर भेरी बजाय सुवर्ण-सिंहासनपर बैठ गया ॥ ६९ ॥ भेरीका शब्द सुनते ही समस्त ब्राह्मण एकत्र होकर आये और मनोवेगसे कहा कि तू विचक्षण पुरुष दीखता है, सो हमारे साथ किस विषयमें वाद करैगा ? कुछ जानता भी है कि नहीं ? ॥ ७० ॥ रक्तपटधारी मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो ! मैं कुछ भी शास्त्र नहिं जानता, वैसे ही भेरी बजाकर इस सुवर्ण-सिंहासनपर बैठ गया हूं ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र ! हंसीको छोडकर सत्य सत्य ही स्पष्टताके साथ कहो समीचीन कहनेवालोंके साथ हंसी करनेवालोंकी निंदा की जाती है ॥ ७२ ॥ मनोवेगने कहा कि--मैं अपने देखे हुये आश्चर्यको अवश्य कहूंगा परन्तु आप विना विचारे कुछका कुछ न समझ लें ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र !

तू किसीप्रकार भी मत डर, जो कुछ कहना हो सो कह. हम सब न्यायवासित मनवाले विवेकी हैं ॥ ७४ ॥ तब रक्तपटधारी मनोवेगने कहा कि–यदि आप सब विवेकी और नैयायिक हैं तो मैं कहता हूं सो सुनो. हम दोनों उपासकोंके पुत्र हैं सो बौद्धगुरुकी सेवा किया करते हैं ॥७५॥ एक समय उन बौद्धगुरुने अपने कपडे सुखानेकेलिये बिछा दिये और हम दोनों हाथमें लाठी लेकर उन कपडोंकी रक्षा करने लगे ॥ ७६ ॥ सो उस समय हम दोनों बडे यत्नसे उन कपडोंकी रक्षा करते थे. इतनेमें ही बडे भयंकर मोटे २ दो शृगाल (भेडिये) आये ॥ ७७ ॥ उनके भयसे हम दोनों एक मट्टीके टीलेपर जा चढे परन्तु उन दोनों भेडियोंने उस टीलेको उठाकर आकाशमार्गसे चलना प्रारम्भ किया ॥ ७८ ॥ हमारा चिल्लाना सुनते ही बौद्धभिक्षुक हमारी रक्षाकेलिये आये परन्तु इतनेमें तो वे शीघ्रगामी भेडिये बारह योजन दूर चले आये ॥ ७९ ॥ तत्पश्चात् वे दोनों गृद्ध (गीदड] उस स्तूपको [टीलेको] जमीन पर रखके हम दोनोंको भक्षण करनेमें उद्यमी हुये किन्तु उसी समय उन्होंने अनेक प्रकारके शस्त्रधारी शिकारियोंको [कसाइयोंको] देखा ॥ ८० ॥ उनको देखते ही वे दोनों शृगाल भयभीत होकर हम दोनोंको छोडकर भाग गये सो ठीक ही है प्राण जानेकी शंका होनेपर ऐसा कौन है जो भोजन करना प्रारंभ करे ॥ ८१ ॥

तत्पश्चात् उन शिकारियोंके साथ शिवनामा देशमें आकर हम दोनोंने अपने मनको निश्चल करके विचार किया कि—॥ ८२ ॥ इस परके देशमें तो आये परन्तु रास्ता खर्चके और मार्गके जाने विना ही दिशा भ्रम हो अपने घरको कैसे जायंगे ? ॥ ८३ ॥ इससे तो श्रेष्ठ यही है कि—अपन दोनों अपने कुलसे चले आये बुद्धभाषित तपको ग्रहण करें. जिससे उभय लोकमें नित्य समीचीन सुखकी प्राप्ति हो ॥ ८४ ॥ रक्तवस्त्र तो है ही केवलमात्र शिर और मुंडा लेंगे. अनर्थोंका कारण ऐसे घरसे अपन क्या करेंगे ? ॥ ८५ ॥ इस प्रकार विचार करके हम दोनोंने अपने आप ही बुद्धभाषित व्रतोंको ग्रहण कर लिया. क्योंकि—चतुर होते हैं वे स्वयमेव ही धर्मकार्योंमें लग जाते हैं. किसीके उपदेशकी आवश्यकता नहिं रखते ॥ ८६ ॥ तत्पश्चात हम दोनों नगरके समूहोंसे भूषित इस पृथिवीमें भ्रमण [सैर] करते करते आज ब्राह्मणोंसे भरे हुये आपके इस नगरमें आये हैं ॥ ८७ ॥ शृगालोंके द्वारा डीलेको उठाना और ले जाना आदिका जो कुछ आश्चर्य हमने प्रत्यक्षतया देखा था, वह आपके सम्मुख निवेदन किया ॥ ८८ ॥ इस वचनको सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि—हे भद्र ! तुम तपस्वी होकर भी इसप्रकार असत्यभाषण कैसे करते हो ? ॥ ८९ ॥ मालूम होता है कि—सृष्टिकर्त्ताने तीन लोकके असत्यवादियोंको इकट्ठा करके ही तू एक

बनाया है क्योंकि–ऐसा असत्यवादी दूसरा कोई भी हमारे देखने वा सुननेमें नहीं आया ॥ ९० ॥ ब्राह्मणोंके वचन सुनकर वह विद्याधर राजाका मनीषी पुत्र बोला कि–हे ब्राह्मणो ! आपके पुराणोंमें क्या ऐसे झूठे वचन नहिं हैं ? अवश्य हैं, परन्तु यह समस्त जगत परके दोषोंको ही देखता है अपने दोषोंको नहीं देखता. जैसे चंद्रमाका कलंक तो सब कोई देखते हैं, परंतु अपने नेत्रमें डाले हुए कज्जलको (सुरमेको) कोई भी नहिं देखता ॥ ९१—९२ ॥ यह सुनकर वेदाभ्यासियोंमें श्रेष्ठ ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र ! यदि तूने हमारे पुराणोंमें ऐसा असम्भव कहीं भी देखा हो तो निःशंक होकर कह, हम विचार करके ऐसे असत्यको अवश्य छोड देंगे ॥ ९३ ॥ इसप्रकार सुनकर जिनेन्द्र भगवानके वचनरूपी जलसे धोई गई है बुद्धि जिसकी, ऐसे जितशत्रु राजाके पुत्र मनोवेगने कहा कि–हे विप्रो ! यदि आप असत्य जानकर छोड दोगे तो मैं आपके पुराणार्थको कहता हूं ॥ ९४ ॥

जिससमय वीररसके धारक रामचंद्र, त्रिशिख खरदूषणादि राक्षसोंको मारकर सीता और लक्ष्मणसहित वनमें रहते थे. उससमय वहांपर लंकाधिपति रावण आया और उस छद्मवेषीने सोनेका हिरण बनाकर रामचंद्रको ललचाया और सीताकी रक्षा करनेवाले जटायुको मारकर सीताको हरण करके ले गया. सो ठीक ही है, कामी पुरुष

किसको उपद्रव नहीं करते ? ॥ ९५—९६ ॥ तत्पश्चात् रामचंद्रजीने बलवान बलिराजाको मारकर वानरोंसहित सुग्रीवको राजा बना दिया तो अपनी प्यारी सीताका पता लगानेकेलिए हनुमानको भेजा ॥ ९७ ॥ लंकामें सीताको देख कर उस अमितगति वेगवाले हनुमानके आनेपर रामचन्द्रने बंदरोंको आज्ञा देकर बडे २ पर्वतोंके द्वारा समुद्रमें शीघ्र ही पुल बधवाया सो ठीक ही है, स्त्रियोंकी वांछा करनेवाले क्या क्या आश्चर्यकार्य नहिं करते ? ॥ ९८ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य-विरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृत-ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पंदरहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥

अथानंतर एक एक बंदरने लीलामात्रमें पांच पांच पर्वतोंको उठाकर आकाशमें अनेक प्रकारकी क्रीडा करते हुए समुद्रका पुल तैयार कर दिया ॥ १ ॥ सो हे ब्राह्मणो ! वाल्मीकि मुनिके बनाये हुये रामायण नामक ग्रन्थमें रामचंद्रका चरित्र इसप्रकार कहा है कि नहीं ? ॥ २ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—हे भद्र ! इस रामायणके प्रसिद्ध सत्य कथनको कौन अन्यथा कह सक्ता है ? क्योंकि—हाथसे उदयरूप प्रभातको कोई भी नहिं छिपा सक्ता ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् रक्तपटधारी मनोवेगने कहा कि—हे विभो ! एक एक बन्दर पांच पांच पर्वत खेलके साथ आकाशमार्गमें ले जावें तो

दो बडे २ मृगाल एक छोटेसे टीलेको आकाशमें लेकर चले गये, इस बातको असत्य कैसे कह सकते हो ? ॥ ४-५ ॥ आपका कहा हुवा तो सत्य और मेरा वचन असत्य सो यहांपर मुझे विचारशून्यताके सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं दीखता ॥ ६ ॥ आपके ऐसे शास्त्रमें देवधर्मका भी स्वरूप ठीक २ नहीं है, सो जिसका कारण ही सदोष है, उसका कार्य्य निर्दोष कैसे हो ? ॥ ७ ॥ ऐसे मिथ्या ज्ञान और चारित्रवालोंमें बैठना हम सरीखोंको योग्य नहीं है. इसप्रकार कहकर वे दोनों मित्र वहांसे चले आये ॥ ८ ॥ रक्तांवर भेषको छोडकर मनोवेगने अपने मित्र पवनवेगसे कहा कि–समस्त प्रकारसे असंभव अभिप्रायको प्रगट करने-वाले शास्त्र तुमने सुने ॥ ९ ॥ यह जो रामायणादि-कर्म धर्म कहा है, उसके अनुष्ठान करनेसे कुछ भी फलकी सिद्धि नहीं है–क्योंकि वालूरेतके पीलनेसे कभी तैल नहिं निकलता ॥ १० ॥ हे मित्र ! वंदरोंके द्वारा राक्षस (देव) कदापि नहिं मारे जा सक्ते क्योंकि–कहां तो अष्ट महाऋ-द्धिके धारक राक्षस और कहां ज्ञानरहित पशु ? ॥ ११ ॥ जरा विचार तो कर कि–वंदर वडे २ भारी पर्वतोंको किस प्रकार उठा सकते हैं ? अगाध समुद्रमें डाले हुये वे किस-प्रकार तैर सकते हैं और किसप्रकार पुल बंध सकता है ? ॥ १२ ॥ यदि रावण देवताओंसे भी अवध्य है, ऐसा वर पाया हुवा है, तो उसको मनुष्य किस प्रकार मार सक्ता है ?

॥१३॥ तथा देवताओंने ही वन्दर होकर राक्षसोंके अधिपति को मारा तो यह कहना भी मनोवांछित गतिको प्राप्त नहीं होता ॥ १४ ॥ शंकरने सर्वज्ञ होकर रावणको ऐसा वर क्यों दिया ? जिससे देवताओंके भी बडा उपद्रव हुवा १५ हे मित्र ! पानीको मथन करनेसे (विलोनेसे) मक्खन नहिं निकलता उसी प्रकार अन्यमतके पुराण विचार करने पर सर्वथा साररहित दीखते हैं ॥ १६ ॥ हे मित्र ! ये लोगोंकर कल्पना किये गये सुग्रीवादिक वानर और रावणादिक राक्षस नहिं थे ॥ १७ ॥ ये सब विद्याविभवसे सम्पन्न जैनधर्ममें लवलीन पवित्र सदाचारी बडे प्रतापी मनुष्योंके राजा हैं. इनकी सेनामें वंदरोंके चित्रसे चिह्नित ध्वजा होनेसे वानरवंशी कहनेमें आते हैं और रावणादिककी ध्वजामें राक्षसोंकी मूर्त्तिका चिह्न रहनेसे राक्षसवंशी कहे जाते हैं ॥ १८—१९ ॥ सो हे मित्र ! चंद्रमाके समान उज्ज्वलदृष्टिके धारक भव्य हैं, उनको जिसप्रकार महावीर स्वामीके गौतम गणधरने श्रेणिकराजासे वर्णन किया, उसी प्रकार श्रद्धान करना चाहिये ॥ २० ॥ हे भद्र ! अन्यमतके पुराणोंके गपोडे और भी दिखाता हूं, इस प्रकार कहकर पवनवेगसहित श्वेताम्बरका भेष धारण किया और ॥ २१ ॥ पटने नगरमें छठे द्वारसे प्रवेश करके शीघ्र ही वाद सूचनाकी भेरी बजाकर सोनेके सिंहासनपर बैठ गया ॥ २२ ॥ भेरीका शब्द सुनते ही ब्राह्मणोंने आकर मनो-

वेगसे पूछा कि—तू कौनसा शास्त्र जानता है ? तेरा गुरु कौन है ? क्या हमारे साथ वाद कर सक्ता है ? सो कह। विना कहे तो केवलमात्र तेरी सुंदरता ही दीखती है ॥२३॥ मनोवेगने कहा कि—न तो मैं कुछ जानता हूं और न मेरा कोई गुरु है. वादका नाम भी नहिं जानता तो वाद करने-की शक्ति कहांसे होगी ? ॥ २४ ॥ मैं तो यहांपर पहिले नहिं देखा, ऐसा सुवर्णसिंहासन देखकर बैठ गया और इस भेरीकी आवाज देखनेकी इच्छासे भेरी बजा कर देखी है ॥ २५ ॥ हम तो शास्त्रज्ञानरहित गोवालेके मूर्ख लडके हैं. किसी भयसे अपने आप ही तप ग्रहणकरके पृथिवीमें भ्रमण करते फिरते हैं ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—तुमने किस भयसे भयभीत होकर ऐसी युवावस्थामें तप ग्रहण किया, सो कृपा करके कहो. हमको सुननेकी बडी इच्छा है ॥ २७ ॥ तब उस श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा कि—हमारा पिता आभीरदेशके हर्ष नामक गांवमें भरणियोंके (भेडोंके) पालनेका रोजगार करता हुवा रहता है ॥ २८ ॥ एकदिन भरणियोंकी रक्षा करनेवाले हमारे नोकरको ज्वर होनेसे हमारे पिताने भरणियोंकी रक्षा करनेकेलिये हम दोनों भाइयोंको भेजा. सो हम दोनों वनमें गये ॥ २९ ॥ हमने उस वनमें महाउदयरूप कुटुंबीके समान शाखा उपशाखादिकर सहित फलोंसे नम्रीभूत एक कवीठका (कैथका] वृक्ष देखा ॥ ३० ॥ उसको देख

कर कवीठ खानेकी इच्छासे मैंने इस भाईसे कहा कि— हे भाई ! तु उरणियोंकी रक्षा कर, मैं इस पेडके कवीठ खाकर आता हूं ॥ ३१ ॥ तब उरणियोंकी रक्षार्थ भाईके चले जानेपर मैंने उस कवीठके पेड़को दुरारोह [बहुत ऊंचा] देखकर विचार किया कि ॥ ३२ ॥ इस वृक्षपर तो मैं किसीप्रकार भी नहिं चढ सकता. फिर किसप्रकार कवीठ खाकर अपनी भूख मिटाऊंगा ? ॥ ३३ ॥ फिर मैंने उस कवीठके नीचे जाकर विचार किया तो कोई उपाय नहिं सूझा, तब लाचार हो शिरको काटकर अपने समस्त प्राणोंसहित कवीठके पेडपर फेंक दिया ॥ ३४ ॥ मेरे मस्तकने ज्यों २ कवीठ खाने शुरू किये, त्यों त्यों महासुखकी करनेवाली तृप्ति आने लगी अर्थात् मेरी भूख मिटने लगी ॥ ३५ ॥ जब मेरे मस्तकने नीचे नजर करके मेरा पेट पूर्ण भरा हुवा देखा तो पेडपरसे झट आकर मेरे धडपर बेजोडके पूर्ववत् चिपक गया. तत्पश्चात् मैं अपनी भेडें देखनेको गया ॥ ३६ ॥ जब मैं वहां जाकर देखता हूं तो मेरा भाई एक जगह सो रहा है. मेषोंका [भेडोंका] कहीं पता भी नहिं है ॥ ३७ ॥ मैंने अपने भाईको उठा कर पूछा तो उसने कहा कि हे भाई ! मेरे सो जानेपर न मालुम कहां चले गये ॥ ३८ ॥ तब मैंने अपने भाईसे कहा कि—अब हम भेडोंको खोकरके घरपर कैसे जावें ? पिताजी सुनते ही कोप करेंगे और हम

दोनोंको बहुत ही मारेंगे और ॥ ३९ ॥ विना भेषके परदेशमें भी जावेंगे तो भूखसे मर जांयगे. इस कारण हे भद्र! अपन दोनों कोई भेष धारण करें ॥ ४० ॥ अपने यहां लाठी कम्बल सहित मुंडित मस्तकवाले श्वेतांबरी साधुओंको भोजनादिकका बडा सुख है ॥ ४१ ॥ अपने कुलसे ऐसे श्वेतांबरी साधुओंकी ही भक्ति होती आई है सो अपन दोनों तो श्वेतपटधारी ही बनें. अन्य भेषसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ४२ ॥ इसप्रकार विचार करके हम दोनों अपने आप ही श्वेतांबरी साधु बन गये और पृथिवीमें भ्रमण करते करते आज आपके इस नगरमें आये हैं॥ ४३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—यद्यपि तू नरकमें जानेसे नहिं डरता, तो भी व्रती पुरुषको इसप्रकारका असत्यभाषण करना सर्वथा अयोग्य है ॥ ४४ ॥ यह सुनकर श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा कि—आपके वाल्मीकिकृत रामायणमें इसप्रकारके वचन क्या नहीं हैं? ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि—यदि तुमने रामायणमें कहींपर भी ऐसे वचन देखे हों तो निःसंदेह कहो. तब मनोवेगने कहा कि—॥ ४६ ॥ दश मस्तक और बीस भुजावाला अतिशय धीर वीर त्रिभुवनमें प्रसिद्ध राक्षसोंके अधिपति रावणने शिवजीमें अत्यन्त स्थायी भक्ति प्रगट करनेकेलिये तरवारसे अपने ९ मस्तक काट डाले और पुष्पके दलसमान हैं होठ जिनके ऐसे मुखरूपी नव कमलोंके द्वारा शिवजीकी भक्तिपूर्वक पूजा

की. सो ठीक ही है वरकी इच्छा रखनेवाला क्या क्या नहि करता ? ॥ ४७—४८—४९ ॥ तत्पश्चात् रावणने बीस हाथोंसे गन्धर्वदेवोंको भी मोहित करनेवाला हस्तक नामा संगीत करना प्रारंभ किया ॥ ५० ॥ महादेवने भी पार्वतीके मुख परसे अपनी दृष्टिको हटाकर रावणके साहसको देखकर उसको मन चाहा वर दिया ॥ ५१ ॥ तत्पश्चात् गर्म २ खूनसे जमीनको सिंचन करती हुई उस मस्तकमालाको रावणने जोडरहित अपने कन्धोंपर चिपका लिया ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार वाल्मीकिने रामायणमें लिखा है कि नहीं सो आपलोग यदि सत्यवादी है तो ठीक २ कहो ? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—हे साधु ! यह सब सत्य है. इसप्रकार प्रसिद्ध व प्रत्यक्ष बातको अन्यथा कौन कह सक्ता है ? ॥ ५४ ॥ श्वेतपटधारीने कहा कि—जब रावणके काटे हुये नौ मस्तक उसकी धडके लग गये तो मेरा एक मस्तक कैसे नहि चिपक सक्ता ॥५५॥ आपका तो यह वचन सत्य और मेरा वचन असत्य है, इसमें सिवाय मोहके माहात्म्यके और कुछ नहि दीखता ॥ ५६ ॥ यदि आप कहो कि—रावणके शिर तो महादेवजीने जोड दिये. सो कदापि नहि हो सक्ता, क्योंकि महादेवजीमें मस्तक जोड देनेकी शक्ति होती तो तपस्वियोंके द्वारा कटाया हुवा अपना * * क्यों न जोड लिया ? ॥ ५७ ॥ जो महादेव अपना उपकार करनेमें असमर्थ है, वह अन्यका

उपकार कदापि नहिं कर सक्ता. क्योंकि जो वैरीकी मारसे अपनी ही रक्षा नहीं कर सक्ता, वह दूसरेकी रक्षा कैसे करेगा ? ॥ ५८ ॥ हे विप्रो ! और भी सुनो–श्रीकंठा नामकी ब्राह्मणीने जगत्प्रसिद्ध दधिमुख नामा पुत्र (जिसके सिवाय मस्तकके हाथ पांव धड पैर कुछ भी नहिं थे) उत्पन्न किया ॥ ५९ ॥ सो उस दधिमुखने थोडे ही दिनोंमें नदियोंको समुद्रकी समान मनुष्यको निर्मल करनेवाले समस्त वेद और स्मृति आदिक कंठाग्र कर लिये ॥ ६० ॥ एक दिन उस दधिमुखनें (मस्तकने) अगस्त्यमुनिको देख कर भक्तिपूर्वक प्रार्थना करी कि–हे मुने ! आज तो आप मेरे घरपर ही भोजन करें ॥ ६१ ॥ अगस्त्यमुनिने कहा कि–हे भद्र ! कहां है वह तेरा घर ? जहां कि मुझे आदर-पूर्वक भोजन करावेगा ? ॥ ६२ ॥ दधिमुखने कहा कि–हे मुने ! क्या मेरे पिताका घर है सो मेरा घर नहिं है ? मुनिने कहा कि–तेरा उस घरसे कुछ भी संबन्ध नहीं है क्योंकि जिसके घरमें गृहिणी (स्त्री) हो वही गृहस्थ (घरवाला) होता है. कुमारावस्थामें दान देने योग्य (दाता) गृहस्थी नहिं हो सकता ॥ ६३—६४ ॥ इस प्रकार कहकर अगस्त्यमुनिके चले जानेपर दधिमुखने अपने मातापितासे कहा कि–जिसप्रकार हो, मेरा कुमारपणा दूर करो अर्थात् मेरा विवाह करो ॥ ६५ ॥ दधिमुखके माता पिताने कहा कि–हे पुत्र ! तुझे अपनी पुत्री कौन

देगा ? तो भी हम तेरी यह इच्छा पूर्ण करेंगे ॥ ६६ ॥ तत्पश्चात् बहुतसा द्रव्य देकर किसी दरिद्रकी पुत्रीके साथ महोत्सवपूर्वक विवाह कर दिया ॥ ६७ ॥ कुछ दिनोंके पश्चात् दधिमुखके माता पिताने कहा कि–हे बेटे ! अब हमारे पास द्रव्य नहिं रहा, सो तू अलग होकर अपनी वल्लभाका पालन पोषण कर ॥ ६८ ॥ यह सुनकर दधिमुखने अपनी स्त्रीसे कहा कि–हे वल्लभे ! पिताने अपनेको घरसे निकाल दिया, सो चलो कहींपर भी रहकर जीवन व्यतीत करें ॥ ६९ ॥ तत्पश्चात् वह पतिव्रता अपने पतिको [दधिमुखनामक मस्तकको] छींकेमें रखकर पृथिवीतलमें घर २ दिखलाती हुई फिरने लगी ॥ ७० ॥

इस प्रकार विकल (मस्तकमात्र) पतिको पालती हुई देखकर सबजने उसको भक्तिपूर्वक अन्नवस्त्रादि देने लगे. एवं एक समय पूजा प्रतिष्ठा पाती हुई वह पतिव्रता उज्जयिनीनामा नगरीमें आई. उस उज्जयिनी नगरीके चारों तरफ बडे २ कैरोंका वन (जंगल) था ॥ ७२ ॥ उसने अपने पतिसहित छींकेको टिंटाकीलिक कहिये कैरोंकी डालीमें रख दिया और वह उज्जयिनीमें भिक्षार्थ चली गई [यहां टिंट शब्दका अर्थ जुवारी और टिंटाकीलिक शब्दका अर्थ जुवारियोंका घर भी होता है सो वह जुवारीखानेकी खूंटीपर छींका रखकर गई ऐसा भी अर्थ हो सक्ता है ॥ ७३ ॥ वहांपर परस्पर दो जुआरियोंका युद्ध हो गया. जिसमें परस्पर एकने

दूसरेका माथा तरवारसे काट डाला और वे दोनों ही जुवारी मस्तकरहित हो जमीनपर गिर पडे ॥ ७४ ॥ उसी समय तलवारके लगनेसे वह दधिमुखका छींका भी फट गया. तब वह दधिमुख मस्तक, नीचे गिरते ही उन दोनों धडोंमेंसे एक धडपर लग गया ॥ ७५ ॥ निःसंधिरूप (जिसमें जोड लगनेका कोई चिन्ह नहिं दीखे ऐसा) मस्तकके जुडजानेसे वह दधिमुख सर्वांगसुन्दर समस्त काम करनेमें समर्थ ऐसा पुरुष हो गया ॥ ७६ ॥ इस प्रकार कहकर मनोवेगने ब्राह्मणसे कहा कि—हे विप्रो ! अपने मन से आप विचार करके शीघ्र ही कहें कि—यह वाल्मीकिका वचन सत्य है कि नहीं ? ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि—बेशक यह सत्य है. ऐसा कौन है जो इस कथनको असत्य कह सके ? क्योंकि उदयरूप सूर्यको अनुदयरूप कौन कह सक्ता है ! अर्थात कहीं दिनकी भी रात हो सक्ती है ! कदापि नहीं ॥ ७८ ॥ तब मनोवेगने कहा कि—यदि दधिमुखका मस्तक जो कि कटा हुवा नहीं था और वह अन्य मनुष्यकी धडके निःसन्धि लग गया तो मेरा कटा हुवा मस्तक तुरित ही जुडगया क्यों नहीं सत्य कहते ? ॥ ७९ ॥ तथा तीक्ष्ण खड्गके द्वारा रावणने अंगदके दो टुकडे कर डाले और फिर हनूमानने कैसे जोड दिये ? ॥ ८० ॥ एक दानवेन्द्रने पुत्रप्राप्तिके अर्थ देवीकी उपासना करी; देवीने प्रसन्न होकर उसकी वांछा पूरण करनेके

लिये एक पिंड (कोई खानेकी वस्तु) दिया. और कहा कि–यह पिंड तेरी स्त्री खावैगी तो तेरे पुत्र होगा. सो दानवेन्द्रके दो स्त्री थीं. दोनोंमें ही बराबर अनुराग था, इस कारण उसने वह पिंड आधा आधा करके अपनी दोनों स्त्रियोंको खिला दिया ॥ ८१–८२ ॥ जब उन दोनोंके गर्भके दिन पूरे हो गये, तब उन दोनोंके मनुष्यका आधा २ अंग उत्पन्न हुवा. सो उनको निरर्थक समझ घरके बाहर फेंक दिया परन्तु जरा नामकी राक्षसीने उन दोनों खंडोंको मिलाया तो दोनोंका एक लडका हो गया वही लडका देवमनुष्योंको जीतनेवाला प्रशंसनीय है पराक्रम जिसका, ऐसा जगत्प्रसिद्ध जरासन्ध नामका राजा हुवा ॥ ८३–८४ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब घावरहित शरीरके दो टुकडे जुडकर एक हो गये तो मेरा मस्तक तुरतका कटा हुवा ताजे खूनसहित होनेपर भी कैसे नहिं जुडा ? ॥८५॥ जरासन्ध और अंगदादि जुदे २ कलेवर जुडकर जीवित रहे तो मेरा धड और मस्तक कैसे नहिं जुडा ? ॥ ८६ ॥ तथा और भी सुनो, पार्वतीका पुत्र कार्तिकेय [षडानन] छैः टुकडोंसे जोड कर बनाया गया है. तो मेरा कटा हुवा देह और मस्तकका जुडना क्यों नहिं विश्वास किया जाता ॥ ८७ ॥ इसके सिवाय षडानन देव है, वह छहो मुखोंसे खाता है, और मनुष्यनीके उत्पन्न हुवा सो यह भी असंभव है ॥ ८८ ॥ तथा देवांगनाके उत्पन्न हुवा कहो सो भी

नहिं बनता. क्योंकि रक्तमलादि रहित देवांगनाके गर्भका होना शिलाके (पत्थरके) गर्भ होनेकी समान असंभव है ॥ ८९ ॥ ये सब सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि–हे भद्र ! तूने जो कहा सो सब सत्य है परन्तु तेरे मस्तकने तो वृक्षपर फल खाये और नीचे तेरा पेट भर गया. यह कैसे सत्य हो सक्ता है ? ॥ ९० ॥ तब सपेद वस्त्रधारी मनोवेगने कहा कि–हे ब्राह्मणो ! श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे मरे हुये देहरहित पिता पितामहादिकी तृप्ति होती है तो मेरा शरीर मस्तकके निकट रहते मेरी तृप्ति व उदरपूर्ति क्यों नहिं हो सक्ती ? ॥ ९१ ॥ वडा आश्चर्य है कि–जो जला कर खाक कर दिये गये और जिनको मरेहुये वहुत काल वीत गया, ऐसे पित्रादिक तो अन्यको भोजन करानेसे तृप्त हो जाते हैं और मेरा शरीर पास रहते भी मेरी तृप्ति नहीं हो ॥ ९२ ॥ इसी प्रकार नर्कके भयसे भयभीत न होकर मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अंधे होकर व्यासादिकने धर्ममें प्रवीण महान् पूजनीय पुराण पुरुषोंके [श्रेष्ठपुरुषोंके] विषयमें भी कुछका कुछ वक दिया है ॥ ९३ ॥ जैसे कि–दुर्योधन जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंका भ्रमर धन्यपुरुष चर्मशरीरी कहिये उसी भवसे मोक्षपदको प्राप्त होनेवाला था. सो युद्धमें भीमके द्वारा मारा गया. इसप्रकार व्यासने कहा है सो सर्वथा असत्य है ॥ ९४ ॥ और मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिंगन करनेकी है वांछा जिनके, ऐसे मोक्षगामी कुंभ-

कर्ण इन्द्रजीतादि विद्याधर पुरुषरत्नोंको व्यासने निन्द-नीय मांसके भक्षण करनेवाले दुष्ट और मनुष्योंको खाने-वाले राक्षस बताया है. सो बडा अन्याय किया है ॥९५॥ जो वालिमहात्मा कर्मबन्धोंको नष्ट करके सिद्धिवधूके वर-पणेको प्राप्त हुये अर्थात् मोक्षमें गये, उनको वाल्मीकिने रामसे मारा गया लिखा है सो सर्वथा असत्य है ॥ ९६ ॥ एक समय कैलास पर्वतपर वालिमुनिके ध्यानस्थित बैठे रहनेके कारण कैलास परसे जाता हुआ रावणका विमान रुक गया. जिससे रुष्ट होकर रावण अपने विद्याबलसे शरीरको बडा करके कैलासपर्वतको उठाकर समुद्रमें डाल देनेको तत्पर हुआ ॥ ९७ ॥ कैलासपर्वत परके जिनमंदिरों की रक्षा करनेकेलिये वालिमुनिराजने अपने पांवके अंगूठेसे कैलासको दबा दिया, तब लंकाधिपति रावण पांवोंको संकोचकर बहुत रोया ॥ ९८ ॥ इसप्रकार वालिमुनिके द्वारा कैलासकी रक्षा हुई, सो लोकप्रसिद्ध है. परन्तु व्यासादिक कवि हैं, सो रुद्रकेलिये जोडते हैं सो कहां तो मुनिसुव्रत भगवानके तीर्थमें होनेवाला रावण? और कहां वर्धमानस्वा-मीके समय होनेवाला रुद्र? कहींका कहीं जोड लगा दिया ॥ ९९ ॥ और अहल्याके संयोगसे तो दीनरुचि इन्द्र नामा विद्याधर दूषित हुआ था—और मूर्खोंने सौधर्मस्वर्गका पति निर्मलरुचिवाले इन्द्रको भ्रष्ट हुवा कह दिया. सो ऐसा कदापि नहिं है क्योंकि—देव और मनुष्यनीका संग कदापि

नहिं हो सक्ता ॥ १०० ॥ और सौधर्मस्वर्गका अधिपति महात्मा, सबसे अधिक है लक्ष्मी जिसकी ऐसे इन्द्रको 'रावणने जीत लिया' इसप्रकार नष्टबुद्धियोंने प्रसिद्ध किया है, सो यह कहना कैसा है जैसे कि–कीडेने सिंहको जीत लिया ॥ १०१ ॥ इन्द्रनामा विद्याधरकी जगह स्वर्गपति इन्द्रदेवको जीता हुवा कहते हैं. सो ठीक ही है. कि–विचारशून्य दुर्जन होते हैं, वे इसी प्रकार महापुरुषोंको कलंकित करके जगतमें प्रसिद्ध करते हैं ॥ १०२ ॥ जो विष्णु (कृष्ण नारायण) जगतका पूजनीय जगत्प्रसिद्ध महावली तीन खण्डका अधिपति था, उसने अपने नौकर अर्जुनका सारथीपना व दूतपना किया कहते हैं सो यह कैसा आश्चर्य है ? और ऐसे महापुरुषको कैसा कलंकित किया है ? ॥ १०३ ॥ सो हे ब्राह्मणो ! ये सब पुराण जगतके जीवोंके चित्तमें भ्रम पैदा करनेवाले और असत्यार्थका प्रकाश करनेवाले हैं इस प्रकार जानकर इन लौकिक पुराणोंका अमितगति कहिये अपरिमाण ज्ञानके धारक निर्मल चित्तवाले पुरुषोंको चाहिये कि–अपने मनमें विश्वास न रक्खें ॥ १०४ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य-विरचित धर्मपरीक्षा संस्कृत-ग्रंथकी बाला-वबोधिनी भाषाटीकामें सोलहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १६ ॥

जब ब्राह्मणोंको निरुत्तर देखा तो वे दोनों विद्याधर पुत्र वहांसे निकलकर अनेक वृक्षोंकर शोभित उसी उपवनमें [बागमें]

आगये और ॥ १ ॥ श्वेतांबर वेषको छोडकर सज्जनकी समान नम्रीभूत विचित्र फलवाले एक वृक्षके नीचे बैठे ॥ २ ॥ तब जिनमत ग्रहण करनेकी इच्छासे पवनवेगने कहा कि–हे मित्र ! ब्राह्मणोंके शास्त्रोंका विशेष और भी सुना ॥ ३ ॥ तब मनोवेगने कहा कि–हे मित्र ! ब्राह्मणोंके यहां धर्मादिकमें प्रमाणभूत एक वेदशास्त्र है उसको वे लोग अकृत्रिम (अपौरुषेय) और निर्दोष बताते हैं, परन्तु उसमें संसाररूपी वनको बढानेवाली हिंसाका प्रतिपादन किया गया है इसकारण ठग धूर्त्तोंके अथवा निशाचरोंके शास्त्रके समान समझकर उत्तमपुरुष उसको प्रमाण नहिं करते क्योंकि— ॥ ५ ॥ वेदमें कही हुई हिंसा ही यदि धर्मका कारण हो जाय तो फिर वेदमें और ठगोंके शास्त्रमें कुछ भी अन्तर (फर्क) नहिं दीखता है ॥ ६ ॥ वेदमें अपौरुषेयताका प्रतिपादन करते हैं, परन्तु विचारकरनेसे किसीप्रकार भी अपौरुषेयता सिद्ध नहिं होती क्योंकि ॥ ७ ॥ तालु कंठ ओष्ठादिसे उत्पन्नहुये वेदको अकृत्रिम कैसे कह सक्ते हैं ? यदि ऐसा कहा जायगा तो मिस्त्रीके बनाये हुये महलको भी अकृत्रिम मानना पडेगा ॥ ८ ॥ यदि कोई कहै कि–ताल्वादिक तो वेदको प्रकाश करनेवाले हैं न कि उत्पन्न करनेवाले, सो यह कहना भी नहिं बनता. क्योंकि–इसमें कोई भी निश्चयकारक हेतु नहिं दीखता. जैसे दीपक प्रकाशक है, उससे घटपटादि प्रकाशित होते हैं. परन्तु घटपटादिक

जिसप्रकार विना दीपकके भी प्रकाशित हो सक्ते हैं. उस प्रकार तालुआदिके विना वैदिक शब्द कदापि प्रकाशित नहिं हो सक्ते ॥९-१०॥ तथा कृत्रिम शास्त्रोंमें और वेदोंमें कोई विशेषता भी नहिं दीखती फिर वैदिक लोग किसप्रकार उसकी अपौरुषेयता सिद्ध करते हैं ॥ ११ ॥ इसके अतिरिक्त यदि तालुकंठ ओष्ठादिक प्रकाशक हैं तो जिसप्रकार दीपक अनेक घटपटादिको एक साथ ही प्रकाशित कर देता है. उसीप्रकार तालुआदिक व्यापक अकार आदि वर्णोंको (वेदको) एक साथ ही प्रकाशित क्यों नहिं करते ? ॥ १२ ॥ सर्वज्ञके विना वेदों का अर्थ स्पष्टतया (यथार्थ) किसप्रकार प्रगट हो सक्ता है ? यदि वेद स्वयं ही अर्थप्रकाशक हैं तो इसमें अनेक विसंवाद खडे होते हैं. सो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि—जैनबौद्धादिके सिवाय शैव वैष्णव दयानंदी आदि समस्त मतवाले अपनेको वेदानुयायी कहते हैं. परन्तु परस्पर एक दूसरेकी निंदा करते और वेदका असत्य अर्थ करनेवाला बताते हैं ॥ १३ ॥ यदि वेद अनादिनिधन (अकृत्रिम) ही है तो वेदमें इस युगमें होनेवाले ऋष्यशृङ्ग, तित्तरीय आदि ऋषियोंके हजारों गोत्र और शाखाओंका वर्णन कैसे लिखा हुवा है ॥ १४ ॥ यदि कोई कहै कि—वेदका अर्थ परम्परासे जाना जाता है तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसका मूल कारण सर्वज्ञ नहीं है, उसकी परम्परा कहांसे आई ? ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि समस्त असर्वज्ञ

मिलकर सर्वज्ञकी सदृश वेदार्थको जान सक्ते हैं. सो यह भी ठीक नहीं. क्योंकि—सबके सब अन्धे मिलकर अपने इष्टमार्गको कदापि नहीं जान सक्ते ॥ १६ ॥ दूसरे सबके सब असर्वज्ञोंके होनेपर अनादि कालके नष्ट हुये वेदार्थको आदिम लोकव्यवहारके सदृश कोन प्रकाश कर सक्ता है ॥ १७ ॥ इसके अतिरिक्त सज्जन विद्वज्जनोंमें अपौरुषेयता सर्वत्र समीचीन भी नहीं मानी जाती. क्योंकि-जारचौरोंका पंथ भी तो अपौरुषेय है. अर्थात्—चोरी, वदमाशी आदि भी किसी खास मनुष्यने नहीं चलाई है सो ऐसा कौन पुरुश है जो जारचौरोंके पंथको समीचीन माने ॥ १८ ॥ दूसरे जिस प्रकार दुष्ट शिकारी लोग वनमें जाकर अनेक प्राणियोंको पीडित करते हैं, उसी प्रकार यज्ञकरानेवाले ब्राह्मणोंकेद्वारा संसारभ्रमणकी कारण ऐसी जीवहिंसा की जाती है ॥ १९ ॥ दुष्ट व्याधोंकी (भीलोंके) सदृश यज्ञ करानेवालोंकेद्वारा जबर्दस्तीसे मारेहुये तथा संक्लेशित व व्याकुलित किये हुये जीव स्वर्गमें जाते हैं. सो हे मित्र ! वैदिकोंका इसप्रकार कहना कैसा आश्चर्यकारक है क्योंकि स्वर्गकी जिस उत्तम गतिको संसारी जीव धर्माचरण नियम और ध्यानादिक कठिन तपस्यायें करके प्राप्त करते हैं, वह गति जबर्दस्तीसे मारेहुये जीवोंको किसप्रकार प्राप्त हो सक्ती है ? ॥ २०—२१ ॥ इस कारण महाहिंसाके साधक वेदमतावलम्बियोंके वचन सत्पुरुषोंको कदापि नहिं मानना चाहिये. कहीं हिंसक-

व्याधोंके (शिकारियोंके) वाक्य धर्मात्मा लोग हृदयमें धारण करते हैं ? कदापि नहीं ॥ २२ ॥ बहुतसे मूर्ख सत्य शौच तप शील ध्यान स्वाध्यायादि उत्तम आचरणोंसे रहित हो कर भी ब्राह्मणादि उत्तम जातिमें पैदा होनेमात्रसे ही अपनेको धर्मात्मा और सबसे उच्च श्रेष्ठ मानते हैं. सो यह भी बडा भ्रम है. क्योंकि—सदाचार कदाचारके कारण ही जाति भेद होता है. केवल ब्राह्मणकी जाति मात्र ही श्रेष्ठ है, ऐसा नियम नहीं है॥ २३—२४ ॥ वास्तवमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चारों ही एक मनुष्यजाति हैं परन्तु आचारमात्रसे इनके चार विभाग किये जाते हैं ॥ २५ ॥ कोई कहै कि—ब्राह्मणजातिमें क्षत्रिय (सूरवीर) कदापि नहिं हो सक्ता; क्योंकि—चावलोंकी जातिमें कोदों कदापि उत्पन्न हुये नहिं देखे ॥ २६ ॥ तुम पवित्राचारके धारकको ही ब्रह्मण कहते हो, शुद्धशील की धारक ब्राह्मणीसे उत्पन्न हुयेको ब्राह्मण क्यों नहिं कहते इसका उत्तर यह है कि—ब्राह्मण और ब्राह्मणीका सदाकाल शुद्धशीलादिक पवित्राचार नहीं रह सक्ता. क्योंकि-बहुत काल बीत जानेपर शुद्धशीलादिक सदाचार छूट जाते और जातिच्युत होते देखिये हैं ॥ २७—२८ ॥ इसकारण जिस जातिमें संयम नियम शील तप दान जितेंद्रियता और दयादि वास्तवमें विद्यमान हों, उसको ही सत्पुरुषोंने पूजनीय जाति कहा है ॥ २९ ॥ क्योंकि तपादिकमें बुद्धि

लगानेसे ही योजनगन्धा सारिखी धीवरी आदिके गर्भमें उत्पन्नहुये व्यासादिककी पूजा होती देखिये है ॥ ३० ॥ तथा शीलसंयमादिके धारक नीचजाति होनेपर भी स्वर्गमें गये और जिनोंने शीलसंयमादिक छोड दिये, ऐसे कुलीन भी नरकमें गये हैं ॥ ३१ ॥ उत्तम गुणोंसे ही उत्तमजाति पैदा होती है और उत्तमगुणोंके नाश होनेसे नष्ट हो जाती है. इसकारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि उत्तम गुणोंको आदरपूर्वक धारण करे और नीचताको करनेवाला जाति-मात्रका गर्व करना छोडकर जिससे अपनेमें उच्चपणा आवे ऐसे शीलसंयमादिका आदर किया करे ॥ ३२—३३ ॥ बहुतसे मूढ शीलसत्यादि सदाचारोंके विना ही गंगास्नानादिकसे अपनेको पवित्र (पापरहित) मानते हैं, सो मेरी समझमें उनकी समान पापरूपी वृक्षके बढानेवाले और कोई भी नहीं हैं; क्योंकि शुक्रशोणितसे बने हुये और माताको उगालसे बढे हुये महाअपवित्र शरीरको स्नानकरके पवित्र करते हैं. सो इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा ! ३४-३५ जलसे शरीरके बाहरका मैला धुल सक्ता है किन्तु अंतरंगके शुक्र शोणित हाड मांसादिक अथवा पाप धोये जा सक्ते हैं. यह बात किसके हृदयमें ठहर सक्ती है ? अर्थात् इस बातको कौन बुद्धिमान मानसक्ता है ? ॥ ३६ ॥

संसारी जीव जो पाप; मिथ्यात्व असंयम अज्ञानसे उपार्जन करते हैं. वह पाप निश्चय करके सम्यक्त्व, संयम

और ज्ञानके बिना कदापि नष्ट नहिं हो सकता ॥ ३७ ॥ क्रोधमानमायालोभादि कषायोंसे उत्पन्न हुवा पाप गंगा स्नानादिसे धोया जाता है. ऐसे वचन मूढात्मा ही कहते हैं. मीमांसक (परीक्षक) विद्वान् कदापि नहिं कह सकते ॥ ३८ ॥ जो जल शरीरको ही शुद्धकरनेमें असमर्थ है, वह शरीरके भीतर रहनेवाले दुष्ट मनको किसप्रकार शुद्ध वा निर्मल कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ जो लोग ऐसा कहते हैं कि—गर्भसे मृत्युपर्य्यंत यह जीव पृथिवी अप तेज वायु इन ४ भूतोंसे (तत्वोंसे) ही बना हुवा है. इन ४ तत्वोंके वा पदार्थोंके सिवाय अन्य कोई जीव पदार्थ नहिं है वे लोग अपनी आत्माको ठगते हैं ॥ ४० ॥ चित्त अर्थात् ज्ञान जो है सो आत्माका (जीवका) स्वभाव है. और चित्तका (ज्ञानका) कार्य जानना वा विचार करना है. यह जानने वा विचारनेकी शक्ति प्रत्येक देहधारीमें प्रतिक्षण पाई जाती है. सो प्रतिक्षणके ज्ञानको वा विचारको पूर्व क्षणका ज्ञान वा विचार कारण होता है अर्थात् आदिके ज्ञानसे व विचारसे मध्यका ज्ञान और मध्यके ज्ञानसे अन्तका ज्ञान और अंतके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है. जब इसप्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व २ ज्ञान कारण है तो उसका अभाव कदापि नहिं हो सकता. जब ज्ञानगुणका अभाव नहिं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात् जीवका अस्तित्व मानना ही पडैगा ॥ ४१—४२ ॥ यद्यपि

शरीर दीखने पर भी चैतन्य (जीव) देखनेमें नहिं आता, परन्तु शरीर है सो चैतन्य नहिं है. जड है. रूपी है. इस कारण शरीरमें जो चैतन्यमात्र दीखता है वह, इसका विरुद्धधर्मी चैतन्य (जीव) अरूपी है. सो जिसप्रकार जडरूप शरीर जडरूपनेत्रोंसे दीखता है, उसीप्रकार अरूपी होनेसे चैतन्य वा जीवपदार्थ भी ज्ञानचक्षुसे प्रतीत होता है. यही शरीर और चेतनका स्पष्ट भेद है. जडरूप नेत्रोंसे चैतन्य देखना चाहो, सो कदापि नहिं दीख सकता ॥ ४३--४४॥ इसप्रकार समस्तभूतवादियोंमें आत्माका अस्तित्व प्रत्यक्ष होनेपर भी मूढलोकोंने किसप्रकार कह दिया कि–परलोक नहिं है. आत्मा नहिं है. इत्यादि. ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार दुग्धमेंसे पानी अलग होनेपर प्रतीत होता है कि पानी जुदा और दुग्ध जुदा है. इसीप्रकार शरीर और आत्माका भी भेद कहा गया है ॥ बहुतसे अल्पज्ञ (थोडा जाननेवाले) लोग बंध मोक्षादि तत्त्वोंका अभाव कहते हैं. सो ऐसा कहनेवालोंके होते हुये उनसे बडा अन्ध कौन धृष्ट है ? ॥४७॥ क्योंकि–आत्मा यदि सर्वथा और सदाकाल कर्मसे नहिं बन्धता है तो इस दुःखमयी घोरसंसारमें क्यों भ्रमण करता है ? ॥ ४८ ॥ यदि आत्मा नित्य शुद्ध और ज्ञानी है तो उसकी इस दुर्गंधमय अपवित्र शरीरमें स्थिति क्यों है ? जब यह किसीके वशमें है तभी तो यह जेलखानेके समान इस दुर्गन्धमय शरीरमें स्थित रहता है, नहिं तो क्यों रहता ? ॥ ४९ ॥

यदि सुख दुःखादिका ज्ञान देहके होता है तो फिर पत्थर, लकड़ आदि तथा निर्जीव शरीरके भी ज्ञान होना चाहिये॥ बन्धबुद्धिको नहिं करता जहां तहां प्रवर्त्तमान होता हुवा आत्मा कर्मसे नहिं बन्धता, यह वचन कहना कदापि ठीक नहिं है ॥५१॥ निर्बुद्धि जीव जहां तहां कैसे प्रवृत्त होता है? कहीं जड़रूप पर्वतोंके भी हलन चलन क्रिया देखी गई है? ॥ ५२ ॥ मरनेकी इच्छा न करके भी यदि कोई महाविष खाता है तो क्या नहिं मरता है? अवश्य मरता है ॥ ५३ ॥ यदि आत्मा सर्वथा शुद्ध होता तो फिर ध्यानाभ्यासादि क्यों किये जाते हैं? कोई निर्मल सुवर्णकी परीक्षार्थ भी प्रवृत्ति करता है? अर्थात् कोई भी नहिं करता ॥ ५४ ॥ कोई २ केवलमात्र ज्ञानसे ही आत्माकी शुद्धि मानते हैं. सो उनको भी बड़ा भ्रम है, क्योंकि औषधीका स्वरूप जाननेमात्रसे ही किसीका रोग दूर नहिं होता. उसके खानेसे ही होता है. इसीप्रकार ज्ञानके साथ श्रद्धा और चारित्र होनेसे ही आत्माकी शुद्धि (मोक्ष) होती है ॥ ५५ ॥ कोई कोई श्वास रोकने मात्रको ही ध्यानकी सिद्धि होना मानते हैं. सो वे आकाशके फूलोंसे शेखर (मुकुट) बनानेकी इच्छा करते हैं ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि है, वह विना सुप्रयोगके प्रगट नहिं होती, उसीप्रकार आत्मा भी इस देहमें ही तिष्ठता है परन्तु मूढ लोगोंको उसकी प्राप्ति व ज्ञान नहिं होता है॥ ५७ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

और सम्यक्‌चारित्रके द्वारा आत्माके मल (कर्म) नष्ट होते हैं और यह पूर्वोपार्जित कर्म व्याधिके सदृश अनेक प्रकारके दुःखोंको देता है. सो इसे रत्नत्रयसे ही नष्ट करना चाहिये. क्योंकि—॥ ५८ ॥ जीव और कर्मका अनादि कालसे सम्बन्ध है. सो रत्नत्रयके सिवाय अन्य कोई भी इन कर्मोंको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५९ ॥ कोई २ मतवाले दीक्षामात्रसे ही आत्माकी शुद्धि होना मानते हैं. सो यह भी भ्रम है. क्योंकि केवलमात्र राज्यस्थापन होनेसे ही शत्रु नष्ट नहिं हो जाते ॥ ६० ॥ जो लोग दीक्षामात्रसे ही पापका नष्ट होना मानते हैं, वे आकाशकी तलवारके अग्रभागसे शत्रुका शिरश्छेदन करना चाहते हैं ॥ ६१ ॥ जीव, मिथ्यात्व अव्रत और क्रोधादि कषायोंके द्वारा कर्मबंध करता है, सो मिथ्यात्व, अव्रत और कषायोंके अभाव किये विना वह कर्मबन्ध किसप्रकार नष्ट हो सक्ता है ॥६५॥ जो लोग विना व्रताचरणके दीक्षामात्रसे ही मोक्षफलकी प्राप्ति होना कहते हैं, वे आकाशकी वेलके पुष्पोंकी शोभाका वर्णन करते हैं ॥ ६३ ॥ कोई कोई ऋषियोंके आशीर्वादमात्रसे ही कर्मक्षय होना मानते हैं, सो यदि ऐसा होता तो राजाके मित्रबन्धुओंके आशीर्वचनोंसे राजाके शत्रु नष्ट हो जाते, परन्तु ऐसा कहीं भी देखनेमें नहिं आता ॥ ६४ ॥ जिस दीक्षाके लेनेसे जीवोंका राग (संसारसे मोह) ही नष्ट नहीं होता तो वह दीक्षा अनेक जन्मोंके किये हुये प्राचीन

कर्मोंको किसप्रकार नष्ट कर सक्ती है ॥ ६५ ॥ "सत्यार्थगुरुनके वचनोंसे जानकर रत्नत्रयके सेवन करनेवालोंके ही पाप नष्ट होते हैं." यह वचन ही सत्य जानना ॥ ६६ ॥ हे मित्र ! कषायके वशीभूत होकर आत्माके किये हुये पाप दीक्षा लेनेसे ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इस बातको कौन विद्वान प्रमाण कर सक्ता है ? ॥ ६७ ॥ यदि कषायसहित ध्यान करनेसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति होय तो वंध्याके पुत्रका सौभाग्य वर्णन करनेमें भी द्रव्यकी प्राप्ति होना चाहिये, सो असम्भव है ॥ ६८ ॥ जिन पुरुषोंके इंद्रियोंका जय और कषायोंका निग्रह नहीं, ऐसे पुरुषोंका वचन धूर्तोंके वचनोंकी समान सत्य नहीं है ॥६९॥ ऊर्ध्व और अधोद्वारसे निकलनेसे मेरी निंदा होगी, ऐसा समझकर जो बुद्ध माताके पेटको फाडकर निकला और मांसभक्षणमें लोलुपी होकर मांसभक्षण करनेमें दोषका अभाव कहता है, उस मूढ बुद्धके कृपा (दया) किसप्रकार हो सक्ती है ? ॥ ७०-७१ ॥ जिस दुर्बुद्धिने कीडोंसे भरे हुये शरीरको जानबूझकर व्याघ्रीके मुख आगे डाल दिया, उस बुद्धके संयम कैसे हो सकता है ? ॥७२॥ जो बुद्ध प्रत्यक्षसे विरुद्ध सर्वशून्यपणा, आत्माका अभाव और क्षणभंगुरता कहता है, उसके कौनसा ज्ञान कहांसे हो सकता है ॥७३॥ जो सर्वशून्यताकी कल्पना करता है, वह बुद्ध कैसा ? और उसके मतमें बन्धमोक्षादि तत्त्वोंकी व्यवस्था ही क्या हो सक्ती है ?

॥ ७४ ॥ जिसके मतमें स्वर्गमोक्षके सुखको भोगनेवाले आत्माका ही स्पष्टतया अभाव कहा है तो उसके मतमें व्रतादिकका करना सर्वथा व्यर्थ ही है॥ ७५ ॥ जिसके मतमें क्षण २ में नवीन आत्माका आना और पहिलीका चला जाना माना है, उसके मतमें हंता और हननेयोग्य, दाता और दानादिक समस्त पदार्थ विरोधरूप हो जाते हैं. इसी कारण विद्वज्जन क्षणिकवादीके मतको सर्वथा असत्य मानते हैं ॥ ७६ ॥ जिस बुद्धके समस्त पक्ष सर्वथा प्रमाणसे बाधित हैं, उस दुरात्माके सर्वज्ञपणा होना भी असंभव है ॥ ७७ ॥ बनारस (काशी) निवासी प्रजापतिका पुत्र तो ब्रह्मा है. और वसुदेवका पुत्र कृष्ण नारायण है. तथा सात्यकि मुनिका पुत्र रुद्र (महादेव) है. सो नष्टबुद्धिलोगोंने इस अनादिनिधन सृष्टिका ब्रह्माको तो कर्त्ता, विष्णुको रक्षक और महादेवको संहारक (सृष्टिका नाश करनेवाला) कहा है, सो कैसे माना जावे ? ॥ ७८—७९ ॥ यदि इन तीनों सर्वज्ञोंकी वास्तवमें एक ही मूर्ति है तो ब्रह्मा और विष्णुने महादेवके लिंगका अन्त क्यों नहीं पाया ? ॥८०॥ सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध परमेष्ठीके ये तीनों अवयव (ब्रह्मा विष्णु महेश) अल्पज्ञ रागी और अशुद्ध कैसे हुये ? ॥८१॥ प्रलयकी स्थिति और रचनाका करनेवाला पार्वतीका पति महादेव तपस्वियोंके द्वारा लिंगच्छेदनादि शापको किसप्रकार प्राप्त हुवा ? ॥ ८२ ॥ जिन तपस्वियोंने महादेवजीको

भी महाशाप दिया, वे तपस्वी कामदेवके बाणोंद्वारा किस-प्रकार घायल होते रहे ? क्या कामदेवको शाप देकर भस्म नहीं कर सके ? ॥ ८३ ॥ जो देव तीन जगतके कर्त्ता हर्त्ता विधाता हैं और देवताओंके द्वारा नमस्कार किये जाते हैं, उन तीन महापुरुषोंको (ब्रह्मा विष्णु महेशको) कामने कैसे जीत लिया ? ॥ ८४ ॥ और जिस कामने समस्त देवोंको जीतकर अतिशय विडंबनारूप किया, उस कामको महादेवने अपने तीसरे नेत्रसे किसप्रकार भस्म कर दिया ? ॥ ८५ ॥ जो देव स्वयं राग द्वेष मोहादिक अष्टादश दोषोंके वशीभूत हो दुःख भोगते हैं, वे देव धर्मार्थी पुरुषोंको हित-कारी धर्मका उपदेश किसप्रकार कर सक्ते हैं ? ॥ ८६ ॥ हे मित्र ! जिनको सेवन करके संसारी जीव मोक्षपदको प्राप्त हो सकै ऐसे निर्दोष देव धर्म गुरु किसी मतमें भी देखनेमें नहिं आते ॥ ८७ ॥ रागी देव परिग्रही गुरु और हिंसामय धर्म सेवन किया हुआ जीवोंकी मनोवांछित सिद्धिको अतिशय दुर्लभ करै है ॥ ८८ ॥ परंतु लोग इस प्रकारकी मिथ्यात्वरूप बुद्धि अपनी सुखसमृद्धिके अर्थ करते हैं. सो ठीक ही है. क्योंकि नष्ट हो गई है बुद्धि जिनकी, ऐसे मूढजन क्या नहीं करते ? ॥ ८९ ॥ वन्ध्याका पुत्र तो राजा और शिलाका (पत्थर) पुत्र मन्त्री ये दोनों मृगतृष्णाके जलमें स्नान करके लक्ष्मीको सेवन करते हैं भावार्थ—जो लोग रागी द्वेषी देव परिग्रहधारी गुरु और

हिंसामय धर्मको सेवनकर सुखसम्पत्तिकी इच्छा करते हैं, वे वन्ध्या पुत्र और शिलापुत्रकी समान हैं ॥ ९० ॥ जिन राग, द्वेष, मद, मोह, विद्वेषादिकने समस्त सुरनरेश्वरोंको जीत लिया, ऐसे दोष सूर्यमें अन्धकारकी समान जिसके शरीरमें स्थान नहीं पाते और जिसने समस्त पापोंको नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया और जो जगतके समस्त चराचर पदार्थोंकी व्यवस्थाको जानता है, उसी त्रिलोकपूज्य सिद्धिसाधक आप्तस्वरूप जिनेन्द्रभगवानको ही उत्तम पुरुष सेवन करते हैं ॥ ९१—९२ ॥ जो समस्त नरसुर विद्याधरोंको वेधनेवाले कामके बाणोंसे नहीं ताडे गये, और संसाररूपी वृक्षको काटनेका है आशय जिनका, ऐसे जितेंद्रिय हैं. वे ही यति कहिये गुरु हैं ॥ ९३ ॥ और वही धर्मरूपी वृक्ष है कि—जिसकी जीवदयापालनरूपी मजबूत जड है. सत्य शौच शम शीलादिक पत्ते हैं और इष्ट सुखरूप फलोंके समूहको फलता है ॥ ९४ ॥ और जिसके द्वारा पण्डितजन सकारण युक्तिसे समस्त बाधारहित, सिद्धिपथ दिखानेमें तत्पर ऐसी बन्धमोक्षकी विधि जानते हैं, वही सत्यार्थ शास्त्र है ॥ ९५ ॥ यदि मद्यमांस व स्त्रियोंके अंगका सेवन करनेवाले रागी पुरुष ही धर्मात्मा होंय तो कलाल या मद्यपान करनेवाला खटिक व्यभिचारीगण ही निराकुल होकर स्वर्गको चले जांयगे ॥ ९६ ॥ जो यति क्रोध लोभ मद मोहादिसे मर्दित है, पुत्र दारा धन मंदिरादिकके चाह-

नेवाले, धर्म संयम दमादिसे रहित हैं, वे संसारी जीवोंको भवसमुद्रमें डालनेवाले हैं ॥ ९७ ॥ हे मित्र! देव तो राग द्वेषादिदोषोंसे दूषित, तपोधन (यति) परिग्रहके संगसे भ्रष्ट व व्याकुल, और धर्म जीवहिंसामयी, इन तीनोंको सेवन करनेसे ये शीघ्र ही भवसमुद्रमें डाल देते हैं ॥ ९८ ॥ जन्ममृत्युरूप अनेक मार्गों (मतों) कर तथा राग द्वेष मद मत्सरादिकर व्याप्त इस लोकमें मोक्षका मार्ग पाना दुर्लभ है. इस कारण हे मित्र! तू सदा परीक्षाप्रधानी होकर प्रवर्त ॥ ९९ ॥ जन्मजरामरणरहित देवोंकर वंदनीय देव, और दूर किया है परिग्रह काम और इन्द्रियोंका वेग जिसने ऐसा गुरु, और कपटके संकटरहित सकल जीवदयाप्रधान धर्म, ये तीनों ही, अप्रमाण है ज्ञानकी गति जिसमें, ऐसी मोक्ष लक्ष्मीके करनेवाले हैं, सो निरन्तर मेरे मनमें वसो॥

इति श्रीअमितगति आचार्य विरचित धर्मपरीक्षा संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषा टीकामें १७ वां परिच्छेद पूर्ण भया॥ १७॥

अथानन्तर पवनवेगने अन्यमतकी ऐसी दुष्टता सुनकर अपने सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेकेलिये मनोवेगसे पूछा कि हे सन्मते! इस परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकारके अन्य मतोंका किस प्रकार प्रचार हुवा सो मुझे कह ॥ १–२ ॥ तब मनोवेगने इसप्रकार पवनवेगका प्रश्न सुनकर कहा कि हे मित्र! अन्यमतोंकी उत्पत्तिका इतिहास कहता हूं सो सुन ॥ ३ ॥ इस भरतक्षेत्रमें रात्रि और दिनके

समान दुर्निवार है वेग जिसका ऐसे उत्सर्पिणी (जिसमें आयु काय सुख सम्पत्तिकी वृद्धि होती रहै) अवसर्पिणी (जिसमें उत्तरोत्तर आयु काय सुख संपत्तिकी अवनति होती रहै) नामके दो काल क्रमसे (एकके पीछे दूसरा) हमेशह छाया करते हैं ॥ ४ ॥

जिसप्रकार एक वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसीप्रकार एक २ कालमें सुखमासुखमा १ सुखमा २ सुखमादुःखमा ३ दुःखमासुखमा ४ दुःखमा ५ दुःखमदुःखमा ६ ये छै भेद [विभाग] होते हैं ॥ ५ ॥ एक एक काल दश कोडाकोडी सागरका होता है. सो जिस कालमें उपर्युक्त प्रकारसे सुखमासुखमादि ६ काल होते हैं, उसको तो अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस कालमें इनके उलटे अर्थात् दुःखमादुःखमा १ दुःखमा २ दुःखमासुखमा ३ सुखमादुःखमा ४ सुखमा ५ और सुखमासुखमा ६ इसप्रकार उत्तरोत्तर आयुकायादिककी उन्नति होती रहती है, उसको उत्सर्पिणी काल कहते हैं, इन दोनोंकी एक फिरणको एक कल्पकाल कहते हैं इस समय जो काल प्रवर्त्त रहा है, सो दश कोडाकोडी सागर का अवसर्पिणी काल है. इसीके छै खंडोंकी संक्षिप्त व्यवस्था कहता हूं ॥ ६ ॥ इस अवसर्पिणीकालमें आदिका सुखमासुखमा काल चार कोड़ाकोडी सागरका हुवा और दूसरा सुखमाकाल तीन कोडाकोडी सागरका हुवा ॥ ७ ॥ तीसरा सुखमादुःखमा काल दो कोडाकोडी सागरका हुवा. इन-

जैसे पहिले कालमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी दूसरेमें दो और तीसरेमें एक पल्यकी होती है ॥ ८ ॥ आयुकी समान उनके शरीरकी ऊंचाई भी पहिलेमें तीन कोश दूसरे में दो कोश तीसरेमें एक कोशके बराबर होती है और पहिलेमें तीन दिनसे दूसरेमें दो दिनसे तीसरेमें एक दिन से आहार होता है ॥ ९ ॥ आहारका परिमाण पहिले कालमें बेरसमान दूसरेमें आमलेसमान और तीसरेमें बहेडे के बराबरका सर्वेन्द्रियोंको बलकारी परको दुर्लभ वीर्य-वर्द्धक कल्पवृक्षोंकर दिया होता है ॥ १० ॥ इन तीनों कालोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंमें स्वामीसेवकादिकका संबन्ध व परके घर आने जानेका संबन्ध, व एक दूसरेसे हीन अधिक, तथा व्रत वा संयम कुछ भी नहिं होता ॥ ११ ॥ इन तीनों कालोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य एकसाथ चंद्रमा और चांदनीकी समान स्वाभाविक कांति और उद्योतसे सर्वांग सुंदर स्त्री पुरुषका जोडा ही उत्पन्न होता है. सो वह जोडा उनपंचास दिनोंमें समस्त भोग भोगनेमें समर्थ नवयौवनकर भूषित हो जाता है. नये जोडेके उत्पन्न होते ही पहिला जोडा अर्थात् उन दोनोंके माता पिता मर जाते हैं. और नये जोडेको अपना अस्तित्व छोड जाते हैं. इसीकारण इन तीनों कालोंमें भोगभूमिकी सदृश सब मनुष्य गिनतीमें बराबर ही उत्पन्न होते हैं ॥ १२-१३ ॥ उन जोडोंमेंसे स्त्री तो अपने पतिको प्रेमकेसाथ ' हे आर्य ' कह

कर संबोधन करती है और पुरुष है सो ' हे आर्ये ' इस प्रकार कहकर संबोधन किया करता है ॥ १४ ॥ इन तीनों कालोंमें रहनेवाले मनुष्य देहसहित धर्मकी सदृश निर्मल आकारके धारक मद्यजाति १ तूर्यजाति २ गृहजाति ३ ज्योतिरंगजाति ४ भूषणांगजाति ५ भोजनजाति ६ मालाजाति ७ दीपकजाति ८ वस्त्रजाति ९ और पात्रजाति १० इन दशप्रकारके कल्पवृक्षोंकेद्वारा दिये हुये नाना प्रकारके भोग (सुख) भोगते हैं. इसी कारण इन तीनों कालकी भूमिको भोगभूमि कहा है ॥ १५-१६ ॥ इसप्रकार अनेक प्रकारके भोग भोगते हुये इन तीनों कालोंके मनुष्य सुखसे रहते हैं. जब तीसरे कालके अन्तमें एक पल्यका आठवां भाग शेष रह जाता है तो उस कालमें १४ कुलकर अर्थात् उन भोगभूमियोंमें राजाकी समान मुखिया उत्पन्न होते हैं. वे उसी समयसे कालकी पलटना अर्थात् कर्मभूमिके होनेकी व्यवस्था समझाते रहते हैं. कल्पवृक्ष नष्ट होजाने पर सूर्य चन्द्रमा दृष्टिगोचर होते हैं तब प्रजाको क्षुधादिक वेदनासे पीडित होनेपर दुग्धफलादिकका भक्षण करना आदि समस्तप्रकारके उपाय बताकर समस्त प्रजाका भय व दुःख नष्ट करते हैं. इसीकारण इनको १४ कुलकर अथवा १४ मनु भी कहते हैं. सो इस वर्त्तमान अवसर्पिणीकालके तीसरे समय के अन्तमें पहिला प्रतिश्रुति, दूसरा सन्मति, तीसरा क्षेमंकर चौथा क्षेमंधर, पांचवां सीमंकर, छट्ठा सीमंधर, सातवां

विमलवाहन, आठवां चक्षुष्मान्, नवमा यशस्वी, दशवां अभिचंद्र, ग्यारहवां चंद्राभ, बारहवां मरुदेव, तेरहवां प्रसेनजित् और अन्तका नाभिराजा इसप्रकार चौदह कुलकर उत्पन्न हुये ॥ १७–२० ॥ ये सब १४ कुलकर जातिस्मरण (अपने पूर्व जन्मके ज्ञाता) और दिव्यज्ञानवाले होते हैं, सो समस्त प्रजाको कर्मभूमिकी व्यवस्था दिखाते हुये ॥२१॥ पूर्व दिशासे सूर्यके समान नाभिराजा और महादेवीरूप जो मरुदेवी उसके द्वारा ऋषभनाथ जिनेश्वर उत्पन्न हुये ॥ २२ ॥ सो जिस समय ऋषभनाथ तीर्थंकर स्वर्गसे चयकर मरुदेवी माताके गर्भमें आये, उस समय कुवेर अयोध्या नगरीको मनोहर कोट खाई और रत्नमय मकानोंसे शोभित करता हुआ ॥ २३ ॥ इन्द्रने निर्मल नीति और कीर्तिके समान कच्छराजाकी नन्दा सुनन्दा नामकी दो कन्याका आदिनाथसे विवाह कराया ॥ २४ ॥ उन दोनों स्त्रियोंसे आदिनाथ भगवानके ब्राह्मी सुन्दरी दो कन्या और मनको आनन्ददायक सौ पुत्र हुये ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षोंके अभाव होनेपर समस्त व्याकुल प्रजाने भगवानसे जीवनस्थिति रहनेका उपाय पूछा तो भगवानने असि मषि कृषि वाणिज्य पशुपालन और शिल्प ये छै उपाय बताये. इसके अतिरिक्त ग्राम पुर नगरोंकी रचना वगेरह चौथे कालकी समस्त व्यवस्था इन्द्रके द्वारा कराई और सुखसे राज्यभोग करते हुये ॥ २६ ॥ एक समय भगवानके

सन्मुख देवियोंका मनोहर नृत्य हो रहा था. उससमय नाचते २ एक नीलंजसा नामकी देवीका लय (मृत्यु) हो जाना देखकर भगवानने अपने मनमें विचार किया कि—॥ २७ ॥ जिसप्रकार बिजलीके समान देखते २ यह नीलंजसा देवांगना नष्ट हो गई, उसीप्रकार मोहको करनेवाली यह समस्त लक्ष्मी भी नष्ट हो जायेगी ॥ २८ ॥ जिसप्रकार मृगतृष्णामें जल और आकाशपुरीमें महाजनोंकी प्राप्ति नहीं है, उसीप्रकार इस असार संसारमें सुखकी प्राप्ति नहीं है ॥ २९ ॥ जिस इष्ट वस्तुके विना इस संसारमें एक क्षणमात्र भी नहीं रहा जाता, उस वस्तुका अग्निके समान महातापकारक वियोग सहना पडता है ॥ ३० ॥ यद्यपि चन्द्रमा क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हो जाता है. और दिन रात भी जाते और आते हैं. परन्तु नदीके जलके समान गया हुवा यौवन कदापि नहीं आता ॥३१॥ भाई बन्धुओंका संयोग तो मार्गमें वा सरायमें रस्तागीर मिलनेके समान है और मित्र दोस्तोंका स्नेह है सो विजलीकी चमकके समान अस्थिर है और ॥ ३२ ॥ पुत्र मित्र गृह द्रव्य धन धान्यादि सम्पदाकी प्राप्ति स्वप्नकीसी माया है, कभी स्थिर नहीं रह सक्ती ॥ ३३ ॥ जिसकेलिये महापाप करके द्रव्यादि उपार्जन (संग्रह) किये जाते हैं, वह सरद ऋतुके बादलके समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस दुःखदायक संसारमें ऐसा कोई

भी जीव नहीं दीखता कि—जो जगतभरमें फिरनेवाले कालके (मृत्युके) सन्मुख न पडता हो ॥ ३५ ॥ इस संसारमें एकमात्र रत्नत्रयके सिवाय कोई भी जीवोंको आत्मीयकल्याणका कारण नहीं है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार विचार करके जिनेन्द्र भगवानने घरसे बाहर निकलनेका मानस किया- सो ठीक ही है. संसारकी असारता जाननेवाले घरमें कैसे रह सकते हैं ? ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् अपने आप लेनेके लिये आई हुई निर्दोष सिद्धभूमिके समान देवों-कर लाई हुई मुक्ताहारविभूषित पालकीमें बैठ कर वनको चल दिये. ॥ ३८ ॥ वह पालकी पहिले तो राजाओंने उठाई. फिर देवताओंने उठायी सो ठीक ही है—बुद्धिमान पुरुष समस्त प्रकारके धर्म कार्योंमें सामिल होते हैं ॥ ३९ ॥ तत्पश्चात् सकवामुख वनको प्राप्त होकर भगवानने एक वटवृक्षके नीचे पर्यंकासन बैठकर समस्त भूषण वसन उतारे और सिद्धोंको नमस्कार करके मजबूत पांच मुट्ठियोंसे अपने समस्त केश उखाड डाले ॥ ४०—४१ ॥ तत्पश्चात् समस्त जीवोंको कल्याणकारक महापराक्रमी सुरनरसेवित वे जिनेन्द्र भगवान् सुमेरुकी समान कायोत्सर्गसे [खडे होकर] एक वर्षका ध्यान धरके स्थिर हो गये ॥ ४२ ॥ तत्पश्चात् इन्द्र भगवानके केशोंको रत्नमयी पेटीमें रखकर अपने मस्तकपर धारणकरके समस्त देवों सहित आनंदोत्साहपूर्वक पांचवें

क्षीरसमुद्रमें पधराकर अपने अपने स्थानको गये ॥ ४३ ॥ भगवानने त्यागरूप प्रकृष्ट योग धारण किया. इसीकारण उस शकटामुख वनका नाम 'प्रयोग' [प्रयाग] प्रसिद्ध हुवा है ॥ ४४ ॥ भगवानकी देखादेखी चार हजार अन्यान्य राजाओंने भी उसीप्रकार तपग्रहण कर लिया; सो ठीक ही है. सत्पुरुषोंकर आचरण किये हुए कार्यको सभी जने आश्रय करते हैं ॥ ४५ ॥ सो वे सब राजा कुछ दिन तो ऋषभनाथ भगवानके सदृश ही विना आहार पानीके रह गये, परन्तु छै महीनेके भीतर २ वे सब राजा दीनचित्त हो, क्षुधा तृषादि परीषह सहनेको असमर्थ होकर भ्रष्ट हो गये ॥ ४६ ॥ तब लाचार होकर वे सब दिगम्बर फल भक्षण करके अशुद्ध जल पीने लगे. सो ऐसा कौनसा अकार्य्य है जो क्षीणशरीर क्षुधातुर न करे ? ४७ इन दिगम्बर मुनियोंका यह कुत्सिताचरण देखकर उस वनके किसी देवताने कहा कि–हे नृपतिगणो ! दिगम्बर मुनिका भेष धारण करके ऐसा कार्य करना कदापि उचित नहीं है. क्योंकि दिगम्बरमुनि होकर जो अपने आप ग्रहण करके आहारपानादि करते हैं, वे नीच पुरुष कदापि संसारसमुद्रसे पार नहिं हो सक्ते ॥ ४८–४९ ॥ जो दिगम्बर साधु होते हैं, वे नवधाभक्तिपूर्वक अन्यकर दिया हुवा भोजन धर्मबुद्धिकेलिये ग्रहण किया करते हैं. सो तुम इस दिगम्बरभेषसे फलादिकका आहारपानादि करोगे तो ठीक न

होगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार देवताके वचन सुनकर वे सब राजा व्याकुलचित्त हो कौपीन धारण करके गड्ढे व नदियों-का घोर कालकूटविषकी समान अपेय अप्रासुक पानी पीते हुये ॥ ५१ ॥ कितनेयक राजा तो क्षुधातृषासे पीडित हो, लज्जा छोडकर अपने अपने घरको चले गये. क्योंकि मनुष्य तभीतक लज्जावान रहता है, जबतक कि-उसका चित्त दूषित न हो ॥ ५२ ॥ कितने ही राजाओंने ऐसा विचार किया कि-यदि हम भगवानको वनमें छोडकर घर जावेंगे तो भगवानके पुत्र भरतचक्रवर्ती रुष्ट होकर हमारी वृत्ति छीन लेंगे, तब भी तो भिक्षाटन करना पडैगा, इससे तो भगवानकी सेवा करते हुये इस वनमें रहना ही श्रेष्ठ है. इस प्रकार विचार करके वे सब राजा कन्दमूलादि भक्षण करतेहुये वहीं पर रहे अपने २ घरको नहिं गये ॥५३-५४॥ तत्पश्चात् कच्छ महाकच्छराजाने अपने पांडित्यके गर्वसे फलमूलादि भक्षण करना ही तापसीयधर्म बताकर प्रचार किया ॥ ५५ ॥ और मरीचिकुमारने सांख्यमतकी प्ररूपणा करके अपने कपिलादि शिष्योंको उपदेश किया ॥ ५६ ॥ इसीप्रकार अन्यान्य राजाओंने भी अपनी २ रुचिके अनु-सार तीनसै तरेसठ प्रकारके महामिथ्यात्वको बढानेवाले पाखंडमत चलाये ॥ ५७-५८ ॥ इनमेंसे शुक्र और बृह-स्पति नामक दो राजावोंने मिलकर स्वेच्छापूर्वक अपनी इंद्रियोंको पोषण करते हुये चार्वाकदर्शनकी प्रवृत्ति करी

॥ ५९ ॥ इसप्रकार उन राजाओंने अनेकप्रकारकी विडंबना करी. सो ऐसा कौन पुरुष है जो बडे पुरुषोंकीसी क्रियाओंको करनेकी इच्छा रखतेहुये भ्रष्ट न हों ॥ ६० ॥ आहारके विना परीषहसे घवरायेहुये ये सब इसी प्रकार अन्यान्य पाषण्डोंकी भी प्रवृत्ति करें तो आश्चर्य नहीं, इस प्रकार विचार करके आदिनाथ भगवान्‌ने अपना ध्यान पूर्णकरके मुनियोंके करनेयोग्य शुद्धान्न ग्रहण करनेकेलिये मानस किया ॥६१–६२॥ सो हस्तिनापुरके श्रेयांसराजाने उत्तम स्वप्नके द्वारा जातिस्मरण होनेसे पूर्वजन्मकी आहारदानकी विधि जानकर नवधा भक्तिपूर्वक भगवानको इक्षुरसका भोजन कराया ॥ ६३ ॥ उस समय जो उत्तम श्रावक (व्रतधारी) थे, उन सबको भरतचक्रवर्त्तीने अत्यंत भक्तिपूर्वक धनधान्यादिसे सत्कार करके चौथा ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया. सो चक्रवर्तिसे पूजाप्रतिष्ठा पाकर वे ब्राह्मण बडे विस्तारको प्राप्त हो अतिशय उद्धत हो गये ॥ ६४ ॥ आदिनाथ भगवानने इक्ष्वाकुवंश, नाथवंश, भोजवंश और उग्रवंश ये चार वंश चलाये सो जगतमें प्रसिद्ध हुये ६५ उस समय जो व्रती थे वे तो ब्राह्मण कहलाये. जो प्रजाकी भयसे रक्षा करते थे, वे क्षत्रिय कहलाये. जो व्यापारमें कुशल थे, उनका नाम वैश्य पडा और जो सेवा करनेमें तत्पर थे, वे शूद्र कहलाये; इस प्रकार इन चारों वर्णोंकी व्यवस्था थी ॥ ६६ ॥ भरतचक्रवर्त्तिके तो सबसे बडा-

पुत्र अर्ककीर्त्ति हुवा और भरतके भाई बाहुबलिके सोम नामका पुत्र प्रसिद्ध हुवा. इन ही दोनोके वंश सूर्यवंश और सोमवंश (चंद्रवंश) नामसे प्रसिद्धिमें आये ॥ ६७ ॥ तत्पश्चात् कालदोषसे मौंडिलायन नामक पार्श्वनाथ भगवान्‌का शिष्य एक तपस्वी था. उसने महावीरस्वामीसे रुष्ट होकर बौद्धमतको प्रगट किया [इस श्लोकमें 'वीरनाथस्य' षष्ठयन्तपद होनेसे व दो पुस्तकोंमें 'मौगलायनः' पाठ होनेसे ऐसा भी अर्थ होता है, कि महावीरस्वामीके तपस्वी शिष्यने मौगलायनमत (मुसलमानोंका मत) प्रगट किया] ॥ ६८ ॥ उसने शुद्धोदन राजाके पुत्रको बुद्ध परमात्मा कहकर प्रगट किया है सो ठीक ही है, कोपरूपी वैरीसे पराजित होकर संसारी जीव क्या २ नहिं करते ? ॥ ६९ ॥ कृष्णके मरनेपर उसको बलभद्रजी भ्रातृमोहके वशीभूत हो छै महिनेतक लिये २ फिरे—उसी दिनसे जगतमें कंकाल-नामक व्रत प्रसिद्धिमें आया ॥ ७० ॥ हे मित्र ! मिथ्यादृष्टि पुरुषोंने जो अगण्य पाखण्डमत चलाये हैं उनका मैं कहांतक वर्णन करूं ? ॥ ७१ ॥ जो पाखंड चोथे कालमें बीजरूपसे स्थित थे, वे सब इस कलिकालरूपी (पंचमकालरूपी) पृथिवीमें प्रगट होकर विस्तारको प्राप्त हो गये ॥ ७२ ॥ जो समस्त देवोंकर वंदनीक है और विरागताके साथ केवलज्ञानरूपी आलोकसे अवलोकन किया है तीन-लोक जिसने, वही जिनेन्द्र भगवान परमेष्ठी है (सत्यार्थ-

आप्त वा देव) है ॥ ७३ ॥ और जिस आगममें संसार और मोक्षको कारण सहित वर्णन किया है, और समस्त-प्रकारके बाधक प्रमाणोंसे निर्मुक्त (रहित) है, वही सच्चा आगम (शास्त्र) है ॥ ७४ ॥ और उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्म-चर्य ये ही कल्याणकारक दशप्रकारके धर्म हैं और ॥७५॥ जो बाह्य अभ्यन्तर २४ परिग्रहरहित जितेन्द्रिय निःकषाय परिषहोंके सहनेवाला नग्नमुद्राका धारक हो, वही सच्चा गुरु है ॥ ७६ ॥ इसप्रकारके ये चारों (देव शास्त्र गुरु धर्म) मोक्षरूपी नगरके तो द्वार, संसाररूपीदावानलको जलसमान मनवांछित सिद्धिके एकमात्र कारण हैं. तथा ॥ ७७ ॥ ये ही चारो सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र और तपरूपी माणिक्यके देनेवाले हैं, इन चारोंके सिवाय और कोई भी मुक्तिका कारण नहीं है ॥ ७८ ॥ हे मित्र ! इस असार संसारमें भ्रमण करते हुये जीवोंने सर्वप्रकारकी लब्धियें प्राप्त कीं परंतु इन चारोंमेंसे एक भी प्राप्त नहिं किया ॥ ७९ ॥ इस असारसंसारमें प्रथम तो जीवको आर्य्यदेशकी प्राप्ति दुर्लभ है. देश मिला तो उत्तमकुल और उत्तम जातिका मिलना दुर्लभ है. इनसे दुर्लभ रूप, रूपसे दुर्लभ जीना (दीर्घायु) है यदि दीर्घायु भी प्राप्त हुई तो इंद्रियोंकी पूर्णता व शरीरकी नीरोगता अत्यन्त दुर्लभ है. ये सब पुण्यप्रतापसे मिलगये तो समीचन धर्मोपदेशका मिलना तथा उसका ग्रहण होना

तो अत्यन्त दुर्लभ है. इन समस्त कारणोंके मिल जानेपरभी संसाररूपी वृक्षको कुठारसमान तथा मोक्षरूपी महलमें प्रवेश करानेवाली बोधिका (रत्नत्रयका) प्राप्त होना तो बहुत ही कठिन है ॥ ८०-८१ ॥ हे मित्र! किसी २ मतमें जो कुछ समीचीन उपदेश है, वह सब जैनमतका ही समझना क्योंकि मोती अनेक जगह (जौंहरी आदिके घर) मिलते हैं परन्तु वे सब समुद्रसे ही निकले हुये हैं ॥ ८२ ॥ जिनेन्द्र भगवानके वचनोंके सिवाय किसीका भी वचन पापोंका नाश करनेवाला नहीं है. क्योंकि सूर्यके ही प्रभावसे दुर्भेद रात्रिसम्बंधी अंधकारका नाश होता है ॥ ८३ ॥ हे मित्र! जिसप्रकार शस्यजातिको (धान्यको) नष्ट करनेवाले सलभ (टीडियें) हैं, उसीप्रकार अन्य जितने धर्म हैं, वे सबके सब आदिभूत पूजनीय जिनेन्द्रधर्मको जडमूलसे नाश करनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ पवनवेगके चित्तमें जो दुर्भेद्य मिथ्यात्वरूपी गांठ थी, सो मनोवेगने पर्वतको वज्रकी समान उपयुक्तवचनसे ढीली करके खोल दी, तब दूर हो गया है मिथ्यात्वरूपी पर्वत जिसका, ऐसा वह पवनवेग पश्चात्तापके साथ कहने लगा कि- “हाय! हाय! मुझ नष्टबुद्धिने अपना जन्म वृथा ही खो दिया ॥ ८५-८६ ॥ हाय मुझ अज्ञानीने तेरे वचनको न सुनकर जिनेन्द्रके वचनरूपी रत्नोंको छोडकर अन्यमतका वचनरूपी पत्थर ग्रहण किया ॥ ८७ ॥ हे मित्र! मिथ्यात्वरूपी विष पीनेवाले मुझने तुझ-

करके दिए हुये अभ्रान्त जिनेन्द्रके वचनरूपी अमृतको नहिं पिया ॥ ८८ ॥ हा मित्र ! तेरे द्वारा निरन्तर निवारण करने पर भी मैंने निर्दोष सम्यक्त्वरूपी सुधापानको छोड कर जन्मजरा मृत्युको देनेवाले महाभ्रमरूप कष्टसे है अंत जिसका ऐसे मिथ्यात्वरूपी विषका सेवन किया ॥ ८९ ॥ हे मित्र ! मेरा तू ही तो बन्धु है और तू ही पिता है. तू ही मेरा कल्याणकारक गुरु है, क्योंकि—तूने मुझे संसार-रूपी अन्धकूपमें पडते हुयेको अपने उत्तम वाक्यरूपी रस्सीसे बांधकर पकडा (रोका) ॥ ९० ॥ यदि तू जिनेन्द्रभग-वानकर भाषित धर्मको दिखाकर मेरा निवारण नहिं करता तो मैं चिरकालतक महादुखदायक वृक्षवाले अपारसंसार-रूपी वनमें भ्रमण करता रहता ॥ ९१ ॥ हे मित्र ! मैं मिथ्यात्वमोहिनी मिश्रमोहिनी सम्यक्त्वमोहिनी मिथ्यात्वसे मोहित होकर कष्टसे है अन्त जिसका ऐसी परवाक्यरूपी रात्रिको प्राप्त हो गया था, सो तूने ही मुझे मोहरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले जिनेन्द्रसूर्यके वाक्यरूपी उज्ज्वल किरणोंसे प्रबोधित किया ॥ ९२ ॥ हाय ! मैं निराकुलरूप सिद्धिपुरीमें प्रवेश करानेवाले जिननायकर-भाषित निर्दोष मार्गको छोडकर बहुत कालसे दुष्टोंकर दिखाये हुये नर्कमें लेजानेवाले महाभयंकर मार्गमें लग गया ! ॥ ९३ ॥ वास्तवमें जीवोंको उत्तम घर स्त्री पुत्र सेवक बन्धु नगर और ग्रामोंकर सहित राज्यसंपदा पैद

पैंडपर प्राप्त हो सकती है, परंतु पण्डितोंकर पूजनीय निर्मल तत्त्वरुचिका मिलना कठिन है ॥ ९४ ॥ हे मित्र ! मूढजन मिथ्यात्वसे दूषित होकर दिखाये हुए समस्त वस्तुस्वरूपको विपरीत देखते हैं. ऐसे मेरे मिथ्यात्वको नष्ट करके तूने ही मुझे अलभ्य निर्मल सम्यक्त्व दिया ॥ ९५ ॥ मैंने अब मिथ्यात्वरूपी विषको त्यागकर मन वचन कायसे जिनशासनको ग्रहण किया, सो हे महामते ! अब तेरे प्रसादसे मैं व्रतरूपी रत्नसे भूषित हो जाऊं, ऐसा उपाय कर ॥ ९६ ॥ दूर हो गया है मिथ्यात्व जिसका ऐसे अपने मित्रकी उपर्युक्त वाणी सुनकर मनोवेग अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ. सो ठीक ही है क्योंकि—अपने उपायसे मनवांछित कार्यकी सिद्धि होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि—जिसको तुरत ही हर्ष न हो ? ॥ ९७ ॥ तत्पश्चात् उस मनोवेगने अन्य कुछ भी न शोचकर उसीवक्त जिनेन्द्रवचनों से वासित अपने मित्रको लेकर शीघ्रगतिसे उज्जयिनी नगरिके प्रति जानेका प्रबंध किया. सो ठीक ही है क्योंकि—ऐसा कौन पुरुष है जो मित्रोंके प्रयोजन साधनेमें प्रमाद करे ॥ ९८ ॥ जिसप्रकार इन्द्र उपेन्द्र नन्दन वनको जाते हैं, उसीप्रकार अन्धकारको नाशकरनेवाले आभूषणोंसे अलंकृत वे दोनों मित्र मनके वेगकी समान चलनेवाले विमान पर चढकर प्रसन्नताके साथ उज्जयिनी नगरीके वनमें जाते-हुये ॥ ९९ ॥ सो उस वनमें पहुंचकर वे दोनों मित्र मन-

रूपी घरमें रहनेवाले अनिवार्य्य लोकव्याप्त मोहरूपी अंध-कारको वाक्यरूपी किरणोंसे नष्ट करनेमें समर्थ, अपरिमाण है ज्ञानकी गति जिसके ऐसे केवलज्ञानीरूपीसूर्यको भक्ति-पूर्वक नमस्कार व स्तुति करके जिनमतिनामा मुनिके चर-णोंके निकट ही बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्य-विरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रंथकी बाला-वबोधिनी भाषाटीकामें अठारहवा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १८ ॥

जब वे दोनों जिनमतिनामा मुनिके पास बैठ गये, तब मुनिमहाराज मनोवेगकी तरफ दृष्टि करके बोले कि-हे भद्र ! क्या यही तुम्हारा मनका प्यारा पवनवेग है ? कि जिसको संसारसमुद्रसे तारनेवाले धर्मग्रहण करानेकी इच्छासे तूने महाविनयके साथ केवली भगवानसे उपाय पूछा था ? ॥ १—२ ॥ यह सुनकर मनोवेगने मस्तकपर दोनों हाथ रखकर (हाथ जोडकर) कहा कि—हे साधो यही है वह पवनवेग. अब यह व्रतग्रहण करनेकी इच्छासे यहांपर आया है ॥ ३ ॥ हे साधो ! मैंने इसको पटने नगरमें ले जाकर अनेक प्रकारके दृष्टान्तोंसे समझाकर मुक्तिरूपी घरमें प्रवेश करानेवाला सम्यक्त्व ग्रहण कर दिया है ॥ ४ ॥ हे साधो ! वमन कर दिया है मिथ्यात्व जिसने ऐसा यह पवनवेग इससमय जिसप्रकार व्रतरूपी आभरणसे भूषित हो जावे, ऐसा उपदेश दीजिये ॥ ५ ॥ यह सुनकर जिनमति-नामा मुनि महाराजने कहा कि— हे भद्र ! परमात्मा और

गुरुकी साक्षीसे सम्यक्त्वपूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर, क्योंकि व्यापारीके समान साक्षी पूर्वक व्रत ग्रहण करनेवाला भ्रष्टताको प्राप्त नहीं होता. इस कारण यह व्रत साक्षीपूर्वक ही ग्रहण करने योग्य है ॥ ६—७ ॥ जिसप्रकार क्षेत्रकी क्यारीमें जलके बिना रोपण किया हुआ धान्य फलीभूत नहीं होता, उसीप्रकार सम्यक्त्वके बिना व्रतग्रहण करना भी सफल नहीं होता ॥ ८ ॥ नीवसहित देवमंदिरकी सदृश सम्यक्त्वसहित जीवोंका ही दुर्धर व्रत निश्चल होता है ॥९॥ जिनेन्द्रभगवानकर भाषित जीव अजीव आस्रव बंध संवर और मोक्ष इन सप्त तत्वोंके श्रद्धान करनेको सत्पुरुषोंने व्रतोंको पोषनेवाला सम्यक्त्व कहा है ॥ १० ॥ इस पवित्र सम्यग्दर्शनको शंका कांक्षादि आठ दोषरहित और संवेग वैराग्य दया और आस्तिक्यादि गुणोंकर सहित धारण करनेवाले पुरुषका ही व्रत (चारित्र) फलवान होता है ११

श्रावकाचारका वर्णन ।

श्रावकाचारमें पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इसप्रकार बारह व्रत ग्रहण करने चाहिये ॥ १२ ॥

१ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य और ५ असंगता (अपरिग्रहत्व) इन पांचों व्रतोंको एक देशधारण करना सो पांच अणुव्रत हैं ॥ १३ ॥ हे वत्स ! व्रतको धारण करना तो सहज है परन्तु उसकी रक्षा करना कष्टसाध्य

है. जैसे बांसका काटना तो सहज है परन्तु घसना बड़ा कठिन है । १४ । जिसप्रकार मनवांछित सुखको देनेवाले धनको घरमें छिपाकर रक्षा करते हैं, उसीप्रकार अपने चित्तरूपी घरमें ग्रहण किये हुए व्रतरूपी रत्नको रखकर यत्नसे सदा रक्षा करना चाहिए ॥ १५ ॥ क्योंकि प्रमादसे नष्ट हो जानेवाला व्रत फिरसे प्राप्त नहीं होता. क्या कोई समुद्रमें डाला हुआ दिव्य रत्न लादेनेको समर्थ है ! कदापि नहीं ॥ १६ ॥

त्रस और स्थावरके भेदसे जीव, दो प्रकारके हैं उन मेंसे व्रतकी इच्छा करनेवाले श्रावकको (गृहस्थको) त्रस जीवोंकी रक्षा करना चाहिए, त्रस जीवोंकी रक्षा करनेको ही अहिंसाणुव्रत कहा है ।। १७ ।। दो इंद्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चतुरिंद्रियवाले और पांच इंद्रियवाले इन ४ प्रकारके त्रस जीवोंको जानकर अपने हितकी वांछा करनेवाले पुरुषोंको चाहिए कि मन वचन कायसे इनकी रक्षा करे ॥ १८ ॥ हिंसा दो प्रकारकी है. एक आरम्भी, दूसरी अनारंभी. सो मुनि तो दोनों ही प्रकारकी हिंसाको छोडते हैं. परंतु गृहस्थ है सो अनारंभी हिंसाको ही छोडता है १९ जो श्रावक मोक्षकी इच्छा रखनेवाले करुणाधारक हैं. उनको चाहिए कि निरर्थक स्थावर जीवोंकी हिंसा भी नहीं करें ॥ २० ॥ बहुतसे दयाहीन देवता, अतिथि, औषधि, पितृयज्ञ व मन्त्रादि साधनेके लिए जीवोंकी हिंसा करते

हैं, सो इनके अर्थ कदापि जीवहिंसा नहीं करना चाहिए ॥ किसी जीवको बांधना मारना नासिकादिका छेदन भेदन करना बहुत भार लादना भूखा प्यासा रखना इत्यादि अतीचारों सहित हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसाणुव्रत स्थिर होता है ॥२२॥ जिह्वास्वादके वशीभूत हो मांसभक्षणके लोभसे भयभीत जीवोंका प्राण हरना कदापि योग्य नहीं ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने मांसकी पुष्टिके लिये परके मांसको खाता है, उस निर्दयी हिंसकका नरकके अनन्त दुखोंसे छुटकारा नहीं होता ॥ २४ ॥ यह तो नियम ही है कि—मांसभक्षीके चित्तमें दया किसी प्रकार भी नहीं हो सक्ती. जब दया ही नहीं है तो उस निर्दय पुरुषमें धर्मांश कहांसे हो ? और धर्मरहित जीव अनेक दुखोंके घर सातवें नरकको जाता है ॥ २५ ॥ जिसका चित्त प्राणिघात करते समय देखने व स्पर्श करनेको दौडता है, वह भी नरकमें जाता है तो फिर हिंसा करनेवाला नरकमें क्यों नहिं जायगा ? ॥ २६ ॥ जो पुरुष मांसकी लोलुपतासे जन्मभर हिंसा करता है, उसका नरकरूपी कूपसे निकलना मैं कदापि नहीं देखता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य मांसभक्षण करनेमें रत होता है, उसको नरकमें नारकी जीव लोहेकी शलाकाओंसे छिन्न भिन्न करके जबरदस्ती पकडकर जाज्वल्यमान वज्राग्निमें डाल देते हैं ॥*
जिसप्रकार मांसभक्षी सिंहका चित्त मृगादिकको देखते ही

---

* नरकके जीवोंका टुकडा २ कर दिया जाय तो भी मरते नहीं, तुरंत

उनके मारनेको चलता है, उसीप्रकार मांसभक्षी मनुष्योंकी बुद्धि भी जीवोंके मारनेमें प्रवर्त्तती है. इस कारण बुद्धिमानों को चाहिये कि मांसभक्षणका त्याग करें ॥ २९ ॥ जो नीच उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंको छोडकर मांस भोजन करते हैं, वे निश्चय करके कदापि महादुःखमय नरकोंसे नहीं निकलेंगे ॥ ३० ॥ बहुत तो क्या ? मांसभक्षी और कुत्तोंमें कुछ भी भेद नहीं है, इस कारण हितैषी पुरुषोंकरके मांसको कालकूटविषकी समान जानकर अवश्य छोड देना चाहिये।

जिस मद्यके द्वारा दावानलसे लताके समान लोकमर्य्यादा नष्ट हो जाती है, ऐसे धर्म अर्थ कामको नष्टकरनेवाले मद्यको (मदिरा व भांग) कदापि नहीं पीना चाहिये॥ जिस कारण मदिरासे उन्मत्त होकर मनुष्य अपनी माता बहन और पुत्रीको भी भोगनेकी इच्छा करने लग जाता है. इसकारण मद्यसे अधिक दुःखदायक पदार्थ जगतमें और कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष मद्य पीता है, वह पागल होकर मार्गमें गिर पडता है, उसके मुखमें कुत्ते पेशाब कर जाते हैं और चोर कपडे चुराकर ले जाते हैं ॥३४॥ जिसप्रकार दावाग्नि वृक्षोंको जला देती है, उसीप्रकार मद्यपान करनेसे मनुष्यके चित्तसे विवेक संयम क्षमा सत्य शौच (पवित्रता) दया

ही वे टुकडे पारेके समान मिल जाते हैं। तथा अग्निसे जलाओ तो उनका शरीर सिवाय ताप सहनेके कभी जलता नहीं।

जितेन्द्रियता आदि समस्त धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ मद्यके समान न तो कोई कष्टदायक है, न कोई अज्ञानदायक है, न कोई निंदनीय और महाविष है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष मद्य पीकर मतवाला (पागल) हो जाता है, वह जिस जिसको देखता है उसी उसीके आगे निर्लज्ज होकर देखता है, रोता है, चक्कर लगाता है, स्तुति करता है, शब्द करता व गाता है, तथा नृत्य करने लग जाता है ॥ ३७ ॥ मद्य जो है सो रोगोंको अपथ्यके समान समस्त दोषोंका मूल है, अतएव इसका सदैवके लिये त्याग ही रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न हुआ, मधुमक्खियोंकी जूठन, म्लेच्छभीलोंकी लारसे मिला हुआ, महापापदायक मधु (सहद) दयालु पुरुषोंको सर्वथा भक्षण करना योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥ अनेक जीवोंसे भरे हुए सात ग्रामोंके जलानेमें जितना पाप होता है, उतना पाप मधुके एक कण-भक्षण करनेमें लगता है ॥ ४० ॥ जो धर्मात्मा पुरुष होते हैं, वे मक्खियोंके द्वारा एक एक पुष्प लाकर वमन किये हुए उच्छिष्ट अपवित्र मधुको कदापि भक्षण नहीं करते ॥ ४१ ॥ मद्य मांस मधुमें प्रत्येकके रसानुसार भिन्न २ जातिके जीव होते हैं, वे उनके रस निर्दयी जीवोंके द्वारा भक्षण किये जाते हैं ॥ ४२ ॥

जो नीच पुरुष प्रत्यक्ष जीवोंके भरे हुए पांच प्रकारके (वडके फल, पीपलके फल, कटहल, गूलर, उमरफल) उदु-

दरफल खाते हैं, उनके चित्तमें दया कहांसे हो सक्ती है ?॥ ४३ ॥ जो सात्विक जिनाज्ञाके पालनेवाले और जीवहिंसाके त्यागी हैं, उनको पांच प्रकारके उदुंबरफल सर्वथा छोड देना चाहिए॥ ४४ ॥ इनके अतिरिक्त जीवोत्पत्तिके कारण कंद मूल फल पुष्प नवनीत और ऐसे अन्नादिक भी दयावान् पुरुषोंको छोड देना चाहिए ॥ ४५ ॥

दूसरे काम क्रोध मद द्वेष लोभ मोहादिके वशीभूत होकर परको पीडाकारी वचन बोलना स्वहितवांछक पुरुषोंको छोड देना चाहिए । ४६ । जिनवचनोंके बोलनेसे धर्मकी हानि हो, लोकसे विरोध हो, विश्वास नष्ट हो जावे, ऐसे वचन क्यों कहना ? । ४७ । जिस वचनसे नीचता उत्पन्न हो, जिस असत्य वचनको म्लेच्छ लोग भी निंदा करें, ऐसा असत्य वचन श्रावक जन कदापि नहीं बोलते ॥ ४८ ॥

तीसरे—खेतमें गांवमें खलिहानमें (खलेमें) गोशालामें पत्तनमें (नगरमें) वनमें और मार्गमें भूले हुए गिरे हुए हराए हुए गडे हुए रक्खे हुए वा स्थापन किए हुए विना दिए हुए [मालिककी आज्ञाके विना] पर द्रव्यको निर्माल्यके समान देखते हुये परतापसे भीत बुद्धिमान् पुरुष कदापि ग्रहण नहीं करते क्योंकि धनादिक हैं, सो जीवोंके समस्त कार्योंको साधनेवाले बाहरके प्राण हैं, सो उनके नष्ट होनेपर मनुष्य प्रायः शीघ्र ही मर जाते हैं ॥ ४९–५० ५१ ॥ जिसने किसीका द्रव्य हरा उसने उसके समस्त

सुखोंके देनेवाले धर्म बन्धु पिता पुत्र कांति कीर्चि बुद्धि स्त्री आदिक सब हरे ॥ ५२ ॥ मरण होनेमें तो एक क्षण भरके लिये एक जीवको ही दुःख होता है, परन्तु द्रव्य नाश होनेपर मनुष्यको सकुटुंब उमरभर दुःख होता है ॥ तथा मच्छ व्याध व्याघ्र आदिक निरन्तर दुख देनेवालोंसे भी चौर अधिक पापिष्ठ होता है ॥ ५४ ॥ जो नर परद्रव्य ग्रहण करता है, उसको इस लोकमें तो राजादिकसे सर्व-स्वहरणादि घोर दण्ड मिलता है और परलोकमें नरकके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

चौथे--नरकरूपी कूपका मार्ग, स्वर्गरूपी घरमें जानेसे अटकानेवाली खाई जो परस्त्री, उसके सेवनका त्यागकर व्रती पुरुषको स्वदारसन्तोषव्रत धारण करना चाहिए ॥ जो स्वर्गमोक्षादिके सुखप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं, उन पुरु-षोंको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त सब स्त्रियोंको माता बहन बेटीके समान देखना चाहिये ॥ ५७ ॥ परस्त्री अत्यन्त स्नेहयुक्त होनेपर भी दुःख देनेवाली है, निर्मल (सुंदर) होनेपर भी पापरूपी मैलकी करनेवाली है, रसकी आधार होनेपर भी तृष्णाको बढानेवाली है, जडतासहित होनेपर भी आ-तापकी बढानेवाली है, अपना सर्वस्व देनेपर भी द्रव्य हरने-वाली है, इसप्रकार विरुद्धाचारसे मर्चनेवाली जो परस्त्री सो दूरसे ही त्यागने योग्य है ॥ ५८--५९ ॥ यद्यपि स्वस्त्री और परस्त्रीके सेवनमें कुछ भी विशेष नहीं है, परन्तु

परस्त्री सेवन करनेवाला तो नरक जाता है और स्वदार-सन्तोषी स्वर्गको जाता है, कारण यही है कि स्वस्त्रीकी अपेक्षा परस्त्री सेवनमें अनुराग अधिक होता है. और परद्रव्य में राग करना ही दुःखका मुख्य कारण है ॥ ६० ॥ जो स्त्री अपने पतिको छोडकर निर्लज्ज हो परपुरुषके साथ रमण करती है, उस परस्त्रीपर किसप्रकार विश्वास किया जाय ? ॥ ६१ ॥ परस्त्रीको रमणीय देखनेसे सुख न होकर आकुलता और नरकमें ले जानेवाले घोर पाप होनेके सिवाय कुछ भी प्राप्ति नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके संगमात्रसे उभय लोकसम्बन्धी हानि हो, ऐसी परस्त्रीको स्वदारसन्तोषता छोडकर किस कारण सेवन करते हैं ? ॥ ६३ ॥ जो पुरुष कामरूप अग्निसे संतप्त परस्त्रीको सेवन करता है, वह नरकमें साक्षात वज्राग्निसे संतप्त (लाल) की हुई लोहमयी स्त्रीसे (पुतलीसे) चिपटाया जाता है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार परस्त्रीको क्रोधित यमराजकी दृष्टिके समान प्राणसंहारिणी जानकर विद्वानोंको सदैव छोड देना चाहिये ॥ ६५ ॥

पांचवें—जिसप्रकार दुःसह तापको देनेवाली अग्नि जलसे शमन की जाती है, उसीप्रकार बढा हुआ अपना लोभ[1] सन्तोषकरके शमन करना चाहिये ॥ ६६ ॥ जो संतोषव्रत-

---

१ लोभ, असंतोष, तृष्णा, परिग्रह, संग मूर्च्छा ये सब शब्द एक ही अर्थवाले हैं ।

धारी हैं, उनको चाहिये कि-धन धान्य गृह क्षेत्र द्विपद चतुष्पद आदिका परिमाण कर लेवें ॥ ६७॥ जिसप्रकार काष्ठके डालनेसे अग्नि बढती है, उसी प्रकार कषायोंके छोडनेसे धर्म और स्त्रीके संगसे काम और लोभसे लोभ बढता है ॥ ६८ ॥ नहीं जीता हुवा लोभ मनुष्यको भयानक नरकमें ले जाता है, सो ठीक ही है, जो बलवान वैरी होते हैं, वे क्या २ कष्ट नहीं देते ? ॥ ६९ ॥ उपार्जन की हुई धन संपदाओंके भोगनेवाले तो बहुत हैं, परन्तु जब यह जीव उस आरंभसे उपार्जन किये हुये पापका फल नरकमें सहता है तो उस वक्त वे धन सम्पदाओंके भोगनेवाले पुत्र कलत्रादि कोई भी सहायक नहीं होते ॥ ७० ॥ जिस मनुष्यके निश्चल सन्तोष है, उसके देव तो किंकर हैं, कल्पवृक्ष उसके हाथमें ही हैं, निधियें अपने घरमें आई हुई हैं, ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि इन सब सुखदायक संपदाओंके होनेपर भी जिनके चित्तमें संतोष नहीं है, वह सदा दरिद्र और दुःखी ही है ॥ ७१—७२ ॥

२-इन पांच अणुव्रतोंके सिवाय दिशा, देश और अनर्थदण्डसे विरक्त होना सो तीन प्रकारके गुणव्रत हैं, श्रावकोंको ये तीनों गुणव्रत मन वचन कायसे धारण करना चाहिये ॥७३ ॥

प्रथम तो दशों दिशाओंमें विधिपूर्वक जाने आनेका परिमाण करके उससे आगे नहीं जाना सो पहिला दिग्व्रत·

नामा गुणव्रत है ॥ ७४ ॥ इस गुणव्रतके धारण करनेसे मर्यादाके बाहर त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग हो जानेसे उस श्रावकके घरमें रहते भी मर्य्यादासे बाहर महाव्रत होता है ॥ ७५ ॥ जिसने यह दिग्व्रत धारण किया, उसने तीन लोकको उल्लंघन करने वाली लोभरूपी अग्निका स्तंभन किया अर्थात् अपना लोभ घटाया ॥ ७६ ॥

दूसरे-दिग्व्रतमें जो दशों दिशाओंका परिमाण किया, उन दशों दिशाओंमें कोई भी प्राणी एक दिनमें नहीं जा सकता इस कारण प्रतिदिन, सात दिन, १५ दिन अथवा महीने भर इत्यादि कालकी मर्य्यादासे क्षेत्रका परिमाण कर लेना सो दूसरा देशव्रत है. इसका फल उपर्युक्त गुणव्रतके समान त्याज्यक्षेत्रमें महाव्रत पालनेकासा और भी अधिक होता है, सो ठीक ही है विशेष कारणसे विशेष कार्य क्यों न हो !

तीसरे-व्यर्थ हिंसादिके त्यागनेकी इच्छा रखनेवालों को धर्मकार्योंमें अनुपकारी और पापकार्योंमें सहायक ऐसे पांच प्रकारके[१] अनर्थोंको त्यागना चाहिये । ७९ । दयावान श्रावकोंको चाहिये कि हिंसाके कारण मयूर कुत्ता बिल्ली मैना तोता कुक्कुटादिको पकड़कर पालन पोषण न करें

---

(१) पापोपदेश १ हिंसोपकरणदान २ अपध्यान ३ दुःश्रुत ४ प्रमादचर्या ५ ये पांच अनर्थदण्ड हैं ।

तथा फांसी डंडा विष शस्त्र हल बन्धन रज्जु अग्नि पात्री लोहा नील इत्यादि हिंसाके कारण मांगे हुये न दें। ८१। इसके अतिरिक्त जिनमें जीवोत्पत्तिकी पूर्ण संभावना हो, ऐसे संधान (आचार मुरब्बा) फूलने आई हुई चीज बीधे हुये (सडे हुये) पदार्थका भक्षण भी कदापि न करें ८२

३–सामायिक उपवास भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये चार प्रकारके शिक्षाव्रत (मुनिव्रतकी शिक्षा देनेवाले) हैं। ८३।

प्रथम–जीवन मरण सुख दुःख योग वियोगादिकमें समान भाव रखकर निरालस्य हो नित्य सामायिक (संध्यावन्दन) करना चाहिये। ८४। सामायिकके समय परवस्तु तथा अन्यान्य समस्त कार्योंसे विरक्त होकर समभावपूर्वक दो आसन (कायोत्सर्ग वा पद्मासन) द्वादश (एक एक दिशामें तीन तीन) आवर्त और चारो दिशाओंमें चार प्रणति करके त्रिकाल वन्दना (सामायिक वा संध्यावंदन) करैं ॥ ८५ ॥

दूसरे–पर्वचतुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) समस्त प्रकारके आरंभ और भोगोपभोगादिका त्यागकरके उपवास करना चाहिये। ८६। जिस उपवासमें पांचों इन्द्रियें अपने अपने विषयसे निवृत्त होकर आत्मामें ही स्थिर होंय. किसी विषयमें भी चलायमान न होंय इसप्रकार जीतेन्द्रियताके साथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्त दिन

रात ध्यान स्वाध्यायमें ही बिताया जाय, उसीको भगवानने उपवास करना कहा है ॥ ८७–८८ ॥

तीसरे–भोग (जो एकवार भोगनेमें आवे) उपभोग (जो बारंवार भोगनेमें आवे) का परिमाण [गिनती] करके शेषको छोड देना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है, जिसमें पुष्पमाला गन्धलेपन पकान्न तांबूल भूषण स्त्री वस्त्र सवारी आदिका नित्यप्रति परिमाण करके व्रतकी इच्छा रखनेवाले सज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ८९–९०

चौथे—घर पर आये हुये आरंभत्यागी जितेन्द्रिय उत्तम श्रावक [क्षुल्लक ऐलक] श्राविका मुनि अर्जिकादि अतिथिके लिये भक्तिपूर्वक अन्नपान औषधादिकका विभाग करना अर्थात् दान करके सेवन करना सो अतिथिसंविभाग है, सो श्रावकमात्रको करना चाहिये । ९१ । जो भक्त पुरुष हैं, उनको चाहिये कि कठिनसे है अन्त जिसका, ऐसे संसारका [भ्रमणका] नाश करनेके अर्थ विनयपूर्वक चार प्रकारका प्रासुक आहार मुनि अर्जिका और श्रावक श्राविकाके लिये नित्यप्रति प्रदान किया करैं । ९२ । मुनिको दान देते समय श्रावकको श्रद्धादिक दातारके सातगुणसहित नवधाभक्तिपूर्वक प्रीतिके साथ प्रवर्तना चाहिये क्योंकि विना भक्तिके दिया हुआ दान फलदायक नहीं होता है ॥ ९३ ॥

इन १२ व्रतोंके पालनेवाले बुद्धिमान सत्पुरुषोंको

चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य्य मरणकाल आ जावे तो अपने कुटुंबियोंको पूछकर सल्लेखना [सन्यासपूर्वक मरना] धारण करै ॥ ९४ ॥ प्राणांतके समय गुरुजनोंके सन्मुख ज्ञानसहित दर्शन और चारित्रके शुद्ध करनेवाले दोषोंकी आलोचना करके चार प्रकारके आहार और शरीर से रागभाव छोड दे । ९५ । जो सुधी पुरुष कषाय निदान और मिथ्यात्व रहित होकर सन्यासविधिको धारणपूर्वक मरण करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोगकर २१ भवके भीतर २ मोक्षपदको प्राप्त होते हैं । ९६ ।

इसप्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनेन्द्र भगवानने कहे हैं सो जो कोई संसारसागरमें पडनेके भयसे डरनेवाला इनको धारण करता है, वह सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त होता है ।

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रियवृत्ति श्रावक है, सो भ्रू नेत्र हुंकार करांगुलि आदिकसे इशारा करनेका और लोलुपताका त्याग करके व्रतोंको बढानेवाला मौनधारणपूर्वक भोजन करता है तथा ॥ ९८ ॥ जो सुरनरकर चरणपूजित हैं ऐसे निर्दोष पंचपरमेष्ठीकी नैवेद्य गन्ध अक्षत दीप धूप पुष्पादिकसे नित्यपूजा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

इस पूजनीय श्रावकव्रतको जो अतिचाररहित पालन करते हैं वे पुरुष मनुष्य और देवोंकी सम्पदा पाकर निष्पाप हो निर्वाण पदको प्राप्त होते हैं ॥ १०० ॥ व्रतकी प्रशंसा करनेवाली समस्त पापोंको चुरानेवाली जिनमति यतिकी वाणी

सुनकर तथा देवमनुष्योंकर पूजित केवलिभगवानके चरण-कमलोंको नमस्कार करके वह निर्मल आशयवाला पवनवेग अपनेको श्रावकके व्रतरूपी रत्नोंसे भूषित करता हुआ, सो ठीक ही है, अपरिचित ज्ञानकी गतिवाले साधुवोंकी सदुपदेशरूप वाणीको प्राप्त होकर भव्य पुरुष वृथा कैसे कर सकते हैं? अर्थात् ऐसे साधु पुरुषोंकी आज्ञा अवश्यमेव धारण करते हैं ॥ १०१ ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्यविरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें उन्नीसवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १९ ॥

अनन्तर फिर भी मुनि महाराजने विद्याधरपुत्रको कहा कि हे भद्र! उपर्युक्त द्वादशव्रतोंके अतिरिक्त और भी कई प्रकारके नियम श्रावकोंको भक्तिपूर्वक पालना चाहिये, सो कहता हूं। १।

जिस रात्रिमें क्षुद्रकीटादिका संचार है, मुनि लोग चलते फिरते नहीं, भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुका भेद मालूम नहीं होता, आहारपर आये हुये सूक्ष्मजीव दीखते नहीं, ऐसी रात्रिमें दयालु श्रावकोंको कदापि भोजन करना उचित नहीं २—३ ॥ जो जिह्वाके वशीभूत होकर रात्रिमें भोजन करता है, उस नीचके अहिंसाणुव्रत कहां? ॥४॥ जो पुरुष रात्रिको भोजन करता है, वह समस्त प्रकारकी धर्मक्रियासे

हीन है. उसमें और पशुमें सिवाय शृंगके [सींगके] कोई भी भेद नहीं है। ५। शूकर सांवर कंक मार्जार तीतर बक कुत्ता सारस बाज कौआ मेंडक सर्प बौना दाद खुजली-वाला मूका अधिक केशवाला कर्कश शठ दरिद्र दुर्जन कोढी इत्यादि जो होते हैं, सो रात्रि भोजनके पापसे ही होते हैं ६-७॥ जो रात्रिभोजनके त्यागी हैं, वे पण्डित प्रिय-वादी नीरोग सज्जन मंदरागी त्यागी भोगी यशस्वी समुद्र पर्यन्त पृथिवीके पति आदरणीय भाग्यवान वक्ता कामदेवके समान सुन्दर और पूजित होते हैं॥ ८-९ ॥ रात्रिभोजनके प्रभावसे सर्वत्र दुःखकी ही प्राप्ति होती है और दिवसके भोजनसे सुखकी प्राप्ति होती है, इस कारण दिनमें भोजन करना ही हितकारी है।१०।जो मनुष्य दिनके अन्तकी दो घडीसे पहिले ही भोजन कर लेता है उसीको महाभाग और अनस्तमितभोजी [रात्रिभोजनका त्यागी] कहा है। ११।जो पुरुष सवेरे और सामकी दो घडीके समयको छोडकर भोजन करते हैं, उनके महीनेमें दो उपवास सहज में ही हो जाते हैं॥ १२ ॥

दूसरे-जो सुधी शुक्ल पंचमीके दिन उपवास करता है, वह मनुष्य, मनुष्यभव और स्वर्गके सुखको प्राप्त होकर मोक्षमें जाता है । १३ । यह उपवास आषाढ कार्तिक और फा-ल्गुन इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेमें गुरुकी सा-क्षीपूर्वक विधिके साथ ग्रहण करके पांच वर्ष और पांच

महीने पर्यंत विधि और भक्तिसहित करना चाहिये । १४-१५ । उपवासके करनेसे जिसप्रकार शरीर क्षीण होता है, उसीप्रकार जीवके अनेक भवके संचय किये हुए पाप निःसंदेह क्षीण हो जाते हैं । १६ । तथा जिसप्रकार सूर्य तडागोंके जलोंको शोषण करता है, उसीप्रकार यह पंचमीका उपवास भी जीवोंके पूर्वकालके संचित किये हुए पापोंको शोषण (नष्ट) करता है । १७ । उपवास किये विना इंद्रियें और कामदेव जीते नहीं जा सकते, क्योंकि वनके बडे २ हस्तियोंको सिंह ही मार सकता है । १८ ।

तीसरे-जिस दिन रोहिणी और चन्द्रमा योग हो, उस दिन भी उपवास करना चाहिये, सो वह भी पांच वर्ष और पांच महीनेतक भक्तिपूर्वक करे तो अधिक क्या कहैं तीसरे ही भवमें मोक्ष होती है ॥ १९---२० ॥ ज्ञानी पुरुष वहुधा प्रधान फलका वर्णन करते हैं, उसके आनुषंगिक छोटे २ फलोंको नहीं कहते-जैसे खेती करनेमें धान्य होनेका फल कहते हैं, पिराल वगेरह भी अनेक फल होते हैं, उनको मुख्य नहीं करते, भावार्थ-उपर्युक्त व्रतका मुख्य फल तो तीसरे भव मोक्ष जाना है, इसके सिवाय स्वर्ग मनुष्य भवके अनेक प्रकारके सुख सौभाग्यादिकी भी प्राप्ति होती है । २१ । इन दोनों उपवासोंको विधिपूर्वक पूरा करनेपर फलकी वांछा करनेवालोंको उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये । २२ । यदि किसीकी विधिपूर्वक उद्यापन करनेकी सामर्थ्य न हो

तो द्विगुण विधि करना चाहिये अर्थात् १० वर्ष और दश महीनेतक उपवास करना चाहिये, क्योंकि इसप्रकार यदि नहिं किया जाय तो व्रतविधि-पूरी कैसे हो? । २३ ।

चौथे—संसारको (भवभ्रमणको) नष्ट करनेवाले अभय आहार औषध और शास्त्र इसप्रकार ये चारों दान भी नित्य प्रति देना चाहिये । २४ ।

जीवोंको सबसे अधिक प्रिय प्राण हैं, इस कारण जीवोंकी रक्षा करना अर्थात् समस्त दानोंमें अभयदान करना ही श्रेष्ठ है. क्योंकि प्राणीमात्र जो कुछ धंदा रोजगारादि आरंभ करते हैं, सो एकमात्र अपने जीवनकी रक्षाके लिये ही करते हैं, इस कारण जीवरक्षासे अधिक श्रेष्ठ कोई भी दान नहीं हो सकता ॥ २५–२६ ॥ पुरुषोंके धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका आधार जीवन है, सो जिसने जीवनदान दिया, उसने क्या तो नहीं दिया अर्थात् सब कुछ दिया और जिसने प्राण हर लिये उसने बाकी क्या छोडा? सब कुछ हर लिया ॥ २७ ॥ जगतमें अनेक प्रकारके भय हैं, परन्तु मृत्यु भयके बराबर कोई भी अन्य भय नहीं है, इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि जिस प्रकार बने सदा ही जीवरक्षा करते रहैं ॥ २८ ॥

धर्मध्यान साधनके लिये मूल कारण शरीर है और शरीरकी रक्षा अन्नके विना नहिं होती, इस कारण धर्मात्मा पुरुषोंको आहार दान भी सदा देना चाहिये ॥ २९ ॥ जब

दुर्भिक्ष पड़ता है तो अनेक जन क्षुधाशांति करनेके लिये अपने अतिशय प्यारे बालबच्चोंतकको बेच देते हैं, इसकारण आहार जो है सो पुत्रादिकोंसे भी अधिक प्यारा है ॥ ३० ॥ संसारी जीवोंको इस सर्वनाशी क्षुधारूपी दुःखसे बड़ा और कोई भी दुःख नहीं है, इस कारण जिसने आहार दान दिया उसने क्या नो नहीं दिया ? और आहारको नष्ट करनेवालेने क्या नहीं हरण किया ॥ ३१ ॥ अन्नदान जो है सो मनुष्यको कांति कीर्ति बल वीर्य यश धन सिद्धि बुद्धि शम संयम धर्मादिक देता है, इसीकारण जगतमें दानी पुरुष ही सुखी और सुख देनेवाले होते हैं ॥ ३२ ॥ जो शरीररक्षा करनेकी शक्ति अन्नभक्षण करनेमें है, वह शक्ति सुवर्ण मणि रत्नोंमें कदापि नहीं है, इस कारण परोपकारी मुनियोंके अर्थ रत्नादिकको छोड आहार दान ही किया करते हैं ॥ ३३ ॥

जब मुनिगण व्याधिसे पीडित हो जाते हैं, तो वे तपस्वी तप करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, इसकारण दानीगण तपस्वियोंकी विघ्नकारक व्याधि दूर करनेके लिये विधिपूर्वक भोजनादिके साथ औषधिका भी दान किया करते हैं ॥ ३४ ॥ जो श्रावक रोगी योगियोंको भक्तिपूर्वक औषध दान देता है, वह अग्निसे जले हुए पुरुषके समान वातपित्तकफजनित रोगोंसे कदापि पीडित नहीं होता ॥ ३५ ॥

जो शास्त्र, द्वेष राग मद मत्सर मूर्छा क्रोध लोभ भय

आदिकको नष्ट करनेमें समर्थ है, मोक्षरूपी घरका मार्ग बतानेवाला है सो अव्यय (अक्षय) सुखकी प्राप्तिके अर्थ मुनियोंको अवश्य ही देना चाहिये ॥ ३६ ॥ शास्त्रके स्वाध्याय करनेसे विवेक होता है, विवेकसे अशुभ कर्मोंकी हानि होती है। कर्मोंकी हानिसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है, इसकारण अनर्थोंका नष्ट करनेवाला शास्त्र भी मुनिके लिये अवश्य देना चाहिये ॥ ३७ ॥ जिस दानमें जीवोंको पीड़ा न हो, जिसके प्रभावसे यति विषयरूपी वैरीके वश न हो, और पापोंको नाश करनेवाले तपकी वृद्धि हो, वही दान सुखका देनेवाला श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३८ ॥

इसके सिवाय रत्नत्रय धर्मका बढ़ानेवाला अन्यान्य भी निर्दोष दान, शील संयम तथा जितेन्द्रियताके धर परिग्रहरहित उत्तम पात्रको देना योग्य है ॥ ३९ ॥ गृह कलत्र आदिसे दूषित पात्र, गृह कलत्रादिमें रहनेवाले दानीको वांछित निवृत्तिको (सुखको) कदापि नहीं दे सकता, सो नीति ही है कि समुद्रमें पत्थर, पत्थरको नहीं तारता ॥४०॥

पांचवें—चतुर पुरुषको चाहिये कि मुखसे मीठी मीठी बातें बनानेवाली, चित्तमें दुष्टता रखनेवाली, सर्वथा नीच, सैकड़ों व्यभिचारियों द्वारा मर्दन की हुई, अशुभ लेश्यायुक्त वेश्याको कदापि न सेवें ॥ ४१ ॥ जो वेश्या, मनसे तो एकको चाहती है, वचनसे दूसरेको प्यार बताती है, तनसे तीसरेको ही सेवन करती है, ऐसे नये नये पुरुषोंको चाह-

नेवाली वेश्या किस प्रकार सुखदायक हो सकती है ?
॥४२॥ नष्ट भया है शम संयम योग जिसका, ऐसा पुरुष
रतिमें मोहित चित्त होकर मद्य मांस भक्षण करनेवाली
वेश्याका मुख चुम्बन करता है, उसके व्रतरूपी रत्न किस-
प्रकार रह सकता है ? ॥ ४३ ॥ जो नीचाचारी मूढ सर्व-
काल वेश्याके वशीभूत हो पुत्र मित्र बांधव और आचार्योंके
(सदुपदेशकोंके) समूहका कहा नहीं मानता, उसको शांत
पुरुषोंद्वारा आराधने योग्य धर्मकी प्राप्ति कहां ? ॥ ४४ ॥

छट्टे—यद्यपि निजस्त्री सुखकारी है परन्तु अतिशय
आसक्तिसे सेवन की हुई वह भी महा दुःखका कारण है,
जिसप्रकार कि—शीतविशिष्ट मनुष्यको अग्नि प्यारी है तथापि
अतिशय सेवन की हुई क्या शरीरको व खूनको जलानेवाली
नहीं है ? अवश्य है. इस कारण जो जितेन्द्रिय महापुरुष
अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वोंमें मदैन मैथुन कर्मका त्यागी है,
वह पुरुष नष्ट कर दिया है तीव्र कामके बाणोंका गर्व जिसने
ऐसा स्वर्गका इन्द्र होता है ॥ ४५–४६ ॥

सातवें—जो जूवा पूर्वोपार्जित पुराने धनको क्षणभरमें
नष्टकरके घरमें अनिवार्य महान् दारिद्र्यको भरता है, ऐसा
जूवा खेलना भी बुद्धिमानोंको अवश्य छोड देना चाहिये
॥४७॥ जुवारीको भाई वन्धु छोड देते हैं, पंडितजन निंदा
करते हैं। सज्जन पुरुष उसकी दुर्दशापर अपशोस करते हैं,
और अन्यान्य जुवारी उसको बांधते हैं, लातें मारते हैं, पीडा

देते हैं और नाना प्रकारकी ताडना करते हैं ॥ ४८ ॥ यह द्यूतकर्म धर्म अर्थ कामको नष्ट करनेमें जो चतुर है, समस्त प्रकारके दुःखोंको बढानेके लिये तत्पर और शील-संयमियोंके द्वारा निन्दनीय है. इस कारण द्यूतसे अधिक अनिष्टकारक और कोई भी नहीं है ॥ ४९ ॥ जो मूढ निर्लज्ज होकर अपनी माताके वस्त्रको भी चुरा लेता है, वह नीच अन्य समस्त जनोंको कष्टदायक कार्य क्या नहीं करेगा ॥ ५० ॥ इस लोकमें मद्य पीना १ मांस भक्षण २ परद्रव्य-हरण ३ द्यूत खेलना ४ शिकार करना ५ परस्त्रीसेवन ६ वेश्यासंग ७ ये सातों ही नीचपुरुषोंके आचार हैं, सो श्रेष्ठ पुरुषोंको त्यागना चाहिये ॥ ५१ ॥

आठवें–जो मनुष्य श्रावकके ११ स्थानोंमें (दर्जोंमें) रहता है, प्रवर्तता है, वही उत्कृष्ट श्रावक होता है, और वही संसार परिभ्रमणको नष्ट करनेमें समर्थ ऐसे चौदहवें गुणस्थानवर्ती योगी होनेको समर्थ है ॥ ५२ ॥

१–जिसके हृदयमें हारयष्टिके सदृश तापको हरनेवाली चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल निर्मलदृष्टि [सम्यक्त्व] होती है, वही दर्शन प्रतिमाका धारक निर्दोष द्युतिवाला दर्शनी नामक श्रावक होता है ॥ ५३ ॥

२–जो महात्मा दुर्लभ धनको घरमें रखनेके समान अपने हृदयरूपी घरमें अतिचाररहित द्वादश व्रतरत्नोंको धारण कर रखता है, वही सुधी सज्जन पुरुषोंके द्वारा दूसरी व्रतप्रतिमाका धारक व्रती कहा गया है ॥ ५४ ॥

३–जो श्रावक इन्द्रियरूपी घोड़ोंको दमन करके प्रिय अप्रिय और मित्र शत्रुमें समताभाव रखता हुआ त्रिकाल सामायिक करता है, उसको प्रवीण पुरुषोंने तीसरी सामयिक प्रतिमाका धारक सामायिक श्रावक कहा है ॥५५॥

४–जो नर भोगोपभोग पदार्थोंसे चित्त हटाकर आरंभ रहित चारों पर्वोंमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) हमेशह उपवास किया करता है, वही चौथी प्रोषधप्रतिमाका धारक विद्वानोंका प्यारा प्रोषधी श्रावक है ॥ ५६ ॥

५–जो श्रावक समस्त जीवोंकी करुणा करनेमें तत्पर होकर समस्त प्रकारके सचित्त पदार्थोंको छोड प्रासुक अन्न जलादिक भोजन पान करता है उसको यतियोंके नाथ गणधर भगवानने पांचवीं सचित्त त्यागप्रतिमाका धारक सचित्तविरति श्रावक कहा है ॥ ५७ ॥

६–जो मंदरागी धर्मात्मा दिवसमें स्त्रीसेवनका त्याग करता है, उसको महापुरुषोंने धन्यवाद पाने योग्य छट्ठी दिनमैथुनत्याग प्रतिमाका धारक दिनमैथुनत्यागी श्रावक कहा है ॥ ५८ ॥

७–जो श्रावक कामदेवरूपी महा दुश्मनके गर्वको मर्दन करके देव मनुष्योंको जीतनेवाले स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंसे नहिं जीता जाता, अर्थात स्त्रीका भी त्यागी हो उसको सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाका धारक ब्रह्मचारी श्रावक कहा है ॥ ५९ ॥

८—जो धर्मात्मा श्रावक सर्वप्रकारकी जीवहिंसाके कारणोंको जानकर राग द्वेषादिको मन्द करके सब प्रकारके आरंभोंको छोड देता है, उसको यथार्थ ज्ञानके धारक पुरुषोंने आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमाका धारक अनारंभी श्रावक कहा है ॥ ६० ॥

९—जो श्रावक उत्कृष्ट कषायरूपी शत्रुओंको मर्दनकर के जीवहिंसाके कारणरूप परिग्रहको जानकर तृणके समान त्याग कर देता, उसको गणधरोंने नवमी परिग्रहत्याग प्रतिमाका धारक अपरिग्रही श्रावक कहा है ॥ ६१ ॥

१०—जो गृहकार्योंमें विविध प्रकारके जीवोंको अग्निके समान तापकारक सम्मति देनेका त्याग कर देता है, उसको ज्ञानी पुरुष दशमी अनुमतित्याग प्रतिमाका धारक अनुमतित्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६२ ॥

११—जो जितेन्द्रिय श्रावक अपने अर्थ किये हुए भोजनका मन वचन कायसे त्यागकरके मुनियोंके समान अनुद्दिष्ट प्राशुक भोजन करता है, उसको ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमाका धारक उद्दिष्टत्यागी श्रावक कहते हैं ॥ ६३ ॥

इसप्रकार क्रमसे प्रमादरहित एकादश पदोंको धारण कर श्रावकाचारको पालन करता है, वह देव मनुष्यकी सुख सम्पदासे तृप्तचित्त हो समस्त कर्मोंको नष्ट करके सिद्ध पदको (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त समस्त व्रतोंमें, तारोंमें चन्द्रमाके समान, समस्त

प्रकारके तापोंको नष्ट करनेमें समर्थ, समस्त तत्त्वोंका प्रकाशक देदीप्यमान एकमात्र सम्यक्त्व ही मुख्य (प्रधान) है ॥ ६५ ॥ संसाररूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठार सबको इष्टरूप यह सम्यक्त्व निसर्गज और अधिगमज भेदसे दो प्रकारका कहा गया है, तत्त्वोपदेशके बिना ही उत्पन्न होने वाला सम्यक्त्व निसर्गज कहलाता है और जिनागमका अभ्यास करनेसे अर्थात् परोपदेशसे उत्पन्न होनेवाला सम्यक्त्व अधिगमज कहा गया है ॥ ६६ ॥ इसके सिवाय ज्ञान चारित्रकी शुद्धि करनेवाला, भवभ्रमणका ध्वंस करनेवाला, व मनवांछित सुखका देनेवाला यह सम्यक्त्व क्षायिक शामिक (औपशमिक) और वेदक (क्षायोपशमिक) भेदसे तीन प्रकारका है ॥ ६७ ॥ इस सम्यक्त्वरूपी रत्नको हरनेवाले अथवा इस धर्मरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठारके समान प्रथमके चार तो कषाय (अनन्तानुबंधिक्रोध अनन्तानुबंधिमान अनन्तानुबंधिमाया और अनन्तानुबंधिलोभ) और मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिश्र ये तीन दर्शनमोहिनीकी प्रकृतियें, इसप्रकार ये सात प्रकृतियें हैं ॥ ६८ ॥

सो जिस समय जीवोंके इन सातों प्रतिबंधक प्रकृतियों के नष्ट होनेसे मेघपटलोंके अभावसे समस्त अंधकारको नष्ट करनेवाले सूर्यबिम्बकी समान जो सम्यक्त्व प्रगट होता है. वह तो सबसे श्रेष्ठ और शुद्ध क्षायिकसम्यक्त्व है. और यह सम्यक्त्व उत्पन्न हुये पीछे कभी नष्ट नहिं होता तथा जो

सातों प्रकृतियोंके शमन होनेसे उत्पन्न होता है, उसको शामिकसम्यक्त्व कहते हैं. और यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त ही रह सक्ता है और इन सातों प्रकृतियोंके कुछ क्षय और कुछ शमन होनेसे उत्पन्न होता है उसको वेदकसम्यक्त्व तथा मिश्र वा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं ॥ ६९–७० ॥
जो सम्यग्दृष्टि जिनमतके तत्त्वोंमें शंका नहिं करै (१) सांसारिक सुखोंकी वांछा नहिं करै (२) धर्मात्मा रोगी दरिद्री आदिक जैनोंसे ग्लानि नहि करै (३) कुदेव कुगुरु और कुधर्ममें विशुद्धचित्त हो मोहको (अज्ञानभावको) प्राप्त न होय [४] संयमी मुनि श्रावकोंके दोषोंको छिपावे (५) और अपने तथा परके पवित्र चित्तमें स्थिरता करै (६) धर्मात्माओंसे छलरहित वात्सल्य रक्खै (७) अहिंसा धर्मकी महिमा [प्रभावना] बढावे (८) संवेग [संसारसे भयभीत] होकर [९] वैराग्यरूप [१०] मन्दकषाय रहै [११] अपनी निंदा करै [१२] अपनेको प्राप्त हुये दोषोंकी निंदा करै [१३] पंचपरमेष्ठीमें नित्यप्रति भक्ति करै [१४] और दयारूपा स्त्रीसे ही आलिंगन करनेमें अपनी इच्छा रक्खै [१५] समस्त जीवोंमें मैत्रीभाव रक्खै [१६] चारित्रधारियोंको [गुणाधिक्य पुरुषोंको] देखकर प्रमोदित हो [१७] विपरीत चेष्टावालोंसे मध्यस्थ रहै [१८] और सांसारिक कदाचारोंसे विरक्त रहै [१९] वही धीर पुरुष व्रतरूपी धान्यके बीजभूत, दीनोंको दुर्लभ, मनवांछित

सुखोंके देनेवाले, विद्वानोंकर पूजनीय, सम्यक्त्वरूपी रत्नको विशुद्ध (निर्मल) करता है. और उसी पुरुषका जन्म प्रशंसा करनेयोग्य है ॥ ७१-७५ ॥

इस जगतमें सम्यक्त्वकी समान कोई भी हितकारी, आत्मीय, परमपवित्र और उत्तम चारित्र नहीं है ॥ ७६ ॥ जिसपुरुषके सम्यक्त्व है, वही पंडित, श्रेष्ठ, कुलीन और दीनतारहित है ॥ ७७ ॥ जो सम्यक्त्वधारी उदार पुरुष हैं, वे महाकान्ति ज्ञान कीर्ति और तेजके धारक कल्पवासी देवोंके सिवाय हीन विभूतिवाले अन्य देवोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते ॥ तथा जो सम्यग्दृष्टि भव्य है, सो पहिले नरकसे आगे किसी अन्य नरकमें नहीं जाता तथा स्त्रीपणे और नपुंसकपणेको भी प्राप्त नहीं होता और पूजनीय पुरुषोंमें पूज्य होता है ॥ ७९ ॥ जो भव्य कमसे कम एक मुहूर्त भी सम्यक्त्व रत्नको धारण कर लेता है, वह अनन्त अपार संसारको शीघ्र ही तर जाता है ॥ ८० ॥ इसप्रकार त्रिभुवनके बंधु जिनपतिनामा मुनिकी निर्दोष तत्त्वोंको प्रकाश करनेवाली विद्वानोंकर पूजनीय पवित्र वाणीको वह खेचरपुत्र पवनवेग अपने चित्तमें धारण करके महाहर्षको प्राप्त हुवा ॥ ८१ ॥ जिसप्रकार निपुत्री पुत्रकी प्राप्तिसे, स्त्रीवियोगी स्वस्त्रीको प्राप्त होनेसे, अन्धा नेत्रोंके प्राप्त होनेसे, रोगी नीरोगताको और निर्धन खजानेको पाकर हर्षित होता है, उसीप्रकार पवनवेग भी व्रत धारणकर अतिशय प्रमोदको प्राप्त हुवा ॥

८२ ॥ तत्पश्चात् वह पवनवेग मुनि महाराजको नमस्कार-पूर्वक कहने लगा कि हे मुने ! आज मेरे समान कोई भी धन्य नहीं है, जो नरकरूपी कूपमें पडता हुवा आपके वचनरूपी आलम्बनको प्राप्त हुवा ॥ ८३ ॥ जो नर आपके वचनोंको सुनता है, वह भी मनवांछित फलको प्राप्त होता है तो जो एकचित्त हो आपके वचनोंके अनुसार चलता है उसका फल कैसा उत्तम होगा सो कहनेमें कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य आपके वचनोंको सुनकर कुछ भी नहीं करते, वे निश्चय करके मनुष्य नहीं हैं क्योंकि रत्नभुमिमें प्राप्त होकर पशु ही खाली हाथों आता है, मनुष्य कदापि खाली हाथ नहीं आता ॥ ८५ ॥ इसप्रकार वह पवनवेग निर्दोष वचनोंको कहकर व्रत समितिवाले मुनिसमूहसहित केवली भगवानको प्रीतिपूर्वक नमस्कार करके अपने मित्र मनोवेग सहित विजयार्द्ध पर्वतपर अपने घर जाता हुवा ॥ ८६ ॥ उस पवनवेगको जैनधर्मावलंबी देख कर मनोवेग बहुत ही हर्षित हुवा, सो नीति ही है कि अपने किए हुए परिश्रमको सफल होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसके हृदयमें प्रमोद न हो ? ॥ ८७ ॥ तत्पश्चात् मनोहर आभूषणोंके धारक वे दोनों मित्र चार प्रकारके पवित्र श्रावक धर्मको हर्षके साथ धारण करते हुए परस्पर महाप्रीतिरूपी बन्धनसे अपने अपने चित्तको बांधे हुए सुखसे अपना समय विताने लगे ॥ ८८ ॥

अनेक आभूषण पहरे हुये स्फुरायमान रत्नोंके समूह कर शोभित अपने विमानमें बैठकर वे दोनों मित्र देवमनुष्यों के राजा इंद्र और चक्रवर्त्तियोंकर पूजनीय मनुष्यक्षेत्रोंके (अढाई द्वीपमें) कृत्रिमाकृत्रिम समस्त जिनमंदिरोंमें स्थित जिनप्रतिमाओंकी निरन्तर भक्ति पूजा वंदना करते हुये तिष्ठे. सो ठीक ही है. शुद्धज्ञानके धारक सत्पुरुष अपने हितकार्य्योंमें कदापि प्रमादी नहिं होते ॥ ८९ ॥ जैसे विस्तृत कीर्त्तिवाले अमितगत्याचार्य्य अपने इस काव्यको दो मासमें ही दोषरहित रचते भये, तैसें ही वह विस्तृत-कीर्त्ति पवनवेग लीलामात्रसे दो दिनमें ही देव मनुष्योंकर पूजनीय अपने सम्यग्दर्शनको चन्द्रमाके समान उज्वल करता हुवा ॥ ९० ॥

इसके आगे ग्रन्थकर्त्ताकी प्रशस्ति २० श्लोकोंमें है, वह हमने इस ग्रंथकी आदिमें प्रस्तावना लिखते समय पद्य भाषाटीकाके लिख दी है, इस कारण यहां दुबारा नहीं लिखी।

इति श्रीअमितगत्याचार्य्यविरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रंथकी बाला-बबोधिनी भाषाटीकामें बीसवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ २० ॥

इति श्रीअमितगत्याचार्य्य-विरचित-धर्मपरीक्षासंस्कृतग्रन्थकी पन्नालालबाकलीवालकृत बालावबोधिनी भाषाटीका समाप्ता ॥

श्रीरस्तु, कल्याणमस्तु ॥

भाषानुवादकर्त्ताका परिचय।

——:०:——

पद्धडिछंद.

सब देशनमें भारत सुदेश, तहं राजपुताना इक प्रदेश ॥
तामें मरुभूमी है प्रधान, तहं राज्य सु बीकानेर जान ॥ १ ॥
जहां राज्य करे नृप बहादूर, श्रीगंगासिंह हजूर शूर ॥
ता राज्यमाहिं नहिं ईति भीति, राजा स्वप्रजासे करत प्रीति ॥ २ ॥
तहं जसरासर शुभ ग्राम एक, जहं वास करहिं जैनी अनेक ॥
सब जैनी जाति खंडेलवाल, तामें सुवंश बाकलीवाल ॥ ३ ॥
ता वंशमांहिं इक अमरचंद, तिनके सुत चार भये सुनंद ॥
तिनके इक नानकराम नाम, निवसे सुजानगढ नाम धाम ॥ ४ ॥
तिनके सुत आठ भये सुजान, तिनमें अब चार हि वर्त्तमान ॥
गुरु धनलालजी मति अमंद, तिनसे लघुभ्राता रतनचन्द ॥ ५ ॥
तिनके लघु पन्नालाल मान, सबसे लघु नथमल भ्रातजान ॥
तिनमें मैं पन्नालाल नाम, सो गयो मुरादाबाद धाम ॥ ६ ॥
तित श्रीयुत मुन्शी मुकंदराम अरु पण्डित चुन्नीलाल नाम ॥
इन विद्वज्जनके चरणपास, रहिकर विद्या गहि मति प्रकाश ॥ ७ ॥
फिर आयो मुंबई शहर मांहिं, जहं सज्जन जनकी कमी नांहि ॥
तिनमें पण्डित गोपालदास, रहते थे पन्नालाल पास ॥ ८ ॥
इन सुजन जननका संग पाय, कृपरहस सुना हि कर्ष काय ॥
ताकारण मो मति कुछ पविन्न, अनुवाद-रचनमें भई विचित्र ॥ ९ ॥

पुन शोलापुर प्रांतस्थ गाम, इक आकलूज अभिधेय धाम ॥
तहं गान्धी नाथारंग शेठ, गुर्जरहुंमड़ जैनी श्रेष्ठ ॥ १० ॥
तिनके प्रसिद्ध सुत भये सात, जिनधर्मलीन सातों हि भ्रात ॥
सबसे लघु भ्रात जु रामचंद, तस-हृदय धर्मरुचि है अमंद ॥ ११ ॥

दोहा ।

तिनसे पाकर प्रेरणा, धर्मपरीक्षा ग्रन्थ ।
किया वचनिकामय सरल, पढत हि छुटत कुपंथ ॥ १२ ॥
संवत शत उनईश पर, अट्ठावनके बाद ॥
शुक्ल चतुर्दशि जेठ शनि, पूर्ण किया अनुवाद ॥ १३ ॥
बालककृत अनुवादमें, अर्थ-अशुद्धि हु होय ॥
सज्जन पढहु सुधारकें, हंसी करहु जिन कोय ॥ १४ ॥
धर्मपरीक्षा ग्रन्थमें, है जिनमतका सार ॥
पढहु सुनहु सब जन इसे, करहू सदा प्रचार ॥ १५ ॥

अडिल्ल छन्द.

पंडितजनका नित सतकार प्रचार हो ।
नाश कुमति वृष गहो धर्म विस्तार हो ॥
त्याग काम तज जिनग्रन्थ हि मुद्रित करो ॥
लजै न जिनवृष कभी यही चितमें धरो ॥ १६ ॥

दोहा ।

पंच परमपद हृदय धरि, नाउं-शीश कर जोर ॥
लाखों जन जिनसेयकरि, लगे स्वहितकी ओर ॥ १७ ॥

समाप्त.